उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

CORE COURSE **बी.ए. (प्रथम सेमेस्टर)**

BAKA(N)-101

कर्मकाण्ड एवं मुहूर्त्त ज्ञान

मानविकी विद्याशाखा

भारतीय कर्मकाण्ड

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नं .05946- 261122 , 261123
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन समिति

अध्यक्ष
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर रेनू प्रकाश
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी – संयोजक
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
वैदिक ज्योतिष-भारतीय कर्मकाण्ड विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

प्रोफेसर रामराज उपाध्याय
पौरोहित्य विभाग
लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रोफेसर रामानुज उपाध्याय
वेद विभाग
लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रोफेसर उपेन्द्र त्रिपाठी
अध्यक्षचर, वेद विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
वैदिक ज्योतिष-भारतीय कर्मकाण्ड विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

इकाई लेखक	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, ज्योतिष-कर्मकाण्ड विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	1	1,2,3,4,5
प्रोफेसर रामराज उपाध्याय पौरोहित्य विभाग श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	2	1,2,3,4
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष , ज्योतिष-कर्मकाण्ड विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	3	1,2,3,4,5

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
ISBN No. –
प्रकाशन वर्ष - 2023
प्रकाशक: - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
मुद्रक:

नोट - : (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।

कर्मकाण्ड एवं मुहूर्त्त ज्ञान BAKA(N)-101

अनुक्रम

CREDITS-4

प्रथम खण्ड – कर्मकाण्ड : आरम्भिक परिचय	**पृष्ठ - 1**
इकाई 1 : कर्मकाण्ड का उद्गम स्रोत	2-20
इकाई 2 : प्रात:कालीन (नित्यकर्मविधि)	21-31
इकाई 3 : पंचमहायज्ञ	32-42
इकाई 4 : वेदों का संक्षिप्त परिचय	43-61
इकाई 5 : पुराणों का परिचय	62-74
द्वितीय खण्ड - पंचांग परिचय एवं मुहूर्त्त ज्ञान	**पृष्ठ 75**
इकाई 1 : तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण विचार	76-98
इकाई 2 : पंचांग का शुभाशुभ फल विचार	99-119
इकाइ 3 : जातकर्म, नामकरण एवं अन्नप्राशन मुहूर्त्त	120-141
इकाइ 4 : कर्णबेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त	142-165
तृतीय खण्ड – विविध मुहूर्त्त	**पृष्ठ 166**
इकाई 1: वास्तु शान्ति, सूतिका स्नान, एवं अक्षराम्भ मुहूर्त्त	167-172
इकाई 2: वरवरण एवं विवाह मुहूर्त्त	173-179
इकाई 3: गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त	180-187
इकाई 4: यात्रा दिक्शूल विचार	188-195
इकाई 5 : चन्द्रवास, शिववास एवं अग्निवास विचार	196- 201

बी.ए. (कर्मकाण्ड) प्रथम सेमेस्टर

CORE COURSE

खण्ड – 1

कर्मकाण्ड : आरम्भिक परिचय

इकाई – 1 कर्मकाण्ड का उद्गम स्रोत

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3. कर्मकाण्ड का उद्गम स्रोत

1.3.1 कर्मकाण्ड के विविध आयाम

1.4 धर्मसूत्र एवं स्मृति

बोध प्रश्न

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 कर्मकाण्ड प्रथम पत्र (BAKA-101) की प्रथम इकाई '**कर्मकाण्ड के उद्गम स्रोत**' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। कर्मकाण्ड का उद्गम स्थल मूल रूप से वेद है। वेद कर्मकाण्ड का ही नहीं वरन् सर्वविद्या का मूल है। कर्मकाण्ड का सम्बन्ध केवल पूजन, पाठ, यज्ञ, विभिन्न प्रकार के अनुष्ठान से ही सम्बन्धित नहीं है, बल्कि इसका सम्बन्ध मानव के जीवन से भी सीधे जुड़ा है।

धार्मिक क्रियाओं से जुड़े कर्म को '**कर्मकाण्ड**' कहते है। यह कर्मकाण्ड की स्थूल परिभाषा है। वस्तुत: मनुष्य अपने दैनन्दिनी जीवन में जो भी कर्म करता है, उसका सम्बन्ध कर्मकाण्ड से है।

इस इकाई में आप कर्मकाण्ड से सम्बन्धित विविध विषयों का अध्ययन करेंगे तथा विशेष रूप से उसके उद्ग्म स्रोत को समझ सकेंगे ।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ सकेंगे कि –

1. कर्मकाण्ड किसे कहते है।
2. कर्मकाण्ड का उद्गम स्रोत क्या है।
3. कर्मकाण्ड का महत्व क्या है।
4. कर्मकाण्ड के विविध आयाम क्या है।
5. कर्मकाण्ड के प्रकार कितने है।

1.3 कर्मकाण्ड के उद्गम स्रोत

भारतीय मान्यता के अनुसार वेद सृष्टिक्रम की प्रथम वाणी है। फलत: भारतीय संस्कृति का मूल ग्रन्थ वेद सिद्ध होता है। पाश्चात्य विचारकों ने ऐतिहासिक दृष्टि अपनाते हुए वेद को विश्व का आदि ग्रन्थ सिद्ध किया। अत: यदि विश्वसंस्कृति का उद्गम स्त्रोत वेद को माना जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इस आधार पर कर्मकाण्ड का भी उद्ग्म स्रोत मूल रूप से वेद ही है। वेदों में कर्मकाण्ड के समस्त तथ्य उपस्थित है। यदि आप उसका अवलोकन करेंगे तो आपको मूल रूप से कर्मकाण्ड का आरम्भ वहीं से प्राप्त होगा।

कर्मकाण्ड का मूलत: सम्बन्ध मानव के सभी प्रकार के कर्मो से है, जिनमें धार्मिक क्रियाएँ भी सम्मिलित हैं। स्थूल रूप से धार्मिक क्रियाओं को ही **'कर्मकाण्ड'** कहते हैं, जिससे पौरोहित्य का तादात्म्य सम्बन्ध है। कर्मकाण्ड के भी **दो** प्रकार हैं-

1. इष्ट
2. पूर्त

सम्पूर्ण वैदिक धर्म तीन काण्डों में विभक्त है-

1. ज्ञान काण्ड,
2. उपासना काण्ड
3. कर्म काण्ड

यज्ञ-यागादि, अदृष्ट और अपूर्व के ऊपर आधारित कर्मों को इष्ट कहते हैं। लोक-हितकारी दृष्ट फल वाले कर्मों को पूर्त कहते हैं । इस प्रकार कर्मकाण्ड के अंतर्गत लोक-परलोक-हितकारी सभी कर्मों का समावेश है।

कर्मकाण्ड वेदों के सभी भाष्यकार इस बात से सहमत हैं कि चारों वेदों में प्रधानत: तीन विषयों; कर्मकाण्ड, ज्ञान- काण्ड एवं उपासनाकाण्ड का प्रतिपादन है।

कर्मकाण्ड अर्थात् यज्ञकर्म वह है जिससे यजमान को इस लोक में अभीष्ट फल की प्राप्ति हो और मरने पर यथेष्ट सुख मिले। यजुर्वेद के प्रथम से उंतालीसवें अध्याय तक यज्ञों का ही वर्णन है। अंतिम अध्याय(40 वाँ) इस वेद का उपसंहार है, जो 'ईशावास्योपनिषद्' कहलाता है।

वेद का अधिकांश कर्मकाण्ड और उपासना से परिपूर्ण है, शेष अल्पभाग ही ज्ञानकाण्ड है।

कर्मकाण्ड कनिष्ठ अधिकारी के लिए है। उपासना और कर्म मध्यम के लिए । कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों उत्तम के लिए हैं। पूर्वमीमांसाशास्त्र कर्मकाण्ड का प्रतिपादन है ।

इसका नाम 'पूर्वमीमांसा' इस लिए पड़ा कि कर्मकाण्ड मनुष्य का प्रथम धर्म है, ज्ञानकाण्ड का अधिकार उसके उपरांत आता है।

पूर्व आचरणीय कर्मकाण्ड से सम्बन्धित होने के कारण इसे पूर्वमीमांसा कहते हैं । ज्ञानकाण्ड-विषयक मीमांसा का दूसरा पक्ष 'उत्तरमीमांसा' अथवा वेदान्त कहलाता है ।

वेद शब्द और उसका लक्षणात्मक स्वरूप

शाब्दिक विधा से विश्लेषण करने पर वेद शब्द की निष्पत्ति 'विद-ज्ञाने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर होती है। विचारकों ने कहा है कि-जिसके द्वारा धर्मादि पुरुषार्थ-चतुष्टय-सिद्धि के उपाय बतलाये जायँ, वह वेद है।

- आचार्य सायण ने वेद के ज्ञानात्मक ऐश्वर्य को ध्यान में रखकर लक्षित किया कि- अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति और अनिष्ट-परिहार के अलौकिक उपायको जो ग्रन्थ बोधित करता है, वह वेद है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि आचार्य सायणने वेद के लक्षण में 'अलौकिकमुपायम्' यह विशेषण देकर वेदों की यज्ञमूलकता प्रकाशित की है।
- आचार्य लौगाक्षि भास्कर ने दार्शनिक दृष्टि रखते हुए- अपौरूषेय वाक्य को वेद कहा है ।
- आचार्य उदयन ने भी कहा है कि- जिसका दूसरा मूल कहीं उपलब्ध नहीं है और महाजनों अर्थात् आस्तिक लोगों ने वेद के रूप में मान्यता दी हो, उन आनुपूर्वी विशिष्ट वाक्यों को वेद कहते है ।

- आपस्तम्बादि सूत्रकारों ने वेद का स्वरूपावबोधक लक्षण करते हुए कहा है कि- वेद मन्त्र और ब्राह्मणात्मक हैं।
- आचार्यचरण स्वामी श्रीकरपात्री जी महाराज ने दार्शनिक एवं याज्ञिक दोनों दृष्टियों का समन्वय करते हुए वेद का अद्भुत लक्षण इस प्रकार उपस्थापित किया है-' शब्दातिरिक्तं शब्दोपजीविप्रमाणातिरिक्तं च यत्प्रमाणं तज्जन्यप्रमितिविषयानतिरिक्तार्थको यो यस्तदन्यत्वे सति आमुष्मिकसुखजनकोच्चारणकत्वे सति जन्यज्ञानाजन्यो यो प्रमाणशब्दस्तत्त्वं वेदत्वम्
- उपर्युक्त लक्षणों की विवेचना करने पर यह तथ्य सामने आता है कि- ऐहकामुष्मिक फलप्राप्ति के अलौकिक उपाय का निदर्शन करने वाला अपौरूषेय विशिष्टानुपूर्वीक मन्त्र-ब्राह्मणात्मक शब्दराशि वेद है।

श्रेष्ठ परम्पराएँ

मानव कल्याण की महान् परम्पराओं में जितने भी आयोजन एवं अनुष्ठान है उनमें सबसे बड़ी परम्पराओं में जितने भी आयोजन एवं अनुष्ठान है उनमें सबसे बड़ी परम्परा संस्कारों एवं पर्वों की है। संस्कारों धर्मानुष्ठानों द्वारा व्यक्ति एवं परिवार को और पर्व- त्यौहारों के माध्यम से समाज को प्रशिक्षित किया जाता है । इन पुण्य- परम्पराओं पर जितनी ही बारीकी से हम ध्यान देते हैं उतना ही अधिक उनका महत्त्व एवं उपयोग विदित होता है । पर्व- त्यौहारों की चर्चा अन्यत्र करेंगे, यहाँ तो हम षोडश संस्कारों की उपयोगिता एवम् आवश्यकता पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे। यो स्वाध्याय- सत्संग, प्रशिक्षण, चिन्तन, मनन आदि का प्रभाव मनुष्य की मनोभूमि पर पड़ता ही है। ओर उनसे व्यक्ति के भावना को विकसित करने में सहायता मिलती ही है और इनकी उपयोगिता को स्वीकार करते हुए सर्वत्र इनका प्रचलन रखा भी जाता है पर साथ ही एक बात यह भी ध्यान में रखनी चाहिए कि अन्तः चेतना को उच्च प्रयोजन के लिए उल्लसित एवं सूक्ष्म बनाने के कुछ वैज्ञानिक उपकरण भी हैं और उनका महत्त्व स्वाध्याय, सत्संग आदि चलित उपकरणों की अपेक्षा किसी भी प्रकार कम नहीं है। इन व्यक्तित्व निर्माण के वैज्ञानिक माध्यमों को ही संस्कार कहा जा सकता है। संस्कार वे उपचार हैं जिनके माध्यम से मनुष्य को सुसंस्कृत बनाना, सबसे अधिक सम्भव एवं सरल है कहने की आवश्यकता नहीं कि सुसंस्कारित व्यक्ति के निजी पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में कितनी श्रेयस्कर एवं मंगलमय सिद्धि हो सकती है।

बहुदेव वाद

सदा भवानी दाहिनी, सन्मुख रहे गणेश ।। पंच देव रक्षा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश।।

(१)**ब्रह्मा**- भगवान के नाभि कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा के साथ सृष्टि हुई शरीर के अन्यान्य अंगों में से नाभि की के साथ सृष्टि कार्य का संबंध अधिक है, इसलिए परमात्मा की नाभि सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी का उत्पन्न होना विज्ञान सिद्ध है।। कमल अव्यक्त से व्यक्त अर्भिमुखी प्रकृति का रूप है और उसी से ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है।। ब्रह्मा जी प्रकृति के अन्तर्गत राजसिक भाव पर अधिष्ठान करते हैं, इसलिए ब्रह्माजी का रंग लाल है।। क्योंकि रजोगुण का रंग लाल है।

"अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णाम्" (श्वेताश्वनर उपनिषद्)

त्रिगुणमयी प्रकृति लोहित शुक्ल और कृष्णवर्ण है ।। रजोगुण लोहित, सतोगुण शुक्ल और तमोगुण कृष्णवर्ण है।। समष्टि- अंतःकरण ब्रह्माजी का शरीर और उनके चार मुख माने गये हैं क्योंकि- मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार- ये अंतःकरण के चार अंग हैं। क्रियाकलाप में ज्ञान की अप्रधानता रहने पर भी ज्ञान की सहायता बिना क्रिया ठीक- ठीक नहीं चल सकती है। इसलिए नीर- क्षीर विवेकी हंस को ब्रह्मा जी का वाहन माना गया है । ब्रह्माजी की मूर्ति की ओर देखने से, उसमें निहित सूक्ष्म व स्थूल भावों पर विचार कर देखने से पता लग जायेगा कि प्रकृति के राजसिक भाव की लीला के अनुसार ही ब्रह्माजी की मूर्ति- कल्पना की गई हैं ।

(२) विष्णु -विष्णु शास्त्रों में शेषशायी भगवान विष्णु का ध्यान इस प्रकार किया गया है कि- ध्यायन्ति दुग्धादि भुजंग भोगे। शयानमाधं कमलासहायम्।। प्रफुल्लनेत्रोत्पलमंजनाभ, चर्तुमुखेनाश्रितनाभिपद्म। आम्नायगं त्रिचरणं घननीलमुद्यछ्रोवत्स कौन्तुभगदाम्बुजशंखचक्रम्।। हृत्पुण्डरीकनिलयंजगदेकमूलमालोकयन्तिकृतिनः पुरुषं पुराणम् ।।

अर्थात्- भगवान क्षीर सागर में शेषनाग पन सोये हुए हैं, लक्ष्मी रूपिणी प्रकृति उनकी पादसेवा कर रही है, उनके नाभिकमल से चतुर्मुख ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई है, उनका रंग घननील है, उनके हाथ हैं जिनमें शंख, चक्र, गदा औरपद्म सुशोभित हैं- वे जगत् के आदि कारण तथा भक्त- जन हृत्सरोज बिहारी हैं। इनके ध्यान तथा इनकी भावमयी मूर्ति में तन्मयता प्राप्त करने से भक्त का भव-भ्रम दूर होता है। क्षीर का अनंत समुद्र सृष्टि उत्पत्तिकारी अनन्त संस्कार समुद्र है जिसको कारणवीर करके भी शास्त्र में वर्णन किया है । कारणवीर जन्म न होकर संसारोत्पत्ति के कारण अनन्त संस्कार है । संस्कारों को क्षीर इसलिये कहा गया है कि क्षीर की तरह इनमें उत्पत्ति और स्थिति विधान की शक्ति विद्यमान है। ये सब संस्कार प्रलय के गर्भ में विलीन जीवों के समष्टि संस्कार हैं ।।अनन्त नाश अथवा शेषनाग अनंत आकाश को रूप है जिसके ऊपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं । शेष भगवान् की सहस्रेण महाकाश की सर्वव्यापकता प्रतिपादन करती है, क्योंकि शास्त्र में "सहस्र " शब्द अनन्तता- वाचक है। आकाश ही सबसे सूक्ष्म भूत है, उसकी व्यापकता से ब्रह्म की व्यापकता अनुभव होती है और उससे परे ही परम- पुरुष का भाव है इस कारण महाकाशरूपी अनन्तशैया पर भगवान सोये हुए हैं। लक्ष्मी अर्थात् प्रकृति उनकी पादसेवा कर रही है। इस भाव में प्रकृति के साथ भगवान का सम्बद्ध बताया गया है। प्रकृति रूप माया परमेश्वर की दासी बनकर उनके अधीन होकर उनकी प्रेरणा के अनुसार सृष्टि स्थिति, प्रलयंकारी है। इसी दासी भाव को दिखाने के अर्थ में शेषशायी भगवान की पादसेविका रूप से माया की मूर्ति बनाई गई है । भगवान के शरीर का रंग घननील है। आकाश रंग नील है। निराकार ब्रह्म का शरीरनिर्देश करते समय शास्त्र में उनको आकाश शरीर कहा है, क्योंकि

सर्वव्यापक अतिसूक्ष्म आकाश के साथ ही उनके रूप की कुछ तुलना हो सकती है। अतः आकाश शरीर ब्रह्म का रंग नील होना विज्ञान सिद्ध है। भगवान के गलदेश में कौस्तुभ मणि विभूषित माला है उन्होंने गीता में कहा है :-

मनः परतरं नान्यत् किंचिदरित्र धनंजय।। मुचि सर्वमिद प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव।।

भगवान की सत्ता को छोड़कर कोई भी जीव पृथक नहीं रह सकता, समस्त जीव सूत्र में मणियों की तरह परमात्मा में ही ग्रथित है । सारे जीव मणि है, परमात्मा सारे जीवों में विराजमान सूत्र है । गले में माला की तरह जीव भगवान में ही स्थित हैं । इसी भावन को बताने के लिए उनके गले में माला है । उक्त माला की मणियों के बीच में उज्जवलतम कौस्तुमणि नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव कूटस्थ चैतन्य है ।।ज्ञान रूप तथा मुक्त स्वरूप होने से ही कुटस्थरूपी कौस्तुभ की इतनी ज्योति है । माला की अन्यान्य मणियाँ जीवात्मा और कौस्तुभ कूटस्थ चैतन्य है । यही कौस्तुभ और मणि से युक्त माला का भाव है। भगवान के चार हाथ धर्म अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चतुर्वर्ग के प्रदान करने वाले है । शंक, चक्र,गदा और पद्म भी इसी चतुर्वर्ग के परिचायक है।

(३) **शिव**- योग शास्त्र में देवाधिदेव महादेव जी का रूप जो वर्णन किया गया है, वह इस प्रकार है-

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिमं चरूचन्द्राऽवतंसम् ।।रत्नाकल्पोज्जवलांगं परशुमृगवराऽभीतिस्त्रं प्रसन्नम् ।

पद्मासीनं समान्तात् स्तुतममरगणैवर्याघ्र कृतिंवसानम् ।।विश्वद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम्।।

भगवान् शिव के इस ध्यान में वे चाँदी के पर्वत के समान श्वेतवर्ण तथा चन्द्रकला से भूतिषत है। वे उज्ज्वलांग, प्रसन्नचित्त तथा चतुर्हस्तं में परशु, मृग, वर और अभय के धारण करने वाले हैं।

(४) **दुर्गा**- शक्ति की माता भवानी के विभिन्न रूपों में देवी का रूप तमोगुण को सिंहरूपी रजोगुण ने परास्त किया है। ऐसे सिंह के ऊपर आरोहण की हुई सिंहवासनी माता दुर्गा हैं जो कि शुद्ध गुणमयी ब्रह्मरूपिणी सर्वव्यापिनी और दशदिगरूपी दस हस्तों में शस्त्र धारण पूर्वक पूर्ण शक्तिशालिनी है।

(५) **गणेश**- शास्त्रों में गणपति को ब्रह्माण्ड के सात्विक सुबुद्धि राज्य पर अधिष्ठात्री देवता कहा गया है।। गणपति परमात्मा के बुद्धि रूप है, सूर्य- चक्षुरूप है, शिव आत्मारूप और आद्या- प्रकृति जगदम्बा शक्ति रूप है ।। गणेश भगवान का शरीर स्थूल है, मुख गजेन्द्र का है और उदर विशाल है, आकृति सर्व है, जिनके गण्डस्थल से मदधरा प्रवाहित हो रही है और भ्रमरगण मंत्रलोभ से चंचल होकर गण्डस्थल में एकत्रित हो रहे हैं, जिन्होंने अपने दन्तों के आघात से शत्रुओं को विदीर्ण करके उनके रुधिर से सिन्दूर शोभा को धारण किया है और उनका स्वरूप समस्त कर्मों में सिद्धि प्रदान करने

वाला है।

बोध प्रश्न

1. कर्मकाण्ड के कितने प्रकार है।

क. 2 ख. 3 ग. 4 घ. 5

2. सम्पूर्ण वैदिक धर्म कितने भागों में विभक्त है।

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

3. वेद शब्द में कौन सा प्रत्यय है।

क. गर ख. घञ् प्रत्यय ग. ल्युट घ. कोई नहीं

4. देवताओं की संख्या है।

क. 32 ख. 33 ग. 34 घ. 35

5. पितरों की संख्या कितनी है।

क. 7 ख. 8 ग. 9 घ. 10

1.3.1 कर्मकाण्ड के विविध आयाम

व्रत और उपवास

भारतीय संस्कृति में व्रत, त्यौहार, उत्सव, मेंले आदि अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। हिन्दुओं के ही सबसे अधिक त्यौहार मनाये जाते हैं, कारण हिन्दू ऋषि- मुनियों ने त्यौहारों के रूप में जीवन को सरस और सुन्दर बनाने की योजनाएँ रखी हैं। प्रत्येक त्यौहार, व्रत, उत्सव मेले आदि का एक गुप्त महत्व है। प्रत्येक के साथ भारतीय संस्कृति जुड़ी हुई है। वे विशेष विचार अथवा उद्देश्य को सामने रखकर निश्चित किये गये हैं।

प्रथम विचार तो ऋतुओं के परिवर्तन का है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति का साहचर्य विशेष महत्व रखता है। प्रत्येक ऋतु के परिवर्तन अपने साथ विशेष निर्देश लाता है, खेती में कुछ स्थान रखता है। कृषि प्रधान होने के कारण प्रत्येक ऋतु- परिवर्तन हँसी- खुशी मनोरंजन के साथ अपना- अपना उपयोग रखता है। इन्हीं अवसरों पर त्यौहारों का समावेश किया गया है, जो उचित है। ये त्यौहार दो प्रकार के होते हैं और उद्देश्य की दृष्टि से इन्हीं दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम श्रेणी में वे व्रत, उत्सव, त्यौहार और मेले है, जो सांस्कृतिक है और जिनका उद्देश्य भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों और विचारों की रक्षा करना है। इस वर्ग में हिन्दुओ के सभी बड़े- बड़े त्यौहार आ जाते हैं, जैसे- होलिका उत्सव, दीपावली, बसन्त, श्रावणी, संक्रान्ति आदि। संस्कृति की रक्षा इनकी आत्मा है।

दूसरी श्रेणी में वे त्यौहार आते हैं, जिन्हें किसी महापुरुष की पुण्य स्मृति में बनाया गया है। जिस महापुरुष की स्मृति के ये सूचक हैं, उसके गुणों, लीलाओं, पावन चरित्र, महानताओं को स्मरण रखने के लिए इनका विधान है। इस श्रेणी में रामनवमी, कृष्णाष्टमी, भीष्म- पंचमी, हनुमान- जयन्ती, नाग पंचमी आदि त्यौहार रखे जा सकते हैं।

दोनों वर्गों में मुख्य बात यह है कि लोग सांसारिकता में न डूब गये या उनका जीवन नीरस, चिन्ताग्रस्त भार स्वरूप न हो जाये उन्हें ईश्वर की दिव्य शक्तियों और अतुल सार्मथ्य के विषय में चिन्तन, मनन, स्वाध्याय के लिए पर्याप्त अवकाश मिले। त्यौहारों के कारण सांसारिक आधि- व्याधि से पिसे हुए लोगों में नये प्रकार की उमंग और जागृति उत्पन्न हो जाती है । बहुत दिन पूर्व से ही त्यौहार मनाने में उत्साह ओर औत्सुक्य में आनंद लेने लगते हैं।

होली का- उत्सव गेहूँ और चने की नई फसल का स्वागत, गर्मी के आगमन का सूचक, हँसी- खुशी और मनोरंजन का त्यौहार है। ऊँच- नीच, अमीर- गरीब, जाति- वर्ण का भेद- भाव भूलकर सब हिन्दू प्रसन्न मन से एक दूसरे के गले मिलते और गुलाल, चन्दन, रोली, रंग, अबीर लगाते हैं। पारस्परिक मन- मुटाव और वैमनस्य की पुण्य गंगा बहाई जाती है। यह वैदिक कालीन और अति प्राचीन त्यौहार है। ऋतुराज वसंत का उत्सव है। वसंत, पशु- पक्षी, कीट- पतग, मानव सभी के लिए मादक मोहक ऋतु है। इसमें मनुष्य का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। होलिका दहन प्राचीन यज्ञ- व्यवस्था का ही बिगड़ा हुआ रूप है, जब सब नागरिक भेद- भाव छोड़कर छोटे- छोटे यज्ञों की योजना करते थे, मिल- जुल कर प्रेम पूर्वक बैठते थे, गायन- वादन करते और शिष्ट मनोरंजन से आनंद मनाते थे। आजकल इस उत्सव में जो अपवित्रता आ गई है, उसे दूर रहना चाहिए। अश्लीलता और अशिष्टता को दूर करना आवश्यक है।

दीपावली लक्ष्मी - पूजन का त्यौहार है। गणेश चतुर्थी, संकट नाशक त्यौहार है। गणेश में राजनीति, वैदिक पौराणिक महत्त्व भरा हुआ है। तत्कालीन राजनीति का परिचायक है। बसन्त पंचमी प्रकृति की शोभा का उत्सव है । ऋतुराज वसंत के आगमन का स्वागत इसमें किया जाता है। प्रकृति का जो सौन्दर्य इस ऋतु में देखा जाता है, अन्य ऋतुओं में नहीं मिलता है। इस दिन सरस्वती पूजन भी किया जाता है। प्रकृति की मादकता के कारण यह उत्सव प्रसन्नता का त्यौहार है। इस प्रकार हमारे अन्य त्यौहारों का भी सांस्कृतिक महत्त्व है। सामूहिक रूप से सब को मिलाकर आनंद मनाने, एकता के सूत्र में बाँधने का गुप्त रहस्य हमारे त्यौहार और उत्सवों में छिपा हुआ है।

त्रिकाल संध्या

भारतीय संस्कृति में मंत्र, स्तुति, संध्या वंदन, प्रार्थना आदि का महत्त्व है। अधिकांश देवी- देवताओं

के लिए हमारे यहाँ निश्चित स्तुतियाँ हैं, भजन हैं, प्रार्थनाएँ हैं, आरतियाँ हैं। प्रार्थना मंत्र स्तुति आदि द्वारा देवताओं से भी बल, कीर्ति आदि विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। ये सब कार्य हमारी अंतः शुद्धि के मनोवैज्ञानिक साधन हैं।

त्रिकाल सन्ध्या से तात्पर्य तीनों कालों में की जाने वाली सन्ध्या कर्म से है। प्रात:, मध्याह्न एवं सायंकाल इन तीनों काल में की जाने वाली सन्धयाकर्मोपासना को त्रिकाल सन्ध्या के नाम से जानते है। प्राचीन समय में इस प्रकार के सन्ध्या वन्दना कर्म करने वाले ऋषियों की संख्या बहुतायत थी।
वर्तमान में ये लुप्तप्राय होते जा रहे है।

जैसे भिन्न- भिन्न मनुष्यों की भिन्न- भिन्न रुचियाँ होती हैं, वैसे ही हमारे पृथक–पृथक देवताओं की मन्त्र, आरतियाँ, पूजा प्रार्थना की विधियाँ भी पृथक–पृथक ही हैं। ये देवी- देवता हमारे भावों के ही मूर्त रूप हैं। जैसे हनुमान हमारी शारीरिक शक्ति के मूर्त स्वरूप हैं, शिव कल्याण के मूर्त रूप हैं, लक्ष्मी आर्थिक बल की मूर्त रूप हैं आदि। अपने उद्देश्य के अनुसार जिस देवी- देवता की स्तुति या आरती करते हैं, उसी प्रकार के भावों या विचारों का प्रादुर्भाव निरन्तर हमारे मन में होने लगता है। हम जिन शब्दों अथवा विचारों, नाम अथवा गुणों का पुनः- पुनः उच्चारण, ध्यान या निरन्तर चिंतन करते हैं, वे ही हमारी अन्तश्चेतना उच्चारण ही अपनी चेतना में इन्हें धारण करने का साधन है। मंत्र, प्रार्थना या वन्दन द्वारा उस दिव्य चेतना का आवाहन करके उसको मन, बुद्धि और शरीर में धारणा करते हैं ।। अतः ये वे उपाय हैं जिनसे सद्गुणों का विकास होता है और चित्त शुद्धि हो जाती है। प्रत्येक देवता की जो स्तुति, मंत्र या प्रार्थना है, वह स्तरीय होकर आस- पास के वातावरण मे कम्पन करती है। उस भाव की आकृतियाँ समूचे वातावरण में फैल जाती हैं। हमारा मन और आत्मा उससे पूर्णतः सिक्त भी हो जाता है। हमारा मन उन कम्पनों से उस उच्च भाव- स्तर में पहुँचता है, जो उस देवता का भाव- स्तर है, जिसका हम मंत्र जपते हैं, या जिसकी अर्चना करते हैं, प्रार्थना द्वारा मन उस देवता के सम्पर्क में आता है। उन मंत्रों से जप बाहर- भीतर एक सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार मंत्र, जप, प्रार्थना, प्रस्तुतियाँ कम्पनात्मक शक्ति हैं।

दानशीलता

भारतीय संस्कृति परमार्थ और परोपकार को प्रचुर महत्त्व देती है। जब अपनी सात्विक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाय, तो लोक- कल्याण के लिए दूसरों की उन्नति के लिए दान देना चाहिए। प्राचीनकाल में ऐसे निःस्वार्थ लोक- हित ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, पुरोहित, योगी, संन्यासी होते थे, जो समस्त आयु लोक -हित के लिए दे डालते थे। कुछ विद्यादान, पठन- पाठन में ही आयु व्यतीत करते थे। उपदेश द्वारा जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, सहयोग, सुख, सुविधा, विवेक, धर्मपरायणता आदि सद्गुणों को बढ़ाने का प्रयत्न किया करते थे। माननीय स्वभाव में जो सत् तत्व है, उसी की व्रद्धि में वे अपने अधिकांश दिन व्यतीत करते थे। ये ज्ञानी उदार महात्मा अपने आप में जीवित- कल्याण की संस्थाएँ थे, यज्ञ रूप थे। जब ये जनता की इतनी सेवा करते थे, जो जनता भी अपना कर्तव्य समझकर इनके भोजन, निवास, वस्त्र, सन्तान का पालन- पोषण का प्रबंध करती थी।

जैसे लोक- हितकारी संस्थाएँ आज भी सार्वजनिक चन्दे से चलाई जाती है, उसी प्रकार ये ऋषि, मुनि, ब्राह्मण भी दान, पुण्य, भिक्षा आदि द्वारा निर्वाह करते थे।

प्राचीन भारतीय ऋषि- मुनियों का इतना उच्च, पवित्र और प्रवृत्ति इतनी सात्विक होती थी कि उनके संबंध में किसी प्रकार के संदेह की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी, क्योंकि उन्हें पैसा देकर जनता उसके सदुपयोग के विषय में निश्चित रहती थी। हिसाब जाँचने की आवश्यकता तक न समझती थी। इस प्रकार हमारे पुरोहित, विद्यादान देने वाले ब्राह्मण, मुनि, ऋषि दान- दक्षिणा द्वारा जनता की सर्वतोमुखी उन्नति का प्रबंध किया करते थे। दान द्वारा उनके जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने का विधान उचित था। जो परमार्थ और लोक- हित जनता की सेवा सहायता में इतना तन्मय हो जाय कि अपने व्यक्तिगत लाभ की बात सोच ही न सके, उसके भरण- पोषण की चिन्ता जनता को करनी ही चाहिए। इस प्रकार दान देने की परिपाटी चली। कालान्तर में उस व्यक्ति को भी दान दिया जाने लगा। जो अपंग, अंधा, लंगड़ा लूला, अपाहिज या हर प्रकार से लाचार हो, जीविका उपार्जन धारण करने के लिए अन्य कोई साधन ही शेष नहीं रहता। इस प्रकार दो रूप में दूसरों को देने की प्रणाली प्रचलित रही है- १. ऋषि- मुनियों, ब्राह्मणों, पुरोहितों, आचार्यों, संन्यासियों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता को नाम रखा गया दान। २. अपंग, लँगड़े, लूले, कुछ भी कार्य न कर सकने वाले व्यक्तियों को दी जाने वाली सहायता को भिक्षा कहा गया। दान और भिक्षा दोनों का ही तात्पर्य दूसरे की सहायता करना है। पुण्य, परोपकार सत्कार्य, लोक- कल्याण सुख- शान्ति की वृद्धि, सात्विकता का उन्नयन तथा समष्टि की, जनता की सेवा के लिए ही इन दिनों का उपयोग होना चाहिए।

दूसरों को देने का क्या तात्पर्य है। भारतीय दान परम्परा और कुछ उधार नहीं देने परम्परा की एक वैज्ञानिक पद्धति है। जो कुछ हम दूसरों को देते हैं, वह हमारी रक्षित पूँजी की तरह जमा हो जाता है। अच्छा दान जरूरत मंदों को देना कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता। कुपात्रों को धन देना व्यर्थ है जिसका पेट भरा हुआ हो, उसे और भोजन कराया जाय, तो वह बीमार पड़ेगा और अपने साथ दाता को भी अधोगति के लिए बहुत ही उत्तम धर्म- कर्म है। जो, अपनी रोटी दूसरों को बाँट कर खाता है, उसको किसी बात की कमी नहीं रहेगी। मृत्यु बड़ी बुरी लगती है, पर मौत से बुरी बात यह है कि कोई व्यक्ति दूसरे का दुःखी देखे, भोजन के अभाव में रोता चिल्लाता या मरता हुआ देखे, और उसकी किसी प्रकार भी सहायता करने में अपने आप को असमर्थ पावे। हिन्दू शास्त्र एक स्वर से कहते है कि मनुष्य- जीवन में परोपकार ही सार है हमें जितना भी संभव हो सदैव परोपकार में रहना चाहिए। किन्तु यह दान अभिमान, दम्भ, कीर्ति के लिए नहीं, आत्म कल्याण के लिए ही होना चाहिए। मेरे कारण दूसरों का भला हुआ है, यह सोचना उचित नहीं है॥ दान देने से स्वयं हमारी ही भलाई होती है। हमें संयम का पाठ मिलता है। आप यदि न देंगे, तो कोई भिखारी भूखा नहीं मर जायेगा। किसी प्रकार उसके भोजन का प्रबंध हो ही जायेगा, लेकिन आपके हाथ से दूसरों के

उपकार को करने का एक अवसर जाता रहेगा। हमारी उपकार भावना कुण्ठित हो जायेगी। दान से जो मानसिक उन्नति होती, आत्मा को जो शक्ति प्राप्त होती, वह दान लेने वाले को नहीं, वरन् देने वाले को प्राप्त होती है। दूसरों का उपकार करना मानों एक प्रकार से अपना ही कल्याण करना है। किसी को थोड़ा सा पैसा देकर भला हम उसका कितना भला कर सकते हैं? हमारी उदारता का विकास हो जाता है। आनंद- स्रोत खुल जाता है।

1.4 धर्मसूत्र एवं स्मृति –

जैसा कि नाम से ही विदित है कि धर्मसूत्रों में व्यक्ति के धर्मसम्बन्धी क्रियाकलापों पर विचार किया गया है, किन्तु धर्मसूत्रों में प्रतिपादित धर्म किसी विशेष पूजापद्धति पर आश्रित न होकर समस्त - आचरण व व्यवहार पर विचार करते हुए सम्पूर्ण मानवजीवन का ही नियन्त्रक है। 'धर्म' शब्द का प्रयोग वैदिक संहिताओं तथा उनके परवर्ती साहित्य में प्रचुर मात्रा में होता जा रहा है। यहाँ पर यह अवधेय है कि परवर्ती साहित्य में धर्म शब्द का वह अर्थ दृष्टिगोचर नहीं होता, जो कि वैदिक संहिताओं में उपलब्ध है। संहिताओं में धर्म शब्द विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त है। अथर्ववेद में पृथिवी के ग्यारह धारक तत्त्वों की गणना ‘पृथिवीं स्धारयन्ति’ कहकर की गयी है। इसी प्रकार ऋग्वेद* में ‘तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्’ कहकर यही भाव प्रकट किया गया है। इस प्रकार यह धर्म किसी देशविशेष तथा कालविशेष से सम्बन्धित न होकर ऐसे तत्वों को परिगणित करता है जो समस्त पृथिवी अथवा उसके निवासियों को धारण करते हैं। वे नियम शाश्वत हैं तथा सभी के लिए अपरिहार्य हैं। मैक्समूलर ने भी धर्म के इस स्वरूप की ओर इन शब्दों में इंगित किया हैप्राचीन भारतवासियों - के लिए धर्म सबसे पहले अनेक विषयों के बीच एक रुचि का विषय नहीं था अपितु वह सबका आत्मसमर्पण कराने वाली विधि थी। इसके अन्तर्गत न केवल पूजा और प्रार्थना आती थी अपितु वह सब भी आता था जिसे हम दर्शन, नैतिकता, क़ानून और शासन कहते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन उनके लिए धर्म था तथा दूसरी चीजें मानों इस जीवन की भौतिक आवश्यकताओं के लिए निमित्त मात्र थीं। संहिताओं के परवर्ती साहित्य में धर्म केवल वर्णाश्रम के आचारविचार तथा- क्रियाकलापों तक ही सीमित रह गया। उपनिषितकाल में धर्म का यही स्वरूप- उपलब्ध होता है। छान्दोग्य उपनिषद में * धर्म के तीन स्कन्ध गिनाए गये हैं। इनमें यज्ञ, अध्ययन तथा दान प्रथम, तप द्वितीय तथा आचार्यकुल में वास तृतीय स्कन्ध है। स्पष्ट ही इनके अन्तर्गत वर्गों में रूढ़ होकर परवर्ती काल में पूजापद्धति को भी धर्म ने अपने में समाविष्ट कर लिया। इतना होने पर भी सभी ने धर्म का मूल वेद को माना जाता है। मनु ने तो इस विषय में 'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति:' तथा 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' आदि घोषणा करके वेदों को ही धर्म का मूल कहा है। गौतम धर्मसूत्र में तो प्रारम्भ में ही

'वेदोऽखिलोधर्ममूलम'। 'तद्विदां च स्मृतिशीले'* सूत्रों द्वारा यही बात कही गयी है। ये दोनों सूत्र मनुस्मृति के 'वेदोंऽखिलो धर्ममूलम स्मृतिशीले च तद्विदाम्' श्लोकांश के ही रूपान्तर मात्र हैं। इसी प्रकार वासिष्ठ धर्मसूत्र में भी *'श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः' कहकर धर्म के विषय में श्रुति तथा स्मृति को प्रमाण माना है। बौधायन धर्मसूत्र में श्रुति तथा स्मृति के अतिरिक्त शिष्टाचरण को भी धर्म का लक्षण कहकर मनुस्मृति में प्रतिपादित श्रुति, स्मृति तथा शिष्टाचरण को ही सूत्र रूप में निबद्ध किया है। इस प्रकार धर्म के लक्षण में श्रुति के साथ स्मृति तथा शिष्टाचरण को भी सम्मिलित कर लिया गया। दर्शनशास्त्र में धर्म का लक्ष्य लोककहकर अत्यन्त व्यापक कर दिया गया तथा *की सिद्धि परलोक-एक प्रकार से समस्त मानवजीवन को ही इसके द्वारा नियन्त्रित कर दिया गया।- वैशेषिक दर्शन के उक्त लक्षण का यही अर्थ है कि समस्त जीवन का, जीवन के प्रत्येक श्वास एवं क्षण का उपयोग ही इस रीति से किया जाए कि जिससे अभ्युदय तथा निश्रेयस की सिद्धि हो सके। इसमें ही अपना तथा : दूसरों का कल्याण निहित है। धर्म मानव की शक्तियों एवं लक्ष्य को संकुचित नहीं करता अपितु वह तो मनुष्य में अपरिमित शक्ति देखता है जिसके आधार पर मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। अभ्युदय तथा निश्रेयस की सिद्धि नामक लक्ष्य इतना: महान है कि इससे बाहर कुछ भी नहीं है। इसे प्राप्त करने की निसीम: सम्भावनाएँ मनुष्य में निहित हैं। इस प्रकार जीवन के प्रत्येक पक्ष पर धर्म विचार करता है तथा अपनी व्यवस्था देता है।

धर्मसूत्रों में वर्णाश्रम-धर्म, व्यक्तिगत आचरण, राजा एवं प्रजा के कर्त्तव्य आदि का विधान है। ये गृह्यसूत्रों की शृंखला के रूप में ही उपलब्ध होते हैं। श्रौतसूत्रों के समान ही, माना जाता है कि प्रत्येक शाखा के धर्मसूत्र भी पृथक्-पृथक् थे। वर्तमान समय में सभी शाखाओं के धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं होते। इस अनुपलब्धि का एक कारण यह है कि सम्पूर्ण प्राचीन वाङ्मय आज हमारे समक्ष विद्यमान नहीं है। उसका एक बड़ा भाग कालकवलित हो गया। इसका दूसरा कारण यह माना जाता है कि सभी शाखाओं के पृथक्-पृथक् धर्मसूत्रों का संभवत: प्रणयन ही नहीं किया गया, क्योंकि इन शाखाओं के द्वारा किसी अन्य शाखा के धर्मसूत्रों को ही अपना लिया गया था। पूर्वमीमांसा में कुमारिल भट्ट ने भी ऐसा ही संकेत दिया है ।

आर्यों के रीति-रिवाज वेदादि प्राचीन शास्त्रों पर आधृत थे किन्तु सूत्रकाल तक आते-आते इन रीति-रिवाजों, सामाजिक संस्थानों तथा राजनीतिक परिस्थितियों में पर्याप्त परिवर्तन एवं प्रगति हो गयी थी अत: इन सबको नियमबद्ध करने की आवश्यकता अनुभव की गयी। सामाजिक विकास के साथ ही उठी समस्याएँ भी प्रतिदिन जटिल होती जा रही थीं। इनके समाधान का कार्यभार अनेक वैदिक शाखाओं ने संभाल लिया, जिसके परिणामस्वरूप गहन विचार-विमर्श पूर्वक सूत्रग्रन्थों का सम्पादन किया गया। इन सूत्रग्रन्थों ने इस दीर्घकालीन बौद्धिक सम्पदा को सूत्रों के माध्यम से सुरक्षित रखा, इसका प्रमाण इन सूत्रग्रन्थों में उद्धृत अनेक प्राचीन आचार्यों के मत-मतान्तरों के रूप में मिलता है।

यह तो विकास का एक क्रम था जो तत्कालिक परिस्थिति के कारण निरन्तर हो रहा था। यह विकासक्रम यहीं पर नहीं रुका अपितु सूत्रग्रन्थों में भी समयानुकूल परिवर्तन एवं परिवर्धन किया गया जिसके फलस्वरूप ही परवर्ती स्मृतियों का जन्म हुआ। नयी-नयी समस्याएँ फिर भी उभरती रहीं। उनके समाधानार्थ स्मृतियों पर भी भाष्य एवं टीकाएँ लिखी गयीं जिनके माध्यम से प्राचीन वचनों की नवीन व्याख्याएँ की गयीं। इस प्रकार अपने से पूर्ववर्ती आधार को त्यागे बिना ही नूतन सिद्धान्तों तथा नियमों के समयानुकूल प्रतिपादन का मार्ग प्रशस्त कर लिया गया।

धर्मसूत्रों का महत्व उनके विषयप्रतिपादन के कारण है। सामाजिक व्यवस्था का- आधार वर्णाश्रम-व्यवस्था के आधार पर-पद्धति है। धर्मसूत्रों में वर्णाश्रम ही विविध विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इनमें वर्णों के कर्तव्यों तथा अधिकारों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। धर्मसूत्रकार आपत्काल में भी मन से ही आचारपालन पर बल देते हैं- । अयोग्य तथा दूषित व्यक्ति से परिग्रह का सर्वथा निषेध किया गया है। वर्णों एवं आश्रमों के कर्तव्यनिर्धारण की- दृष्टि से भी धर्मसूत्र पर्याप्त महत्व रखते हैं। धर्मसूत्रों के काल तक आश्रमों का महत्व पर्याप्त बढ़ गया था अतधर्मसूत्रों में एताद्विषयक : पर्याप्त निर्देश दिये गये हैं। सभी आश्रमों का आधार गृहस्थाश्रम है तथा उसका आधार है विवाह। धर्मसूत्रों में विवाह पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। यहाँ पर यह विशेष है कि अष्टविध विवाहों में सभी धर्मसूत्रकारों ने न तो एक क्रम को अपनाया तथा न ही उनकी श्रेष्ठता के तारतम्य को सभी ने स्वीकार किया। प्रतोलोम विवाह की सर्वत्र निन्दा की गयी है। विवाहोपरान्त पतिपत्नी के धार्मिक कृत्य एक -सम्पत्ति पर दोनों-साथ करने का विधान है। धन का समान रूप से अधिकार माना गया है। गृहस्थ के लिए पञ्च महायज्ञ तथा सभी संस्कारों की अनिवार्यता यहाँ पर प्रतिपादित की गयी है। धर्मसूत्रकार इस बात से भी भलीभाँति परिचित थे कि मर्यादाउल्लंघन से समाज में वर्णसंकरता- उत्पन्न होती है। धर्मसूत्रकारों ने वर्णसंकर जातियों को भी मान्यता प्रदान करके उनकी सामाजिक स्थिति का निर्धारण कर दिया तथा वर्णव्यवस्था का पालन कराकर वर्णसंकरता को रोकने का दायित्व राजा को सौंप दिया गया। गौतम धर्मसूत्र में जात्युत्कर्ष तथा जात्यपकर्ष का सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया गया है। इस प्रकार वर्णाश्रम के विविध कर्तव्यों का प्रतिपादन करके इसके साथ पातक, महापातक, प्रायश्चित्त, भक्ष्याभक्ष्य, श्राद्ध, विवाह और उनके निर्णय, साक्षी, न्यायकर्ता, अपराध, दण्ड, ऋण, ब्याज, जन्म-मृत्युविषयक अशौच, स्त्रीधर्म आदि ऐसे सभी विषयों पर धर्मसूत्रों में- विचार किया गया है, जिनका जीवन में उपयोग है।

स्मृति

हिन्दू धर्म के उन धर्मग्रन्थों का समूह है जिनकी मान्यता श्रुति से नीची श्रेणी की हैं और जो मानवों द्वारा उत्पन्न थे। इनमें वेद नहीं आते। *स्मृति* का शाब्दिक अर्थ है - "याद किया हुआ"। यद्यपि स्मृति को वेदों से नीचे का दर्ज़ा हासिल है लेकिन वे (रामायण, महाभारत, गीता, पुराण) अधिकांश हिन्दुओं द्वारा पढ़ी जाती हैं, क्योंकि वेदों को समझना बहुत कठिन है और स्मृतियों में आसान कहानियाँ और नैतिक उपदेश हैं।

मनु ने श्रुति तथा स्मृति महत्ता को समान माना है। गौतम ऋषि ने भी यही कहा है कि 'वेदो धर्ममूल तद्धिदां च स्मृतिशीले। हरदत्त ने गौतम की व्खाख्या करते हुए कहा कि स्मृति से अभिप्राय है मनुस्मृति से। परन्तु उनकी यह व्याख्या उचित नहीं प्रतीत होती क्योंकि स्मृति और शील इन शब्दों का प्रयोग स्रोत के रूप में किया है, किसी विशिष्ट स्मृति ग्रन्थ या शील के लिए नहीं। स्मृति से अभिप्राय है वेदविदों की स्मरण शक्ति में पड़ी उन रूढ़ि और परम्पराओं से जिनका उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं किया गया है तथा शील से अभिप्राय है उन विद्वानों के व्यवहार तथा आचार में उभरते प्रमाणों से। फिर भी आपस्तम्ब ने अपने धर्म-सूत्र के प्रारम्भ में ही कहा है 'धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च'।

स्मृतियों की रचना वेदों की रचना के बाद लगभग ५०० ईसा पूर्व हुआ। छठी शताब्दी ई.पू. के पहले सामाजिक धर्म वेद एवं वैदिक-कालीन व्यवहार तथा परम्पराओं पर आधारित था। आपस्तम्ब धर्म-सूत्र के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि इसके नियम समयाचारिक धर्म के आधार पर आधारित हैं। समयाचारिक धर्म से अभिप्राय है सामाजिक परम्परा से। सब सामाजिक परम्परा का महत्त्व इसलिए था कि धर्मशास्त्रों की रचना लगभग १००० ई.पू. के बाद हुई। पीछे शिष्टों की स्मृति में पड़े हुए परम्परागत व्यवहारों का संकलन स्मृति ग्रन्थों में ऋषियों द्वारा किया गया। इसकी मान्यता समाज में इसीलिए स्वीकार की गई होगी कि जो बातें अब तक लिखित नहीं थीं केवल परम्परा में ही उसका स्वरूप जीवित था, अब लिखित रूप में सामने आईं। अतएव शिष्टों की स्मृतियों से संकलित इन परम्पराओं के पुस्तकीकृत स्वरूप का नाम स्मृति रखा गया। पीछे चलकर स्मृति का क्षेत्र व्यापक हुआ। इसकी सीमा में विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों—गीता, महाभारत, विष्णुसहस्रनाम की भी गणना की जाने लगी। शंकराचार्य ने इन सभी ग्रन्थों को स्मृति ही माना है।

स्मृति की भाषा सरल थी, नियम समयानुसार थे तथा नवीन परिस्थितियों का इनमें ध्यान रखा गया था। अतः ये अधिक जनग्राह्य तथा समाज के अनुकूल बने रहे। फिर भी श्रुति की महत्ता इनकी अपेक्षा अत्यधिक स्वीकार की गई। परन्तु पीछे इनके बीच संधि स्थापित करने के लिए वृहस्पति ने कहा कि श्रुति और स्मृति मनुष्य के दो नेत्र हैं। यदि एक को ही महत्ता दी जाय तो आदमी काना हो जाएगा। अत्रि ने तो यहाँ तक कहा कि यदि कोई वेद में पूर्ण पारंगत हो स्मृति को घृणा की दृष्टि से देखता हो तो इक्कीस बार पशु योनि में उसका जन्म होगा। वृहस्पति और अत्रि के कथन से इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेद के समान स्मृति की भी महत्ता अब स्वीकार की गई। पीछे चलकर सामाजिक चलन में श्रुति के ऊपर स्मृति की महत्ता को स्वीकार कर लिया गया जैसे दत्तक पुत्र की परम्परा का वेदों में जहाँ विरोध हैं वहीं स्मृतियों में इसकी स्वीकृति दी गई है। इसी प्रकार पञ्चमहायज्ञ श्रुतियों के रचना काल की अपेक्षा स्मृतियों के रचना काल में व्यापक हो गया। वेदों के अनुसार झंझावात में, अतिथियों के आने पर, पूर्णिमा के दिन छात्रों को स्वाध्याय करना चाहिए क्योंकि इन दिनों में सस्वर पाठ करने की मनाही थी। परन्तु स्मृतियों ने इन दिनों स्वाध्याय को भी बन्द कर दिया। शूद्रों के सम्बन्ध में श्रुति का यह स्पष्ट निर्णय है कि वे मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते हैं परन्तु

उपनिषदों ने शूद्रों के ऊपर से यह बन्धन हटा दिया एवं उनके मोक्ष प्राप्ति की मान्यता स्वीकार कर ली गई। ये सभी तथ्य सिद्ध करते हैं कि श्रुति की निर्धारित परम्पराओं पर स्मृतियों की विरोधी परम्पराओं को पीछे सामाजिक मान्यता प्राप्त हो गई। स्मृतियों की इस महत्ता का कारण बताते हुए मारीचि ने कहा है कि स्मृतियों के जो वचन निरर्थक या श्रुति विरोधी नहीं हैं वे श्रुति के ही प्रारूप हैं। वेद वचन रहस्मय तथा बिखरे हैं जिन्हें सुविधा में स्मृतियों में स्पष्ट किया गया है। स्मृति वाक्य परम्पराओं पर आधारित हैं अतः इनके लिए वैदिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इनकी वेदगत प्रामाणिकता स्वतः स्वीकार्य है। वैदिक भाषा जनमानस को अधिक दुरूह प्रतीत होने लगी थी, जबकि स्मृतियाँ लौकिक संस्कृत में लिखी गई थीं जिसे समाज सरलता से समझ सकता था तथा वे सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप सिद्धांतप्रतिपादित करती थीं। स्मृति लेखकों को भी वैदिक महर्षियों की तरह समाज ने गरिमा प्रदान की थी। वैदिक और स्मृति काल के बीच व्यवहारों तथा परिस्थितियों के बदलने से एवं विभिन्न आर्थिक कारणों और नवीन विचारों के समागम से स्मृति को श्रुति की अपेक्षा प्राथमिकता मिली। इसका कारण यह भी बताया जा सकता है कि समाजशास्त्रीय मान्यता के पक्ष में था। इन सब कारणों से श्रुति की मान्यता को स्मृतियों की मान्यता के सम्मुख ५०० ईसा पूर्व से महत्त्वहीन समझा जाने लगा।

देव पूजा का विधान

भारतीय संस्कृति देव- पूजा में विश्वास करती है। 'देव' शब्द का स्थूल अर्थ है - देने वाला, ज्ञानी, विद्वान आदि श्रेष्ठ व्यक्ति। देवता हमसे दूर नहीं है, वरन् पास ही हैं। हिन्दू धर्मग्रन्थों में जिन तैंतीस करोड़ देवताओं का वर्णन किया गया है, वे वास्तव में देव -- शक्तियाँ हैं। ये ही गुप्त रूप से संसार में नाना प्रकार के परिवर्तन, उपद्रव, उत्कर्ष उत्पन्न करती रहती है। हमारे यहाँ कहा गया है कि देवता ३३ प्रकार के हैं, पितर आठ प्रकार के हैं, असुर ६६ प्रकार के, गन्धर्व २७ प्रकार के, पवन ४६ प्रकार के बताए गए हैं। इन भिन्न -- भिन्न शक्तियों को देखने से विदित होता है कि भारतवासियों को सूक्ष्म -- विज्ञान की कितनी अच्छी जानकारी थी और वे उनसे लाभ उठाकर प्रकृति के स्वामी बने हुए थे। कहा जाता है कि रावण के यहाँ देवता कैद रहते थे, उसने देवों को जीत लिया था। हिंदुओं के जो इतने अधिक देवता हैं, उनसे यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने मानवता के चरम- विकास में असंख्य दैवी गुणों के विकास पर गम्भीरता से विचार किया था। प्रत्येक देवता एक गुण का ही मूर्त रूप है। देव- पूजा एक प्रकार से सद्गुणों, उत्तम सामर्थ्यों और उन्नति के गुप्त तत्वों की पूजा है। जीवन में धारण करने योग्य उत्तमोत्तम सद्गुणों को देवता का रूप देकर समाज का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया गया। गुणों को मूर्त स्वरूप प्रदान कर भिन्न- भिन्न देवताओं का निर्माण हुआ है। इस सरल प्रतीक पद्धति से जनता को अपने जीवन को ऊँचाई की ओर ले जाने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ।

शिखा का महत्त्व

भारतीय संस्कृति में शिखा हिन्दुत्व की प्रतीक है कारण इसे धारण करने में अनेक शारीरिक,

मानसिक और आध्यात्मिक लाभ हैं। शिखा- स्थान मस्तिष्क की नाभी है, इस केंद्र से उस सूक्ष्म तंतुओं का संचालन होता है, जिसका प्रसार समस्त मस्तिष्क में हो रहा है और जिनके बल पर अनेक मानसिक शक्तियों का पोषण और विकास होता है। इस केंद्र स्थान से विवेक दृढ़ता, दूरदर्शिता, प्रेम शक्ति और संयम शक्तियों का विकास होता है। ऐसे मर्म स्थान पर केश रक्षने से सुरक्षा हो जाती है। बालों में बाहरी प्रभाव को रोकने की शक्ति है। शिखा स्थान पर बाल रहने से अनावश्यक सर्दी- गर्मी का प्रभाव नही पड़ता। उसकी सुरक्षा सदा बनी रहती है ।

शिखा से मानसिक शक्तियों का पोषण होता है। जब बाल नहीं काटे जाते, तो नियत सीमा पर पहुँच कर उनका बढ़ता बन्द हो जाता है। जब बढ़ता बन्द हो आया तो केशों की जड़ों को बाल बढने के लिए रक्त लेकर खर्च करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बचा हुआ रक्त उन पाँच शक्तियों का पोषण करने में खर्च होता है, जिससे उनका पोषण और विकास अच्छी तरह होता है। इससे मनुष्य विवेकशील, दृढ़ स्वभाव, दूरदर्शी, प्रेमी और संयमी बनता है।

वासना को वश में रखने का एक उपाय शिखा रखना है । बाल कटाने से जड़ों में एक प्रकार की हलचल मचती है। यह खुजली मस्तिष्क से सम्बद्ध वासना तन्तुओं में उतर जाती है । फलस्वरूप वासना भड़कती है। इस अनिष्ट से परिचित होने के कारण ऋषि- मुनि केश रखते हैं और उत्तेजना से बचते है ।

बालों में एक प्रकार का तेज होता है। स्त्रियाँ लम्बे बाल रखती हैं, तो उनकी तेजस्विता बढ़ जाती है। पूर्व काल के महापुरुष बाल रखा करते थे, और वे तेजस्वी होते थे। शिखा स्थान पर बाल रखने से विशेष रूप से तेजस्विता बढ़ती है। शिखा स्पर्श से शक्ति का संचार होता है। यह शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि चाणक्य ने शिखा को हाथ में लेकर अर्थात् दुर्गा को साक्षी बना कर नन्द वंश के नाश की प्रतिज्ञा की थी और वह अंत: पूरी हुई थी। शक्ति रूपी शिखा को श्रद्धापूर्वक धारण करने से मनुष्य शक्तिसम्पन्न बनता है। हिन्दू धर्म, हिन्दू राष्ट्र, हिन्दू संस्कृति, की ध्वजा इस शिखा को धारण करना एक प्रकार से हिन्दुत्व का गौरव है। शिखा के निचले प्रदेश में आत्मा का निवास योगियों ने माना है। इस प्रकार इस स्थान पर शिखा रूपी मंदिर बनाना ईश्वर प्राप्ति में सहायक होता है। मनुष्य के शरीर पर जो बाल हैं, ये भी छिद्र युक्त हैं। आकाश में से प्राण वायु खींचते हैं, जिससे मस्तिष्क चैतन्य, पुष्ट और निरोग रहता है। सिर के बालों का महत्त्व अधिक है, क्योंकि वे मस्तिष्क का पोषण करने के अतिरिक्त आकाश से प्राण वायु खींचते हैं। अनुष्ठान काल में बाल कटाना वर्जित है। किसी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए बाल कटाना वर्जित है। इसका कारण यह है कि बाल रखने से मनोबल की वृद्धि होती है और दृढ़ता आती है। संकल्प पूर्ण करने का मार्ग सुगम हो जाता है। मनोबल की वृद्धि के लिए शिखा आवश्यक है। प्राचीन काल में जिसे तिरस्कृत, लज्जित या अपमानित करना होता था, उसका सिर मुँडा दिया जाता था। सिर मुँडा देने से मन गिर जाता है और जोश ठण्डा पड़ जाता है। नाड़ी तन्तु शिथिल पड़ जाता है। यदि अकारण मुंडन कराया जाय, तो उत्साह और स्फूर्ति में कमी आ जाती है। सिक्ख धर्म में सिखा का विशेष

महत्त्व है। गुरुनानक तथा अन्य सिक्ख गुरुओं ने अपने अध्यात्म बल से शिखा के असाधारण लाभों को समझकर अपने सम्प्रदाय वालों को पाँच शिखाएँ अर्थात् पाँच स्थानों पर बाल रखने का आदेश दिया। शिखा को शिर पर स्थान देना धार्मिकता या आस्तिकता को स्वीकार करना है। ईश्वरीय संदेशों को शिखा के स्तम्भ द्वार ग्रहण किया सकता है। शिखाधारी मनुष्य दैवीय शुभ संदेशों को प्राप्त करता है और ईश्वरीय सन्निकटता सुगमतापूर्वक सुनता है। शिखा हिन्दुत्व की पहचान है, जो सदा अन्त समय तक मनुष्य के साथ चलता है। इस प्रकार विवेकशील हिन्दू को सिर पर शिखा धारण करनी चाहिए।

मूर्तिपूजा

भारतीय संस्कृति में प्रतीकवाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सबके लिए सरल सीधी पूजा- पद्धति को आविष्कार करने का श्रेय भारत को ही प्राप्त है। पूजा- पद्धति की उपयोगिता और सरलता की दृष्टि से हिन्दू धर्म की तुलना अन्य सम्प्रदायों से नहीं हो सकती। हिन्दू धर्म में ऐसे वैज्ञानिक मूलभूत सिद्धांत दिखाई पड़ते हैं, जिनसे हिन्दुओं का कुशाग्र बुद्धि विवेक और मनोविज्ञान की अपूर्व जानकारी का पता चलता है। मूर्ति- पूजा ऐसी ही प्रतीक पद्धति है। मूर्ति- पूजा क्या है? पत्थर, मिट्टी, धातु या चित्र इत्यादि की प्रतिमा को मध्यस्थ बनाकर हम सर्वव्यापी अनन्त शक्तियों और गुणों से सम्पन्न परमात्मा को अपने सम्मुख उपस्थित देखते हैं। निराकार ब्रह्म का मानस चित्र निर्माण करना कष्टसाध्य है। बड़े योगी, विचारक, तत्त्ववेत्ता सम्भव है यह कठिन कार्य कर दिखायें, किन्तु साधारण जन के जिए तो वह नितांत असम्भव सा है। भावुक भक्तों, विशेषतः नारी उपासकों के लिए किसी प्रकार की मूर्ति का आधार रहने से उपासना में बड़ी सहायता मिलती है। मानस चिन्तन और एकाग्रता की सुविधा को ध्यान में रखते हुए प्रतीक रूप में मूर्ति- पूजा की योजना बनी है। साधक अपनी श्रद्धा के अनुसार भगवान की कोई भी मूर्ति चुन लेता है और साधना अन्तःचेतना ऐसा अनुभव करती है मानो साक्षात् भगवान से हमारा मिलन हो रहा है। मनीषियों का यह कथन सत्य हे कि इस प्रकार की मूर्ति- पूजा में भावना प्रधान और प्रतिमा गौण है, तो भी प्रतिमा को ही यह श्रेय देना पड़ेगा कि वह भगवान की भावनाओं का उत्प्रेरक और संचार विशेष रूप से हमारे अन्तःकरण में करती है। यों कोई चाहे, तो चाहे जब जहाँ भगवान को स्मरण कर सकता है, पर मन्दिर में जाकर प्रभु- प्रतिमा के सम्मुख अनायास ही जो आनंद प्राप्त होता है, वह बिना मन्दिर में जाये, चाहे, जब कठिनता से ही प्राप्त होगा। गंगा- तट पर बैठकर ईश्वरीय शक्तियों का जो चमत्कार मन में उत्पन्न होता है, वह अन्यत्र मुश्किल से ही हो सकता है। मूर्ति- पूजा के साथ- साथ धर्म मार्ग में सिद्धांतानुसार प्रगति करने के लिए हमारे यहाँ त्याग और संयम पर बड़ा जोर दिया गया है। सोलह संस्कार, नाना प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्ड, व्रत, जप, तप, पूजा, अनुष्ठान, तीर्थ यात्राएँ, दान, पुण्य, स्वाध्याय, सत्संग ऐसे ही दिव्य प्रयोजन हैं, जिनसे मनुष्य में संयम ऐसे ही दिव्य प्रयोजन हैं, जिनसे मनुष्य में संयम और व्यवस्था आती है। मन दृढ़ बनकर दिव्यत्व की ओर बढ़ता है। आध्यात्मिक नियंत्रण में रहने का अभ्यस्त बनता है।

मूर्ति- "जड़ (मूल)ही सबका आधार हुआ करती है । जड़ सेवा के बिना किसी का भी कार्य नहीं चलता। दूसरे की आत्मा की प्रसन्नतापूर्वक उसके आधारभूत जड़ शरीर एवं उसके अंगों की सेवा करनी पड़ती है । परमात्मा की उपासना के लिए भी उसके आश्रय स्वरूप जड़ प्रकृति की पूजा करनी पड़ती है। हम वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, प्रकाश आदि की उपासना में प्रचुर लाभ उठाते हैं, तब मूर्ति-पूजा से क्यों घबराना चाहिए? उसके द्वारा तो आप अणु- अणु में व्यापक चेतन (सच्चिदानंद) की पूजा कर रहे होते हैं। आप जिस बुद्धि को या मन को आधारभूत करके परमात्मा का अध्ययन कर रहे होते हैं क्यों वे जड़ नहीं हैं? परमात्मा भी जड़ प्रकृति के बिना कुछ नहीं कर सकता, सृष्टि भी नहीं रच सकता। तब सिद्ध हुआ कि जड़ और चेतन का परस्पर संबंध है। तब परमात्मा भी किसी मूर्ति के बिना उपास्य कैसे हो सकता है?

हमारे यहाँ मूर्तियाँ मन्दिरों में स्थापित हैं, जिनमें भावुक जिज्ञासु पूजन, वन्दन अर्चन के लिए जाते हैं और ईश्वर की मूर्तियों पर चित्त एकाग्र करते हैं। घर में परिवार की नाना चिन्ताओं से भरे रहने के कारण पूजा, अर्चन, ध्यान इत्यादि इतनी तरह नहीं हो पाता, जितना मन्दिर के प्रशान्त स्वच्छ वातावरण में हो सकता है । अच्छे वातावरण का प्रभाव हमारी उत्तम वृत्तियों को शक्तिवान बनाने वाला है। मन्दिर के सात्विक वातावरण में कुप्रवृत्तियाँ स्वयं फीकी पड़ जाती हैं । इसलिए हिन्दू संस्कृति में मन्दिर की स्थापना को बड़ा महत्त्व दिया गया है।

कुछ व्यक्ति कहते हैं कि मन्दिरों में अनाचार होते हैं। उनकी संख्या दिन- प्रतिदिन बढ़ती जाती रही है। उन पर बहुत व्यय हो रहा है। अतः उन्हें समाप्त कर देना चाहिए । सम्भव है इनमें से कुछ आक्षेप सत्य हों, किन्तु मन्दिरों को समाप्त कर देने या सरकार द्वारा जब्त कर लेने मात्र से क्या अनाचार दूर हो जायेंगे? यदि किसी अंग में कोई विकार आ जाय, तो क्या उसे जड़मूल से नष्ट कर देना उचित है? कदापि नहीं। उसमें उचित परिष्कार और सुधार करना चाहिए। इसी बात की आवश्यकता आज हमारे मन्दिरों में है। मन्दिर स्वेच्छा नैतिक शिक्षण के केन्द्र रहें। उनमें पढ़े- लिखे निस्पृह पुजारी रखे जायें, जो मूर्ति- पूजा कराने के साथ- साथ जनता को धर्म- ग्रन्थों, आचार शास्त्रों, नीति, ज्ञान का शिक्षण भी दें और जिनका चरित्र जनता के लिए आदर्श रूप हो।

1.5 सारांश -

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप कर्मकाण्ड का मूल स्रोत क्या है। कर्मकाण्ड के विविध रूप, उनके प्रकार, मूर्तिपूजा, सन्ध्या वन्दन, दानशीलता, देवपूजन का विधान, शिखा का महत्व आदि का ज्ञान आप इस इकाई में करेंगे। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत उपर्युक्त विषय सामान्य है, जिसका ज्ञान परमावश्यक है। इस दृष्टिकोण से आपको इस इकाई के माध्यम से इन विषयों का ज्ञान कराया जा रहा है।

1.6 शब्दावली

कर्मकाण्ड - धार्मिक क्रियाओं से जुड़े कर्म को कर्मकाण्ड कहते है।

वेद – सर्वविद्या का मूल

पूजन – धार्मिक क्रिया

दानशीलता – दान में निपुणता

मूर्तिपूजा- मूर्तियों की पूजा

सन्ध्या - गायत्री उपासना सम्बन्धित कार्य।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. क
2. क
3. ख
4. ख
5. ख

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	**प्रकाशन**
नित्यकर्म पूजाप्रकाश	गीताप्रेस गोरखपुर
भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
कर्मकाण्ड प्रदीप	चौखम्भा प्रकाशन

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- कर्मकाण्ड को परिभाषित करते हुये विस्तृत वर्णन कीजिये?

2- मूर्तिपूजा एवं देवपूजन विधान से आप क्या समझते है? विस्तृत व्याख्या कीजिये।

3. धर्मसूत्र एवं स्मृति का विस्तार से उल्लेख कीजिये।

4. कर्मकाण्ड की महत्ता पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 2 प्रातःकालीन (नित्यकर्म विधि)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3. प्रातःकालीन नित्यकर्म परिचय

अभ्यास प्रश्न

2.3.1 कृत्य नित्यकर्म

2.3.2 भगवत स्मरण

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA-101 की प्रथम खण्ड के द्वितीय इकाई **'प्रात:कालीन नित्यकर्म विधि'** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। मानव अपने दैनन्दिनी जीवन में क्या – क्या कर्म करें, जिससे कि उसका सर्वतोमुखी विकास हो इसके लिये आचार्यों ने नित्यकर्म क्रिया की विधि बतलाई है । यदि व्यक्ति उसका क्रमश: पालन करें तो निश्चय ही उसका सर्वतोभावेन कल्याण होगा।

प्रतिदिन किया जानेवाला कर्म **'नित्यकर्म'** कहलाता है। इसके अनुसार एक प्रात:काल से दूसरे प्रातःकाल तक शास्त्रोक्त रीति से, दिन-रात के अष्टयामों के आठ यामार्ध कृत्यों यथा- ब्राह्म मुहूर्त में निद्रात्याग, देव, द्विज और ऋषि स्मरण, शौचादि से निवृत्ति, वेदाभ्यास, यज्ञ, भोजन, अध्ययन, लोककार्य आदि करना चाहिए।

इस इकाई में आप प्रात:कालीन नित्यकर्म विधि का विधिवत् अध्ययन करेंगे तथा तत्सम्बन्धि अनेक विषयों से परिचित हो सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि –

1. प्रात:कालीन नित्य कर्म को जान सकेगें।
2. नित्यकर्म क्रिया की विधि को समझ सकेगें।
3. नित्यकर्म से जुड़ी अनेक बातों को जान पायेंगे।
4. नित्यकर्म के महत्व को समझ सकेगें।
5. नित्यकर्म को परिभाषित करते हुये उसकी मीमांसा कर सकेगें।

2.3 प्रात:कालीन नित्यकर्म का परिचय

मीमांसकों ने द्विविध कर्म कहें हैं - अर्थकर्म और गुणकर्म। इनमें अर्थ कर्म के तीन भेद हैं - नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म और काम्यकर्म। गृहस्थों के लिए इन तीनों को करने का निर्देश है। इनमें प्रथम कर्म नित्यकर्म है जिसके अंतर्गत पंचयज्ञादि आते हैं। अग्निहोत्र आदि ब्राह्मणों के नित्यकर्म हैं। इन्हें करने से मनुष्य के प्रति दिन के पापों का क्षय होता है। जो इस कर्तव्य का नहीं निवर्हन करता वह शास्त्र के अनुसार पाप का भागी होकर पतित और निंदित होता है।

जन्मना जायते शूद्रः, संस्काराद् द्विज उच्यते। - महर्षि मनु

महर्षि मनु महाराज का कथन है कि मनुष्य शूद्र के रूप में उत्पन्न होता है तथा संस्कार से ही द्विज बनता है। संस्कार हमारे चित्त पर पड़ी वे शुभ व दिव्य हैं, जो हमें अशुभ की ओर जाने से रोकती है

तथा और अधिक शुभ व दिव्य की ओर जाने के लिए प्रेरित करती है। ऋषियों ने हमारे अन्तःकरण को हर क्षण शुभ संस्कारों से आप्लवित किये रखने के लिए कुछ नित्यकर्मों का विधान किया है, जिनमें प्रातः जागरण से लेकर रात्रि शयन पर्यन्त हमारी सारी दिनचर्या आ जाती है। यदि हम इन नित्यकर्मों को अपने दैनिक जीवनचर्या का अंग बना लेते हैं तो हमारा जीवन साधारण मनुष्य की चेतना से ऊपर उठकर देवताओं की दिव्य चेतनाओं की ओर अग्रसर होने लगता है। इसी लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत ''वैदिक नित्यकर्म विधि'' में ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि नित्यकर्मों के मन्त्रों को सरलार्थ सहित प्रस्तुत किया गया है ताकि हम मन्त्र के अन्तर्गत दिये जाने वाले सन्देश, आदेश या शिक्षा को जान सकें और उसे अपने जीवन का अंग बनाकर जीवन को सार्थक कर सकें।

नित्यकर्म में किये जाने वाले छ: कर्म शास्त्रोक्त है – स्नान, सन्ध्या, जप, होम, देवपूजन, अतिथि सत्कार । मनुष्य को मानसिक एवं शारीरिक शुद्धि हेतु इन कर्मों को अवश्य करना चाहिये।

2.3.1 कृत्य नित्यकर्म

मनुष्य के दैनन्दिनी जीवन में कृत्य नित्यकर्मों का निम्नलिखित उल्लेख आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है -

नित्यकर्म में मुख्य छः कर्म बताये गये है -

सन्ध्या स्नानं जपश्चैव देवतानां च पूजनम ।
वैश्वदेवं तथाऽऽतिथ्यं षट् कर्माणि दिने दिने ।।

मनुष्य को शारीरिक शुद्धि के लिए स्नान, संध्या, जप, देवपूजन, बलिवैश्वदेव और अतिथि सत्कार - ये छः कर्म प्रतिदिन करने चाहिए । हमारी दिनचर्या नियमित है। प्रातः काल जागरण से लेकर शयन तक की समस्त क्रियाओं के लिए शास्त्रकारों ने अपने दीर्घकालीन अनुभव से ऐसे नियमों का निर्माण किया है जिनका अनुसरण करके मनुष्य अपने जीवन को सफल कर सकता है। नियमित क्रियाओं के ठीक रहने पर ही स्वास्थ एवं मन स्वस्थ रहता है।

उषाकालीन दैनिक कर्त्तव्य

''स्त्री पुरुष सदा-10 बजे शयन और रात्रि के अन्तिम प्रहर अर्थात् 4 बजे उठकर सर्वप्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके, धर्म और अर्थ का विचार किया करें। धर्म और अर्थ के लिए अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी भी पीड़ा हो तो भी धर्मयुक्त पुरुषार्थ को कभी न छोड़े। सदा शरीर और आत्मा की रक्षा के लिये युक्त आहारविहार-, औषधसेवन, सुपथ्य आदि से निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य कर्म की सिद्धि के लिए ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना भी किया करें ताकि उस परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहाय से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो

सकें। इसके लिए निम्नांकित वैदिक मंत्र हैं-

प्रात: कालीन जागरण मन्त्र -

ऊँ प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ।।

अर्थ - हे ईश्वरआप स्वप्रकाशस्वरूप !– सर्वज्ञ हैं। परम ऐश्वर्य के दाता और परम ऐश्वर्य युक्त हैं। आप प्राण और उदान के समान हमें प्रिय हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं। आपने सूर्य और चन्द्र को उत्पन्न किया है। हम आपकी स्तुति करते हैं। आप भजनीय हैं, सेवनीय हैं, पुष्टिकर्त्ता हैं। आप अपने उपासक, वेद तथा ब्रह्माण्ड के पालनकर्त्ता हैं। आप हमारे अन्तर्यामी और प्रेरक हैं। हे जगदीश्वरआप पापियों को ! रुलानेवाले तथा सर्वरोगनाशक हैं। हम प्रातः वेला में आपकी स्तुतिप्रार्थना करते हैं-।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह॥२॥

अर्थ - हे ईश्वर! आप जयशील हैं। आप ऐश्वर्य के दाता हैं। आप तेजस्वी – ज्ञानस्वरूप हैं। आपने अन्तरिक्ष के पुत्र-रूप सूर्य को उत्पन्न किया है। आप ही ने सूर्यादि लोकों को विशेष रूप से – सब ओर से धारण किया है। आप सभी को जानते हो। आप दुष्टों को दण्ड देते हो। आप सब के प्रकाशक हो। मैं आपके भजनीय स्वरूप का सेवन करता हूं – उपासना करता हूं। आप सबको उपदेश करते हैं कि – 'मैं सूर्यादि जगत् को बनाने और धारण करते वाला हूं, आप लोग मेरी उपासना किया करो, मेरी आज्ञा में चला करो।' हे भगवान् ! इसलिए हम आपकी स्तुति करते हैं।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥३॥

अर्थ - हे ईश्वर! आप भजनीय स्वरूप, सबके उत्पादक और सत्याचार में प्रेरक हैं। आप ऐश्वर्यप्रद हैं। आप सत्य धन को देनेवाले हैं। आप सत्याचरण करनेवालों को ऐश्वर्य देनेवाले हैं। हे परमेश्वर! आप हमें प्रज्ञा का दीजिए। प्रज्ञा के दान से आप हमारी रक्षा कीजिए। आप हमारे लिए गाय, अश्व आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्य-श्री को उत्पन्न कीजिए। आपकी कृपा से हम लोग उत्तम मनुष्य बनें, वीर बनें।

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम॥४॥

अर्थ- हे ईश्वर! आपकी कृपा से और अपने पुरुषार्थ से हम लोग इसी समय – प्रातःकाल में तथा दिनों के मध्य में प्रकर्षता अर्थात् उत्तमता प्राप्त करें, ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् होवें। हे परम पूजित! आप असंख्य धन देनेवाले हो। आप हम पर कृपा कीजिए कि हम सूर्यलोक के उदय काल में पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप्त लोगों की अच्छी उत्तम प्रज्ञा और सुमति में सदा प्रवृत्त रहें।

भग एव भगवां अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
त्वं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह॥५॥

अर्थ- हे जगदीश्वर! आप सकल ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। इसलिए सब सज्जन आपकी निश्चय करके प्रशंसा – स्तुति करते हैं। आप ऐश्वर्यप्रद हैं। इस संसार में तथा हम जिस किसी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि आश्रम में स्थित हैं, उसमें आप अग्रगामी और आगे-आगे सत्य कर्मों में बढ़ानेवाले हूजिए। आप सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता हैं। अतः आप ही हमारे 'भगवान्' – पूजनीय देव हूजिए । उसी हेतु से हम विद्वान् लोग सकल ऐश्वर्य सम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन-मन-धन से प्रवृत्त होवें। यही आपसे प्रार्थना है!

2.3.2 भगवत स्मरण

श्री गणेश स्तुतिः

गजाननं भूत गणाधिसेवितं कतिपय जम्बूफल चारू भक्षणम्।
उमा सुतं शोक विनाश कारकं नवामि विघ्नेश्वर पाद पंकजम्।।

शिव स्तुतिः

कर्पूरगौरं करुणावतांर, संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदावसंतं ह्मदयारविन्दे, भवं भवानीसहितं नमामि।।

गायत्री मन्त्र

ऊँ भूर्भुव: स्व: तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्।

भावार्थ: - उस प्राण स्वरूप, दु:खनाशक, सुखस्वरूप श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, प्रकाश स्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे। सूर्य नमस्कार सूर्य देव के तेरह नामों का स्मरण कर जल चढ़ाये। पात्र में जल ले उसमें लाल कुमकुम, लाल फूल डालें। ऊँ मित्राय नम:, ऊँ हिरण्यगर्भाय नम:, ऊँ रवये नम:, ऊँ भरीचाय नम:, ऊँ सूर्याय नम:, ऊँ आदित्याय नम:, ऊँ भानवे नम:, ऊँ सावित्रे नम:, ऊँ खगाय नम:, ऊँ अकार्य नम:, ऊँ पूषणे नम:, ऊँ भास्कराय नम: सावित्रे सूर्यनारायणाय नम:।

विष्णु स्तुतिः

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशहम्। विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्ण शुभांगम्।।
लक्ष्मीकातं कमलनयनं योगिभिध्र्यानगम्यं। वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।।

जिसकी आकृति अतिशय शांत है, जो शेषनाग की शैया पर शयन किये हैं। जिसकी नाभि में कमल है, पूरे विश्व का ईश्वर है, सम्पूर्ण जगत का आधार हैं आकाश सा घनत्व है नील मेघ सा रंग, सम्पूर्ण अंग सुन्दर है जो योगियों द्धारा ध्यान कर प्राप्त किया जाता है, सम्पूर्ण लोको का स्वामी है।

जन्म मरण, रुप, भय का नाश करने वाला है ऐसे लक्ष्मीपति , कमलनेत्र विष्णु भगवान को मेरा प्रणाम। राम स्तुति: नीलाम्बुज श्यामलकोमलांगम् सीतासमारोपितवामभागम्।- पाणौ महासायक-चारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

श्री कृष्ण स्तुतिः

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव। हरे मुरारे मधु कैटभारे, निराश्रयं माँ जगदीश रक्ष।।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

श्री दुर्गा स्तुति:

जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तुते।।

सरस्वती स्तुतिः

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता या वीणावरदण्डमण्डितकरा या- श्वेतपद्मासना । या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवै, सदा वन्दिता । सा मां पातु सरस्वती भगवती नि:शेष जाड्यापहा ।।

हनुमान स्तुतिः

मनोजवं मारुतवेगं-तुल्य-, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्। वातात्मजं वानरयूथमुख्यं, श्री रामदूतं शरणं प्रपद्ये।।

गुरु बन्दना

गुरुब्रह्मा गुरर्विष्णुसाक्षात् परं ब्राह :। गुरु:गुरुर्देवो महेश्वर : तस्मै श्रीगुरुवे नम।।:

कस्तुरी तिलकम ललाट पटले वक्षस्थले कौस्तुभम्। नासाग्रे वरमौक्तिकम् करतले वेणुकरे ककंणम्।। सर्वांगे हरि चन्दनम सुललितम कंठे व मुक्तावली । गोपितो। श्री परिवेशित: विजयते गोपाल चूड़ामणि।। अच्युतं केशवम गोपिका बल्ल्भम। कृष्ण दामोदरम जानकी नायकम्।। या देवि सर्व भूतेषु बुद्धि रूपेण संस्थिता। नमस्तये नमस्तये नमो नम।।:

अभ्यास प्रश्न

1. नित्यकर्म में कृतार्थ मुख्य रूप से शास्त्रो में कितने कर्मों का विवेचन किया गया है ।

क. 2 ख. 3 ग. 6 घ. 5

2. संस्कारों की संख्या कितनी है ।

क. 13 ख. 14 ग. 15 घ. 16

3. सूर्योदय से चार घटी पूर्व को कहते है ।

क. मध्याह्न ख. दिवा मुहूर्त ग. ब्राह्म मुहूर्त घ. कोई नहीं

4. आचारो परमो .... ।

क. धर्मः ख. कर्मः ग. यशः घ. मोक्षः

5. या कुन्देन्दुतुषार हार धवला या शुभ्रवस्रा वृत्ता किसकी स्तुति है।

क. दुर्गा की ख. लक्ष्मी की ग. सरस्वती की घ. हनुमान की

हमारे सोलह संस्कार गर्भाधान, पुंसवनम, सीमन्तोनन्यम, जातक संस्कार, नामकरण संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, चूडाकर्म संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार, कर्णवेध संस्कार, उपनयन संस्कार, वेदारम्भ संस्कार, समावर्तन संस्कार, विवाह संस्कार, वान प्रस्थाश्रम संस्कार, संन्यासाश्रम संस्कार, अन्त्येष्ठि कर्म संस्कार।।

आचारो परमो धर्मः -

उपर्युक्त पंक्ति के अनुसार आचार ही मनुष्य का परम धर्म है। आचार - विचार के पवित्र होने पर ही मनुष्य चरित्रवान बनता है, मनुष्य के चरित्रवान होने से राष्ट्र का भी सर्वांगीण विकास होता है। प्रातःकालीन कर्मों में सर्वप्रथम ब्रह्ममुहूर्त में जगना चाहिये, ब्रह्ममुहूर्त में नहीं जगने से क्या हानि होती है आचार्यों ने इस प्रकार प्रतिपादित किया है –

ब्रह्म मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी ।
तां करोति द्विजो मोहात् पादकृच्छ्रेण शुद्धयति ।।

ब्रह्ममुहूर्त में जो मुनष्य सोता है, उस समय की निद्रा उसके पुण्यों को समाप्त करती है। उस समय जो शयन करता है उसे इस पाप से बचने के लिए पादकृच्छ्र नामक (व्रत) प्रायश्चित्त करना होता है । हमारी दैनिक चर्या का आरम्भ प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में जागरण से होता है। शास्त्रों में ब्रह्ममुहूर्त की व्याख्या इस प्रकार से है -

रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः।
स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने।।

अर्थात् - रात्रि के अन्तिम प्रहर का जो तीसरा भाग है उसको ब्रह्म मुहूर्त कहते है। निद्रा त्याग के लिए यही समय शास्त्र विहित है।

ब्राह्ममुहूर्त सूर्योदय से चार घड़ी (डेढ़ घंटे) पूर्व को कहते है। मनुष्य प्रातःकालीन जागरण के पश्चात् ऑखों के खुलते ही दोनों हाथों की हथेलियों को देखें और निम्न मन्त्र को बोले -

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती ।
करभूले स्थिलो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम् ।।

भाषा - हाथ के अग्रभाग में लक्ष्मी हाथ के मध्य में सरस्वती का निवास है, हाथ के मूल भाग में

ब्रह्माजी का निवास है, अतः प्रातः काल कर (हाथ) का दर्शन करना चाहिए।

उपयुक्त श्लोक बोलते हुए अपने हाथो को देखना चाहिए। यह शास्त्रीय विधान बड़ा ही अर्थपूर्ण है। इससे मनुष्य के हृदय में आत्म-निर्भरता और स्वावलम्ब की भावना उदय होती है । वह जीवन के प्रत्येक कार्य में दूसरों की तरफ न देखकर अन्य लोगों के भरोसे न रहकर-अपने हाथों की तरफ देखने का अभ्यासी बन जाता है।

भूमि की वन्दना - शय्या से उठकर पृथ्वी पर पैर रखने से पूर्व पृथ्वी की प्रार्थना करें -

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।।

समुद्ररूपी वस्त्रो को धारण करने वाली पर्वत रूपी स्तनो से मण्डित भगवान विष्णु की पत्नी पृथ्वी देवी आप-मेरे पाद स्पर्श को क्षमा करें।

प्रातः स्मरण - धर्म शास्त्रों ने निद्रा त्याग के उपरान्त मनुष्य मात्र का प्रथम कर्तव्य उस कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड-नायक, सच्चिदानन्द-स्वरूप प्यारे प्रभु का स्मरण बताया है - जिस की असीम कृपा से अत्यन्त दुर्लभ मानव देह प्राप्त हुई है, जो समस्त सृष्टि के कण-कण में ओत-प्रोत है, और सत्य, शिव, व सुन्दर है। जिसकी कृपा से मनुष्य सब प्रकार के भयों से मुक्त होकर 'अहं ब्रह्मास्मि'' के उच्च लक्ष्य पर पहुंच कर तन्मय हो जाता है। दैनिक जीवन के प्रारम्भ में उस के स्मरण से हमारे हृदय में आत्मविश्वास और दृढता की भावना ही उत्पन्न नहीं होगी अपितु सम्पूर्ण दिन मंगलमय वातावरण में व्यतीत होगा । मानसिक शुद्धि के लिए मन्त्र बोलें -

ऊँ अपवित्र पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्यभ्यन्तरः शुचि ।।

प्रातः स्मरणीय श्लोकः-

निम्नलिखित श्लोकों का प्रातः काल पाठ करने से अत्यधिक कल्याण होता है। जैसे- दिन अच्छा बीतता है, धर्म की वृद्धि होती है भगवत् प्रीत्यर्थ इसका पाठ करना चाहिए।

प्रातः कालीन गायत्री ध्यान -

बालां विद्यां तु गायत्रीं लोहितां चतुराननाम्
रक्ताम्बरद्वयोपेतामक्षसूत्र करां तथा।
कमण्डलुधरां देवीं हंसवाहनसंस्थिताम् ।।
ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम्।
मन्त्रेणावाहयेद्धेषीमायन्तीं सूर्यमण्डलात् ।।

तत्पश्चात् गायत्री मन्त्र का जप करें -

ऊँ भूर्भुवःस्वः तत्सवितुर्षरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।

गायत्री जप करते समय गायत्री मन्त्र के अर्थ को ध्यान में रखते हुये जप करें ।

अर्थ - भू - सत् भुवः- चित् - स्वः आनन्द स्वरूप- सृष्टिकर्ता प्रकाशमान परमात्मा के उस प्रसिद्ध वरणीय तेज का (हम) ध्यान करते है, जो परमात्मा हमारी बुद्धि को सत् मार्ग की ओर प्रेरित करे।

तर्पण से पूर्व गायत्री कवच का पाठ करें

गायत्री कवच तीनों संध्यायों में पढ़ें ।

गायत्री जप कर माला या रूद्राक्ष की माला से करें

गायत्री जप के अनन्तर गायत्री तर्पण करे तर्पण केवल प्रातः कालीन संध्या में अनिवार्य है।

विनियोग - ऊँ गायत्रया विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता गायत्री छन्दः गायत्री तर्पणे-विनियोगः।।

ऊँ भूः ऋग्वेदपुरूषं तर्पयामि ऊँ भुवः यजुर्वेदपुरूषतर्पयामि ऊँ स्वः सामवेदपुरूषं तर्पयामि।

ऊँ क्षहः अधर्वेदपुरूषं तर्पयामि ऊँ जनः इतिहासपुराण पुरूषं तर्पयामि ऊँ तपः सर्वागमपुरूषंत।

ऊँ सत्यं सत्यलोक पुरूषं तर्पयामि ऊँ भूः भूर्लोक पुरूषं तर्पयामि ऊँ भुवः भुवर्लोक पुरूषं तर्पयामि।

ऊँ स्वः स्वर्लोक तर्पमानि ऊँ भूः एकपदां गायत्रीं तर्पयामि ऊँ भुवः द्विपदां गायत्रीं तर्पयामि।

ऊँ स्वःत्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि ऊँ भुर्भुवः स्वः चतुष्पदां गायत्रीं तर्पयामि ऊँ उषतीं तर्पयामि।

ऊँ गायत्रीं तर्पयामि ऊँ सावित्रीं तर्पयामि ऊँ सरस्वतीं ऊँ वेदमातरं तर्पयामि ऊँ पृथिवीं तर्पयामि।

ऊँ अजां तर्पयामि ऊँ कौशिकीं तर्पयामि ऊँ सांकृत्तिं तर्पयामि ऊँ सार्वजितीं तर्पयामि ऊँ तत्सद् ब्रह्मार्पणमेस्तु।

तत्पश्चात् अपने आसन में खड़े होकर परिक्रमा करें।

परिक्रमा मन्त्र-

''यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतापनि च।
तानि सर्वाणि नशयन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे ।।''

किया हुआ जप भगवान को अर्पण करें - नीचे लिखे वाक्य बोलें

अनेन गायत्री जपकर्मणा सर्वान्तिर्यामी भगवान् नारायणः प्रीपतां न मम।।

गायत्री देवी का विसर्जन - निम्नलिखित विनियोग के साथ आगे बताये गये मन्त्र से गायत्री देवी का विसर्जन करें -

विनियोग - ''उत्तमे शिखरे'' इत्यस्य वामदेव ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः गायत्री देवता गायत्री विसर्जने विनियोगः।। विनियोग के बाद हाथ जोड़े और मन्त्र बोलें

ऊँ उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छदेवि यथा सुखम्।।

इसके बाद नीचे लिखा वाक्य पढ़कर इस संध्योपासना कर्म को भगवान् को अर्पण करें - अनेन प्रातः

संध्योपासनाख्येन कर्मणा श्री परमेश्वरः प्रीयतां न मम।
ऊँ तत्सत् ब्रह्मार्पणभस्तु।। अन्त में पूर्ववत् आचमन करें और भगवान का स्मरण करें।

गायत्री कवच

हाथ में जल लेकर विनियोग पढ़े

विनियोग - ऊँ अस्य श्री गायत्रीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः भूः बीजम् - भुवः शक्तिःस्वः कीलकम् गायत्री प्रीत्यर्थे पाठे विनियोग।

इस प्रकार ब्राह्मणों को गायत्री की उपासना कर जपादि कार्य करना चाहिये।

2.4 सारांश -

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप कर्मकाण्ड के आरम्भिक **प्रात:कालीन नित्यकर्म विधि** का ज्ञान प्राप्त करेंगे। मनुष्य अपने जीवन में किन कर्मों को करके परमगति को प्राप्त कर सकता है। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने दैनिक जीवन में कृत्य जिन कर्मों का शास्त्रों में उल्लेख कियाहै। उसे मानव यदि अपने जीवन में अपना ले तो उसका सर्वतोमुखी विकास हो सकेगा। अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रात:कालीन नित्यकर्मविधि का विधिवत अध्ययन करेंगे।

2.5 शब्दावली

नित्यकर्म – दैनन्दिनी जीवन में किया जाने वाला कर्म

षटकर्म – छ: प्रकार के नित्य किये जाने वाला कर्म

सन्ध्या वन्दन - ब्राह्मणों के लिये गायत्री उपासना हेतु किये जाने वाला वन्दनादि कर्म।

पुण्यक्षय- पुण्य का नाश

आत्मविश्वास – स्वयं पर विश्वास

कराग्रे – हाथ के अग्र भाग में

कवच – रक्षार्थ धारण करने वाला

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. ग
2. घ
3. ग

4. क
5. ग

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	**प्रकाशन**
नित्यकर्म पूजाप्रकाश	गीताप्रेस गोरखपुर

भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व – चौखम्भा प्रकाशन

कर्मकाण्ड प्रदीप – चौखम्भा प्रकाशन

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1- प्रात:कालीन नित्यकर्म विधि का विस्तार से वर्णन कीजिये ?

2- षट्कर्म से आप क्या समझते ? विस्तृत व्याख्या कीजिये।

3. नित्यकर्मविधि का उल्लेख कीजिये।

4. प्रात:कालीन नित्यकर्म को करने से मानव को क्या लाभ होता है।

इकाई – 3 पंचमहायज्ञ

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3. पंचमहायज्ञ परिचय
पंचमहायज्ञ का महत्व
3.4 सारांश
3.5 बोध प्रश्न
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 कर्मकाण्ड के प्रथम पत्र के तृतीय इकाई **'पञ्चमहायज्ञ'** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इस इकाई में गृहस्थ जीवन में मनुष्य के लिये आचार्यों द्वारा कथित पञ्चमहायज्ञ का वर्णन किया गया है।

चार आश्रमो में गृहस्थ आश्रम श्रेष्ठ बताया गया है। अन्य सभी आश्रम इसी आश्रम पर निर्भर रहते हैं। जीवन को मर्यादित तरीके से जीने के लिये गृहस्थ के लिये पंचमहायज्ञों की महती आवश्यकता है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने कर्मकाण्ड के उद्गम स्रोत एवं प्रात:कालीन कृत्य नित्यकर्म को समझ लिया है । यहॉ इस इकाई में आप पंच महायज्ञ का अध्ययन करेगें । आशा है पाठकगण इसे पढ़कर पंचमहायज्ञ का बोध कर सकेगें।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पंचमहायज्ञों के बारे में जान पायेगें-

1. पंचमहायज्ञों यथा ब्रतायज्ञ देवयज्ञ पितृयज्ञ इत्यादि का अध्ययन आप सम्यक रूप से कर पायेगें।
2. पंचमहायज्ञों के महत्व का निरूपण कर सकेंगे ।
3. पंचमहायज्ञों को परिभाषित कर सकेंगे ।
4. पंचमहायज्ञों से सम्बन्धित विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।

3.3 पंचमहायज्ञ परिचय

पंच महायज्ञ भारतीय सनातन परम्परा में मानवों के लिये आवश्यक अंग के रूप में बताये गए हैं। धर्मशास्त्रों ने भी हर गृहस्थ को प्रतिदिन पंच महायज्ञ करने के लिए कहा है। नियमित रूप से इन पंच यज्ञों को करने से सुख-समृद्धि व जीवन में प्रसन्नता बनी रहती है। इन महायज्ञों के करने से ही मनुष्य का जीवन, परिवार, समाज शुद्ध, सदाचारी और सुखी रहता है।

पंच यज्ञ की महत्ता

पर्याप्त धन-धान्य होने पर भी अधिकांश परिवार दु:खी और असाध्य रोगों से ग्रस्त रहते हैं, क्योंकि उन परिवारों में पंच महायज्ञ नहीं होते। मानव जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति है। इन चारों की प्राप्ति तभी संभव है, जब वैदिक विधान से पंच महायज्ञों को नित्य किया जाये। पंच महायज्ञ का उल्लेख **'मनुस्मृति'** में मिलने पर भी उसका मूल यजुर्वेद के **शतपथ ब्राह्मण** हैं।

इसीलिये ये वेदोक्त है। जो वैदिक धर्म में विश्वास रखते हैं, उन्हें हर दिन ये 5 यज्ञ करते रहने के लिए मनुस्मृति में निम्न मंत्र दिया गया है-

'अध्यापनं ब्रह्म यज्ञः पित्र यज्ञस्तु तर्पणं। होमोदैवो बलिर्भौतो त्रयज्ञो अतिथि पूजनम्।।

प्रकार

मानव जीवन के लिए जो पंच महायज्ञ महत्त्वपूर्ण माने गये हैं, वे निम्नलिखित हैं-

1. **ब्रह्मयज्ञ**
2. **देवयज्ञ**
3. **पितृयज्ञ**
4. **भूतयज्ञ**
5. **अतिथियज्ञ**

पंचमहायज्ञ का वर्णन प्रायः सभी ऋषि-मुनियों ने अपने-अपने धर्मग्रन्थों में किया है, जिनमें से कुछ ऋषियों के वचनों को यहॉ उद्धृत किया जाता है -

'भूतयज्ञों मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञों देवयज्ञों ब्रह्मयज्ञो इति।'

वेदों को पढ़ना और पढ़ाना **ब्रह्म यज्ञ** कहा जाता है। तर्पण, पिण्डदान और श्राद्ध को **पितृ यज्ञ**। देवताओं के पूजन, होम हवन आदि को **देव यज्ञ** कहते हैं। अपने अन्न से दूसरे प्राणियों के कल्याण हेतु भाग देना **भूतयज्ञ** तथा घर आए अतिथि का प्रेम सहित आदर सत्कार करना **अतिथियज्ञ** कहा जाता है। ब्राह्म यज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथि यज्ञ यही **पंच महायज्ञ** है।

भगवान् मनु की आज्ञा है कि -

पञ्चैतान् यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः।

सगृहेऽपि नसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते।।

'जो गृहस्थ शक्ति के अनुकूल इन पंचमहायज्ञों का एक दिन भी परित्याग नहीं करते, वे गृहस्थ-आश्रम में रहते हुए भी प्रतिदिन के पञ्चसूनाजनित पाप के भागी नहीं होते।

महर्षि हारीत ने कहा है -

यत्फलं सोम यागेन प्राप्नोति धनवान् द्विजः।

सम्यक् पन्चमहायज्ञे दरिद्रस्तदवाप्नुयात्।

धनवान द्विज सोमयाग करके जो फल प्राप्त करता है उसी फल को दरिद्र पंचमहायज्ञ के द्वारा प्राप्त कर सकता है।

पंचमहायज्ञो के अनुष्ठान से समस्त प्राणियों की तृप्ति होती है।

पंचमहायज्ञ करने से अन्नादि की शुद्धि और पापों का क्षय होता है

पंचमहायज्ञ किये बिना भोजन करने से पाप लगता है।

भगवान श्री **कृष्ण ने गीता** (3/13) में कहा है -

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्णिषैः।
भुन्जते ते त्वघं पापा पचन्त्यात्मकारणात्।।

यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खानेवाले श्रेष्ठ पुरूष सभी पापों कसे मुक्त हो जाते है, किन्तु जो पापी केवल अपने लिये ही भोजन बनाते है, वे पाप का ही भक्षण करते है।

महाभारत में भी कहा है -

अहन्हनि ये त्वेतानकृत्वा भुन्जते स्वयम्।
केवलं मलमश्नन्ति ते नरा न च संशयः।।

जो प्रतिदिन इन पंचमहायज्ञों को किये बिना भोजन करते है, वे केवल मल खाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

अतः पंचमहायज्ञ कर के ही गृहस्थों को भोजन करना चाहिए। पंचमहायज्ञ के महत्व एवं इसके यर्थाथ स्वरूप को जानकर द्विजमात्र का कर्त्तव्य है कि वे अवश्य पन्चमहायज्ञ किया करें ऐसा करने से धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की प्राप्ति होगी।

पञ्च महायज्ञों के पृथक-पृथक रूप

ब्रह्मयज्ञ

अध्ययन - अध्यापन को ब्रह्मयज्ञ कहते है, श्रीमद्भगवत् गीता में कहा है -

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

वेद- शास्त्रों के पठन एवं परमेश्वर के नाम का जो जपाभ्यास है वही वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है। स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है। अतः सभी अवस्थाओं में ज्ञान की वृद्धि होती है।

ब्रह्मयज्ञ करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। ब्रह्मयज्ञ करने वाला मनुष्य ज्ञानप्रद-महर्षिगणो का अनृणी और कृतज्ञ हो जाता है।

1. संध्यावन्दन के बाद को प्रतिदिन वेद-पुराणादि का पठन-पाठन करना चाहिए। यद्यपि आज के व्यस्ततम समय में मनुष्य के पास समयाभाव होता है तो पाठकों को सुविधा के लिए प्रत्येक ग्रन्थ का आदि मन्त्र दिया जा रहा है।

ऋग्वेद - हरिः ऊँ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ।।

यजुर्वेद - ऊँ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्व मध्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघस सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्षजमानस्य पशून् पाहि।

सामवेद - ऊँ अग्न आयाहि वीतये गृणनो हव्यदातयेनिहोता सत्सु बर्हिषि।।

अथर्ववेद - ऊँ शं नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंषोरभिस्रवन्तुनः

निरूक्तम् - समाम्नायः समाम्नातः

छन्दः - मयरसतजभनतगसंमितम्।

निघण्टु - गौः ग्मा

ज्यौतिषम् – पञ्चसंवत्सरमयम्।

शिक्षा - अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि ।

व्याकरणम् – वृद्धिरादैच् ।

कल्पसूत्रम् - अथातोऽधिकारः फलयुक्तानि कर्माणि

गृह्मसूत्रम् - अथातो गृह्मस्थलीपाकानां कर्म

न्यायदशैनम् - प्रमाणप्रमेयसंशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्तावयव - तर्क निर्णवाद

जल्पवितणहेत्वाभासच्छलजाति निग्रहस्थानानां तत्वज्ञानानिः श्रेयसाधिगमः।

वैशैषिकदर्शनम् - अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः। यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्म।

योगदर्शनम् - अथयोगानुशासनम्। योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

सांख्यदर्शनम् - अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरूषार्थः

भारद्वाजकर्ममीमांसा - अथातो धर्मजिज्ञासा। धारको धर्मः

जैमिनीकर्ममीमांसा - अथातो धर्मजिज्ञासा, चोदना लक्षणोऽर्प्पो धर्मः।

ब्रह्ममीमांसा - अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। जन्माद्यस्य यतः। शास्त्रयोनित्वात् तत्तु समन्वयात्।

स्मृति - मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः

प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन्

रामायणम् - तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।

नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिमुनिपुड.गम्।।

भारतम् - नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयभुदीरयेत्।।

पुराणम् - जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि तरतश्चार्थेश्वभिज्ञः स्वाराट्

तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसगेऽमृषा

धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।।

3.4 बोध प्रश्न

1. पंच महायज्ञ के कितने प्रकार है।

क. 2 ख. 3 ग. 4 घ. 5

2. ब्रह्म यज्ञ का अर्थ क्या है।

क. आत्मज्ञान की प्रेरणा ख. ब्रह्म का ज्ञान ग. परमात्मा का ज्ञान घ. कोई नहीं

3. भूत यज्ञ की भावना है - प्राणि मात्र तक आत्मीयता का विस्तार।

क. प्राणि मात्र तक आत्मीयता का विस्तार। ख. भूतों का यज्ञ ग. शान्ति के लिये यज्ञ घ. प्रेत बाधाओं से शान्ति के लिये यज्ञ

4. पुरूषार्थ के कितने प्रकार है ।

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

5. तर्पण में वर्जित है -

क. तॉबे का पात्र ख. मिट्टी तथा लोहे का पात्र ग. कॉसे का पात्र घ. पीतल का पात्र

तन्त्रम् –

आचारमूला जातिः स्यादाचारः शास्त्रमूलकः।
वेदवाक्यं शास्त्रमूलं वेदः साधकमूलकः।।
साधकश्च क्रियामूलः क्रियापि फलमूलिका।
फलमूलं सुखं देवि सुखमानन्दमूलकम्।।

यदि समयाभाव हो तो 108 बार गायत्री का जप करें।

देवयज्ञ

अपने इष्टदेव की उपासना के लिए परब्रह्म परमात्मा के निमित्त अग्नि में किये हवन को देव यज्ञ कहते है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तिेय तत्कुरूष्व मदर्पणम् ।।गीता 9 ।।2।।

भगवान् के इस वचन से सिद्ध होता है कि परब्रह्म परमात्मा ही समस्त यज्ञों के आश्रयभूत है। नित्य और नैमित्रिक - भेदसे देवता दो भागों में विभक्त है, उनमें रूद्रगण, वसुगण और इन्द्रादि नित्य देवता कहे जाते हैं, और ग्रामदेवता, बनदेवता, तथा गृहदेवता आदि नैनित्रिक देवता कहे जाते है। दोनों तरह के ही देवता इस यज्ञ से तृप्त होते हैं। जिन देवताओं की कृपा से संसार के समस्त कार्यकलाप की भलीभाँति उत्पत्ति और रक्षा होती है, उन देवताओं से उऋृण होने के लिए देवयज्ञ करना परमावश्यक है।

देवयज्ञ से नित्य और नैमित्तिक देवता तृप्त होते है।

भूतयज्ञ

कृमि, कीट पतड.ग पशु और पक्षी आदि की सेवा को ''भूतयज्ञ'' करते है। ईश्वरचित सृष्टि के किसी भी अड.ग की उपेक्षा कभी नहीं की जा सकती, क्योंकि सृष्टि के सिर्फ एक ही अंग की साहयता से समस्त अंगों की सहायता समझी जाती है, अतः 'भूतयज्ञ' भी परम धर्म है।

प्रत्येक प्राणी अपने सुख के लिए अनेक जीवों को प्रतिदिन क्लेश देता है, क्योंकि ऐसा हुए बिना क्षणमात्र भी शरीर यात्रा नहीं चल सकती।

प्रत्येक मनुष्य के निःश्वास-प्रश्वास, भोजन-प्राशन, विहार-सन्चार आदि में अगणित जीवों की हिंसा होती है। निरामिष भोजन करने वाले लोगों के भोजन के समय भी अगणित जीवों का प्राण-वियोग होता है। अतः जीवों से उऋण होने के लिए भूतयज्ञ करना आवश्यक है। भूतयज्ञ से कृमि, कीट, पशु-पक्षी आदि की तृप्ति होती है।

पितृ यज्ञ

अर्यमादि नित्य पितरों की तथा परलोकगामी नैमित्तिक पितरों की पिण्डप्रदानादि से किये जानेवाले सेवारूप यज्ञ को ''पितृयज्ञ'' कहते सन्मार्गप्रवर्त्तक माता-पिता की कृपा से असन्मार्ग से निवृत्त होकर मनुष्य ज्ञान की प्राप्ति करता है, फिर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि सकल पदार्थों को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। ऐसे दयालु पितरों की तृप्ति के लिए, उनके सम्मान के लिए, अपनी कृतज्ञता के प्रदर्शन तथा उनसे उऋण के लिए पितृयज्ञ करना नितान्त आवश्यक है।

पितृयज्ञ से समस्त लोकों की तृप्ति और पितरों की तुष्टि की अभिवृद्धि होती है।

मनुष्ययज्ञ

क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित मनुष्य के घर आ जाने पर उसकी भोजनादि से की जानेवाली सेवारूप यज्ञ को ''मनुष्ययज्ञ'' कहते है। अतिधि के घर आ जाने पर वह चाहे किसी जाति या किसी भी सम्प्रदाय का हो, उसे पूज्य समझ कर उसकी समुचित पूजा कर उसे अन्नादि देना चाहिए।

प्रथमावस्था में मनुष्य अपने शरीरमात्र के सुख से अपने को सुखी समझता है, फिर पुत्र, कलत्र, मित्रादि, को सुखी देखकर सुखी होता है। तदनन्तर स्वेदशवासियों को सुखी देखकर सुखी होता है। इसके बाद पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने पर वह समस्त लोकसमूह को सुखी देखकर सुखी होता है। परन्तु वर्तमान समय में एक मनुष्य समस्त प्राणियों की सेवा नहीं कर सकता, इसलिए यथाशक्ति अन्नदान प्राणियों की सेवा नहीं कर सकता, इसलिए यथाशक्ति अन्नदान द्वारा मनुष्यमात्र की सेवा करना ही ''मनुष्ययज्ञ'' कहा जाता है।

मनुष्य यज्ञ से धन, आयु, यश और स्वर्गादि की प्राप्ति होती है।।

नित्यतर्पण विधान

तर्पण के योग पात्र - हैमं रौप्यमयं पात्रं ताम्रं कांस्यसमुद्भवम्।

पितहणां तर्पणे पात्रं मृण्मयं तु परित्यजेत्।।

सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, का पात्र पितरों के तर्पण में प्रशस्त माना गया है। मिट्टी तथा लोहे का पात्र तर्पण में वर्जित है।

दाहिनी अनामिका के मध्य में कुशा की पवित्री पहने।

फिर हाथ में त्रिकुश यव, अक्षत और जल लेकर संकल्प करें ।

विष्णु: 3 नमः पर्मात्मने श्री पुराणपुरूषोत्तमाय-

अद्येह श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं देवर्विमनुषपितृमां।

स्वपितृणां अक्षयतृप्ति प्राप्त्यंर्थं तर्पणं करिष्ये।।

आवाहन - इसके बाद ताँबे के पात्र में जल और चावल डालकर त्रिकुशको पूर्वाग्र रखकर उस पात्र को दायें हाथ में लेकर बायें हाथ से ढककर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर देव-ऋषियों का आवाहन करें । वैदिक धर्म में गृहस्थ को पंच महायज्ञ करने के लिए बताया गया है, परंतु आज अधिकांश गृहस्थ यज्ञ नहीं करते; अतः उनके जीवन में आध्यात्मिक कष्ट की भरमार रहती है । देव, ऋषि, पितर, समाज और अतिथि के प्रति हमारे कर्तव्य को पंच महायज्ञ बताया गया है । बलिवैश्व की ५ आहुतियाँ को तत्त्वदर्शियों ने पंच महायज्ञ की संज्ञा दी है । इस कथन का स्पष्टीकरण देते हुए युगऋषि ने वाङ्मय-२६६.२/ एवं ६३. में लिखते हैंबलिवैश्व - की पाँच आहुतियों को 'पंच महायज्ञ' क्यों कहा गया है? बोलचाल - की भाषा में किसी शब्द के साथ महा शब्द लगा देने से उसका अर्थ बड़ाबहुत - बड़ा हो जाता है। यज्ञ शब्द से भी सामूहिक अग्निहोत्र का बोध होता है, फिर महा शब्द लगा देने का अर्थ यह होता है कि कोई विशालकाय आयोजन होना चहिए। प्रायः १०० कुण्डी, २५ कुण्डी यज्ञ आयोजनों को महायज्ञ की उपाधि से विभूषित किया जाता है। फिर आहार में से छोटेछोटे - पांच ग्रास निकालकर आहुतियाँ दे देने मात्र की दो मिनट में सम्पन्न हो जाने वाली क्रिया को महायज्ञ नाम क्यों दिया गया? इतना ही नहीं, हर आहुति को महायज्ञ की संज्ञा दी गई ऐसा क्यों? यदि बलिवैश्व महायज्ञ नाम दिया जाता है, तो कम से कम उससे इतना बोध तो होता है कि पाँच आहुतियाँ वाला कोई बड़ा आयोजन है। पंच महायज्ञ नाम देने से तो यह अर्थ निकलता है कि अलगअलग - पाँच महायज्ञ का कोई सम्मिलित आयोजन हो रहा होगा। इसका तात्पर्य किसी अत्यधिक विशालकाय धर्मानुष्ठान जैसी व्यवस्था होने जैसा ही कुछ निकलता है। इतने छोटे कृत्य का नाम इतना बड़ा क्यों रखा गया?

यह वस्तुतः एक आश्चर्य का विषय है। नामकरण की यह विसंगत भूल ऋषियों ने कैसे कर डाली, यह बात अनबूझ पहेली जैसी लगती है। वस्तुस्थिति का पर्यवेक्षण करने से तथ्य सामने आ जाते हैं और प्रकट होता है कि यहाँ न कोई भूल हुई है और न कोई विसंगति है। अन्तर इतना ही है कि कृत्य के स्थान पर तथ्य को प्रमुखता दी गई है। दृश्य के स्थान पर रहस्य कोप्रेरणा - कोध्यान - में रखा गया है। साधारणतया दृश्य को, कृत्य को प्रमुखता देते हुए नामकरण किया जाता है, किन्तु बलि- वैश्व की पाँच आहुतियों के पीछे जो प्रतिपादन जुड़े हुए हैं, उन पाँचों को एक स्वतंत्र यज्ञ नहींमहायज्ञ - माना गया है। स्पष्टीकरण की दृष्टि से हर आहुति को एकएक - स्वतंत्र नाम भी दे दिया गया है। पाँच आहुतियों को जिन पाँच यज्ञों का नाम दिया गया है, उनमें शास्त्रीय मतभेद पाया जाता है। इन मतभेदों के मध्य अधिकांश की सहमति को ध्यान में रखा जाय, तो इनके नाम १. ब्रह्म यज्ञ २. देव यज्ञ ३. ऋषियज्ञ ४. नर यज्ञ ५. भूत यज्ञ ही प्रमुख रूप से रह जाते हैं। मोटी मान्यता यह है कि जिस देवता के नाम पर आहुति दी जाती है, वह उसे मिलती है, फलतः वह प्रसन्न होकर यज्ञकर्त्ता को सुखशांति - के लिए अभीष्ट वरदान प्रदान करते हैं। यहाँ देवता शब्द का तात्पर्य समझने में भूल होती रहती है। देवता किसी अदृश्य व्यक्ति जैसी सत्ता को माना जाता है, पर वस्तुतः बात वैसी है नहीं। देवों का तात्पर्य किन्हीं भाव शक्तियों से है, जो चेतना तरंगों की तरह इस संसार में एवं प्राणियों के अन्तराल में संव्याप्त रहती हैं। साधारणतया वे प्रसुप्त पड़ी रहती हैं और मनुष्य सत्शक्तियों से, सद्भावनाओं से और सम्प्रवृत्तियों से रहित दिखाई पड़ता है, इस प्रसुप्ति को जागृति में परिणत करने वाले प्रयासों को देवाराधन कहा जाता है। अनेकानेक धर्मानुष्ठान, योगसाधन -, तपविधान -, मंत्राराधन इन देव प्रवृत्तियों को प्रखर- सक्रिय बनाने के लिए ही किये जाते हैं। जो प्रतीक के माध्यम से प्रेरणाप्रयोजन - तक पहुँच जाते हैं, उन्हीं की देवपूजा सार्थक होती है।

पंच महायज्ञों में जिन ब्रह्म, देव, ऋषि आदि का उल्लेख है, उनके निमित्त आहुति देने का अर्थ इन्हें अदृश्य व्यक्ति मानकर भोजन कराना नहीं, वरन् यह है कि इन शब्दों के पीछे जिन देव वृत्तियों का - सत्प्रवृत्तियों कासंकेत - है, उनके अभिवर्धन के लिए अंशदान करने की तत्परता अपनाई जाय।

१. **ब्रह्म यज्ञ का अर्थब्रह्म -** ज्ञान आत्मज्ञान की प्रेरणा। ईश्वर और जीव के बीच चलने वाली पारस्परिक आदानप्रदान - प्रक्रिया है।

२. **देव यज्ञ का उद्देश्य पशु** से मनुष्य तक पहुँचाने वाले प्रगति क्रम को आगे बढ़ाना । देवत्व के अनुरूप गुणकर्म - का विकास विस्तार। पवित्रता और उदारता का अधिकाधिक संवर्धन।

३. **ऋषि यज्ञ का तात्पर्य है** पिछड़ो - को उठाने में संलग्न करुणार्द्र जीवननीति। सदाशयता - संवर्धन की तपश्चर्या। पूर्व पुरुषों- ऋषियों के आदर्शों को आत्मसात् करना।

४. **नर यज्ञ की प्रेरणा है** मानवीय गरिमा के अनुरूप वातावरण एवं समाजव्यवस्था - का निर्माण। मानवी गरिमा का संरक्षण नीति और व्यवस्था का परिपालन, नर में नारायण का उत्पादन। विश्व मानव का श्रेयसाधन। -

५. **भूत यज्ञ की भावना है** प्राणी मात्र तक आत्मीयता का विस्तार- अन्याय जीवधारियों के प्रति सद्भावना पूर्ण व्यवहार। वृक्ष- वनस्पतियों तक के विकास का प्रयास।

इन पाँचों प्रवृत्तियों में व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी प्रगति, पवित्रता और सुव्यवस्था के सिद्धान्त जुड़े हुए हैं। जीवनचर्या और समाज व्यवस्था में इन सिद्धान्तों का जिस अनुपात में समावेश होता जाएगा, उसी क्रम से सुखद परिस्थितियों का निर्माण निर्धारित होता चला जाएगा। बीज छोटा होता है, किन्तु उसका फलितार्थ विशाल वृक्ष बनकर सामने आता है। चिनगारी छोटी होती है, अनुकूल अवसर मिलने पर वही दावानल का रूप धारण कर लेती है। गणित के सूत्र छोटे से होते हैं, पर उनसे जटिलतायें सरल होती चली जाती हैं। अणुजीवाणु - तनिक से होते हैं, पर जब भी उन्हें अपना पराक्रम दिखाने का अवसर मिलता है, चमत्कारी प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ का दृश्य स्वरूप तो अल्प है, पर उनमें जिन पाँच प्रेरणा सूत्रों का समावेश है, उन्हें व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी प्रगति के आधारभूत सिद्धांत कहा जा सकता है। इनका निरंतर ध्यान रहे, इनके अनुरूप जीवन की नीति एवं समाज की व्यवस्था बनाने का प्रयत्न होता रहे, उसकी स्मृति हर रोज ताजी होती रहे, इसके लिए पाँच आहुतियाँ देकर पाँच आदर्शों की प्रतीक- पूजा को महत्त्वपूर्ण माना गया है। यज्ञकर्त्ता बलिवैश्व कर्म करते हुए इन पाँचों के अनुग्रहवरदान - की अपेक्षा करता है। यह आशा तब निस्संदेह पूरी हो सकती है, जब आहुतियों के पीछे जो उद्देश्य सन्निहित है, उन्हें व्यवहार में उतारा जाय। इन्हीं उत्कृष्टताओं का व्यापक प्रचलनअवलम्बन - इस पंच महायज्ञ प्रक्रिया का मूलभूत प्रयोजन है। बलिवैश्व को इन्हीं देवप्रेरणाओं - का प्रतीकप्रतिनिधि - माना जा सकता है। कहना न होगा कि यह आदर्श जिस अनुपात से अपनाये जायेंगे, उसी के अनुरूप व्यक्ति में देवत्व की मनःस्थिति और संसार में स्वर्गीय परिस्थिति का मंगलमय वातावरण दृष्टिगोचर होगा। युग परिवर्तन यही है। बलि- वैश्व की प्रेरणाएँ प्रकारान्तर से नवयुग की सुखद सम्भावनाओं का बीजारोपण करती हैं।

3.5 सारांश -

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप कर्मकाण्ड में उद्धृत पंचमहायज्ञ से अवगत हो जायेंगे। सनातन परम्परा के आचार्यों ने गृहस्थ जीवन सुखमय एवं उत्तरोत्तर विकासशील हो इसके

लिये पंचमहायज्ञ का विधान बताया है । जिस गृहस्थ के द्वारा उसके दैनन्दिनी जीवन में पंचमहायज्ञ कर्म किया जाता है, उसका सर्वदा ही कल्याण होता है । ऐसा पूर्वाचार्यों ने प्रतिपादित किया है । हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने दैनिक जीवन में कृत्य जिन कर्मों का शास्त्रों में उल्लेख किया है । उसे मानव यदि अपने जीवन में अपना ले तो उसका सर्वतोमुखी विकास हो सकेगा । अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रात:कालीन नित्यकर्मविधि का विधिवत अध्ययन करेंगे ।

3.6 शब्दावली

पंचमहायज्ञ – पंचमहायज्ञ से तात्पर्य पॉच प्रकार के यज्ञों से है । यथा – ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, भूत यज्ञ, आदि ।

सर्वतोमुखी – सम्पूर्ण

यज्ञकर्ता – यज्ञ करने वाला

दृष्टिगोचर – चक्षुसन्निकर्ष ज्ञान

दैनन्दिनी – प्रतिदिन

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. घ
2. क
3. क
4. ख
5. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	**प्रकाशन**
नित्यकर्म पूजाप्रकाश	गीताप्रेस गोरखपुर

भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व – चौखम्भा प्रकाशन

कर्मकाण्ड प्रदीप – चौखम्भा प्रकाशन

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- पंच महायज्ञ से आप क्या समझते है । विस्तार से वर्णन कीजिये ?

2- गृहस्थों के पंच महायज्ञ कौन – कौन है । व्यावहारिक रूप में उनका क्या महत्व है, स्पष्ट कीजिये

इकाई – 4 वेदों का संक्षिप्त परिचय

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3. वेदों का परिचय एवं अपौरूषेयवाद

वेद की परिभाषा, स्वरूप एवं महत्व

4.4 बोध प्रश्न

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 कर्मकाण्ड के प्रथम पत्र के प्रथम खण्ड का चतुर्थ अध्याय **'वेदों का संक्षिप्त परिचय'** से सम्बन्धित है। इस इकाई में आप वेद सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करेगें। "विद्" का अर्थ है: जानना, ज्ञान शब्द संस्कृत भाषा के "विद्" धातु से बना है। 'वेद' हिन्दू धर्म के प्राचीन पवित्र ग्रंथों का नाम है, इससे वैदिक संस्कृति प्रचलित हुई। ऐसी मान्यता है कि इनके मन्त्रों को परमेश्वर ने प्राचीन ऋषियों को अप्रत्यक्ष रूप से सुनाया था। इसलिए वेदों को श्रुति भी कहा जाता है। वेद प्राचीन भारत के वैदिककाल की वाचिक परम्परा की अनुपम कृति है जो पीढी दर पीढी पिछले चार-पाँच हज़ार वर्षों से चली आ रही है। वेद ही हिन्दू धर्म के सर्वोच्च और सर्वोपरि धर्मग्रन्थ हैं। वेद के मन्त्र भाग को संहिता कहते हैं।

इस इकाई में वेद सम्बन्धित विषयों का सम्यक् अध्ययन करेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि –

1. वेद क्या है तथा उनके कितने प्रकार है।
2. वेद के क्या महत्व है और इसे अपौरूषेय क्यों कहा जाता है।
3. उपवेद किसे कहते है।
4. वेद के कितने विभाग है तथा वेद ईश्वरीय देन है या मानव निर्मित।
5. उपनिषद् किसे कहते है।

4.3 वेदवाड्मय- परिचय एवं अपौरुषेयवाद

'सनातन धर्म' एवं 'भारतीय संस्कृति' का मूल आधार स्तम्भ विश्व का अतिप्राचीन और सर्वप्रथम वाड्मय **'वेद'** माना गया है। मानव जाति के लौकिक (सांसारिक) तथा पारमार्थिक अभ्युदय-हेतु प्राकट्य होने से वेद को अनादि एवं नित्य कहा गया है। अति प्राचीनकालीन महा तपा, पुण्यपुञ्ज ऋषियों के पवित्रतम अन्त:करण में वेद के दर्शन हुए थे, अत: उसका नाम 'वेद' प्राप्त हुआ। ब्रह्म का स्वरूप 'सत-चित-आनन्द' होने से ब्रह्म को वेद का पर्यायवाची शब्द कहा गया है। इसीलिये वेद लौकिक एवं अलौकिक ज्ञान का साधन है। 'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये0'- तात्पर्य यह कि कल्प के प्रारम्भ में आदि कवि ब्रह्मा के हृदय में वेद का प्राकट्य हुआ।

- सुप्रसिद्ध वेदभाष्यकार महान पण्डित सायणाचार्य अपने वेदभाष्य में लिखते हैं कि 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद:'
- निरूक्त कहता है कि 'विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति'
- 'आर्यविद्यासुधाकर-' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि— वेदो नाम वेद्यन्ते ज्ञाप्यन्ते धर्मार्थकाममोक्षा अनेनेति व्युत्पत्त्या चतुर्वर्गज्ञानसाधनभूतो ग्रन्थविशेष॥:

- 'कामन्दकीय नीति' भी कहती है -'आत्मानमन्विच्छ।' 'यस्तं वेद स वेदवित्॥' कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मज्ञान का ही पर्याय वेद है।
- रुति भगवती बतलाती है कि 'अनन्ता वै वेदा॥:' वेद का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान अनन्त है, अत : वेद भी अनन्त हैं। तथापि मुण्डकोपनिषद की मान्यता है कि वेद चार हैं -'ऋग्वेदो यजुर्वेद : ॥:सामवेदो ऽथर्ववेद' इन वेदों के चार उपवेद इस प्रकार हैं—

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रय:। स्थापत्यवेदमपरमुपवेदश्चतुर्विध:॥ उपवेदों के कर्ताओं में

1. **आयुर्वेद** के कर्ता धन्वन्तरि,
2. **धनुर्वेद** के कर्ता विश्वामित्र,
3. **गान्धर्ववेद** के कर्ता नारद मुनि और
4. **स्थापत्यवेद** के कर्ता विश्वकर्मा हैं।

मनुस्मृति में वेद ही श्रुति

मनुस्मृति कहती है- 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेय:' 'आदिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तं ब्रह्मादिभि: सर्वा: सत्यविद्या: श्रूयन्ते सा श्रुति:॥' वेदकालीन महातपा सत्पुरुषों ने समाधि में जो महाज्ञान प्राप्त किया और जिसे जगत के आध्यात्मिक अभ्युदय के लिये प्रकट भी किया, उस महाज्ञान को 'श्रुति' कहते हैं।

श्रुति के दो विभाग हैं-

1. वैदिक और
2. तान्त्रिक -'श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च।'

तन्त्र मुख्य रूप से तीन प्रकार के माने गये है -

1. महानिर्वाणतन्त्र-,
2. नारदपाञ्चरात्रतन्त्र और-
3. कुलार्णवतन्त्र।-

वेद के दो विभाग हैं-

1. मन्त्र विभाग और
2. ब्राह्मण विभाग -'वेदो हि मन्त्रब्राह्मणभेदेन द्विविध।:'

वेद के मन्त्र विभाग को संहिता भी कहते हैं। संहितापरक विवेचन को 'आरण्यक' एवं संहितापरक भाष्य को 'ब्राह्मणग्रन्थ' कहते हैं। वेदों के ब्राह्मणविभाग में' आरण्यक' और 'उपनिषद'- का भी समावेश है। ब्राह्मणविभाग में 'आरण्यक' और 'उपनिषद'- का भी समावेश है। ब्राह्मणग्रन्थों की संख्या 13 है, जैसे ऋग्वेद के 2, यजुर्वेद के 2, सामवेद के 8 और अथर्ववेद के एक।

मुख्य ब्राह्मणग्रन्थ पाँच है -

1. ऐतरेय ब्राह्मण,
2. तैत्तिरीय ब्राह्मण,
3. तलवकार ब्राह्मण,

4. शतपथ ब्राह्मण और
5. ताण्डय ब्राह्मण।

उपनिषदों की संख्या 108 हैं, परन्तु मुख्य 12 माने गये हैं, जैसे-

1. ईश,
2. केन,
3. कठ,
4. प्रश्न,
5. मुण्डक,
6. माण्डूक्य,
7. तैत्तिरीय,
8. ऐतरेय,
9. छान्दोग्य,
10. बृहदारण्यक,
11. कौषीतकि और
12. श्वेताश्वतर।

वेद ईश्वरीय है या मानवनिर्मित -

वेद पौरुषेय ।(ईश्वरप्रणीत) है या अपौरुषेय (मानवनिर्मित) वेद का स्वरूप क्या है? इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का स्पष्ट उत्तर ऋग्वेद में इस प्रकार है-'वेद' परमेश्वर के मुख से निकला हुआ 'परावाक' है, वह 'अनादि' एवं 'नित्य' कहा गया है। वह अपौरुषेय ही है। इस विषय में मनुस्मृति कहती है कि अति प्राचीन काल के ऋषियों ने उत्कट तपस्या द्वारा अपने तप पूत हृदय में:'परावाक' वेदवाड्मय का साक्षात्कार किया था, अत: वे मन्त्र द्रष्टा ऋषि कहलाये -'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार।:'

बृहदारण्यकोपनिषद में उल्लेख है -'अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्वाग्डिरस।' अर्थात उन महान परमेश्वर के द्वारा -सृष्टि) प्राकट्य होने के साथ ही(–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद निश्वास: की तरह सहज ही बाहर प्रकट हुए। तात्पर्य यह है कि परमात्मा का निहै श्वास ही वेद:। इसके विषय में वेद के महापण्डित सायणाचार्य अपने वेद भाष्य में लिखते हैं-

यस्य नि:श्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्।। सारांश यह कि वेद परमेश्वर का नि:श्वास है, अत: परमेश्वर द्वारा ही निर्मित है। वेद से ही समस्त जगत का निर्माण हुआ है। इसीलिये वेद को अपौरुषेय कहा गया है। सायणाचार्य के इन विचारों का समर्थन पाश्चात्य वेद विद्वान प्रो0 विल्सन, प्रो0 मैक्समूलर आदि ने अपने पुस्तकों में किया है।

प्रो0 विल्सन लिखते हैं कि 'सायणाचार्य का वेद विषयक ज्ञान अति विशाल और अति गहन है, जिसकी समकक्षता का दावा कोई भी यूरोपीय विद्वान नहीं कर सकता।'

प्रो0 मैक्समूलर लिखते हैं कि 'यदि मुझे सायणाचार्यरहित बृहद वेदभाष्य पढ़ने को नहीं मिलता तो मैं वेदार्थों के दुर्भेद्य क़िला में प्रवेश ही नहीं पा सका होता।' इसी प्रकार पाश्चात्त्य वेद विद्वान वेबर, बेनफी, राथ, ग्राम्सन, लुडविग, ग्रिफिथ, कीथ तथा विंटरनित्ज आदि ने सायणाचार्य के वेद विचारों का ही प्रतिपादन किया है।

निरूक्तकार 'यास्काचार्य' भाषाशास्त्र के आद्यपण्डित माने गये हैं। उन्होंने अपने महाग्रन्थ वेदभाष्य में स्पष्ट लिखा है कि 'वेद अनादि, नित्य एवं अपौरुषेय ही है।(ईश्वरप्रणीत)' उनका कहना है कि 'वेद का अर्थ समझे बिना केवल वेदपाठ करना पशु की तरह पीठ पर बोझा ढोना ही है; क्योंकि अर्थज्ञानरहित शब्द नहीं दे सकता। जिसे (ज्ञान) प्रकाश (मन्त्र) वेदज्ञान हुआ है-मन्त्रों का अर्थ-, उसी का लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण होता है।' ऐसे वेदार्थ ज्ञान का मार्ग दर्शक निरूक्त है।

जर्मनी के वेद विद्वान प्रो0 मैक्समूलर कहते हैं कि 'विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय वेद ही है, जो दैविक एवं आध्यात्मिक विचारों को काव्यमय भाषा में अद्भुत रीति से प्रकट करने वाला कल्याणप्रदायक है। वेद परावाक है।' निऐसा -का निर्माण किया है (वेदवाणी) वाकसंदेह परमेश्वर ने ही परा: महाभारत में स्पष्ट कहा गया है-'अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा॥' अर्थात जिसमें से सर्वजगत उत्पन्न हुआ, ऐसी अनादि वेदविद्यारूप दिव्य वाणी का निर्माण जगन्निर्माता ने सर्वप्रथम किया।- ऋषि वेद मन्त्रों के कर्ता नहीं अपितु द्रष्टा ही थे -'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार।:' निरूक्तकार ने भी कहा हैवेद मन्त्रों के - साक्षात्कार होने पर साक्षात्कारी को ऋषि कहा जाता है -'ऋषिर्दर्शनात्।' इससे स्पष्ट होता है कि वेद का कर्तृत्व अन्य किसी के पास नहीं होने से वेद ईश्वरप्रणीत ही है, अपौरुषेय ही है।

भारतीय दर्शन शास्त्र के मतानुसार शब्द को नित्य कहा गया है। वेद ने शब्द को नित्य माना है, अत: वेद अपौरुषेय है यह निश्चित होता है। निरूक्तकार कहते हैं कि 'नियतानुपूर्व्या नियतवाचो युक्तय।:' अर्थात शब्द नित्य है, उसका अनुक्रम नित्य है और उसकी उच्चारणपद्धति भी नित्य है-, इसीलिये वेद के अर्थ नित्य हैं। ऐसी वेदवाणी का निर्माण स्वयं परमेश्वर ने ही किया है।

शब्द की चार अवस्थाएँ मानी गयी हैं-

1. परा,
2. पश्यन्ती,
3. मध्यमा और
4. वैखरी ।

ऋग्वेद-विषय में इस प्रकार कहा गया है में इनके -

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:। गुहा त्रीणि निहिता नेग्डयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्य वदन्ति॥ अर्थात वाणी के चार रूप होने से उन्हें ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं। वाणी के तीन रूप गुप्त हैं, चौथा रूप शब्दमय वेद के रूप में लोगों में प्रचारित होता है ।

सूक्ष्मातिसूक्ष्मज्ञान को परावाक कहते हैं। उसे ही वेद कहा गया- है। इस वेदवाणी का साक्षात्कार महा तपस्वी ऋषियों को होने से इसे 'पश्यन्तीवाक' कहते हैं। ज्ञानस्वरूप वेद का आविष्कार शब्दमय है।

इस वाणी का स्थूल स्वरूप ही 'मध्यमावाक' है। वेदवाणी के ये तीनों स्वरूप अत्यन्त रहस्यमय हैं। चौथी 'वैखरीवाक' ही सामान्य लोगों की बोलचाल की है। शतपथ ब्राह्मण तथा माण्डूक्योपनिषद में कहा गया है कि वेद मन्त्र के प्रत्येक पद में, शब्द के प्रत्येक अक्षर में एक प्रकार का अद्भुत सामर्थ्य भरा हुआ है। इस प्रकार की वेद वाणी स्वयं परमेश्वर द्वारा ही निर्मित है, यह निशंक है।:

शिव पुराण में आया है कि ॐ के 'अ' कार, 'उ' कार, 'म' कार और सूक्ष्मनाद; इनमें से

1. ऋग्वेद,
2. यजुर्वेद,
3. सामवेद तथा
4. अथर्ववेद नि से ही निर्मित हुआ। -(ॐ) सृत हुए। समस्त वाङ्मय ओंकार:'ओंकारं बिंदुसंयुक्तम्' तो ईश्वररूप ही है।

श्रीमद् भगवद्गीता में भी ऐसा ही उल्लेख हैमयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥-

श्रीमद्भागवत में तो स्पष्ट कहा गया है ।:वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्यय -वेदो नारायणसाक्षात् : स्वयम्भूरिति शुश्रुम॥ अर्थात वेद भगवान ने जिन कार्यों को करने की आज्ञा दी है वह धर्म है और उससे विपरीत करना अधर्म है। वेद नारायण रूप में स्वयं प्रकट हुआ है, ऐसा श्रुति में कहा गया है। श्रीमद्भागवत में ऐसा भी वर्णित है। श्रद्धा दया तितिक्षा च :शम :सत्यं दम :विप्रा गावश्च वेदाश्च तप -॥:क्रतवश्च हरेस्तनू अर्थात वेदज्ञ ब्राह्मण (सदाचारी भी), दुधारू गाय, **वेद**, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, सहनशीलता और यज्ञ- ये श्रीहरि के स्वरूप है ।

मनुस्मृति वेद को धर्म का मूल बताते हुए कहती हैस्मृतिशीले च तद्विदाम्। वेदोऽखिलो धर्ममूलं - आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥अर्थात समग्र वेद एवं वेदज्ञ मनु, पराशर, याज्ञवल्क्य आदि - की स्मृति, शील, आचार, साधु ये सभी धर्मों के मूल हैं।-के आत्मा का संतोष -(धार्मिक) याज्ञवल्क्यस्मृति में भी कहा गया है :। स्म्यक्संकल्पज:स्वस्य च प्रियमात्मन :सदाचार :स्मृति :श्रुति - स्मृतम्॥ कामो धर्ममूलमिदंअर्थात श्रुति, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार, अपने आत्मा की प्रीति और उत्तम संकल्प से हुआ ये पाँच धर्म के मूल हैं। इसीलिये -काम (धर्माविरूद्ध) भारतीय संस्कृति में वेद सर्वश्रेष्ठ स्थान पर है। वेद का प्रामाण्य त्रिकालाबाधित है।

वेद के प्रकार -

ऋग्वेद :वेदों में सर्वप्रथम ऋग्वेद का निर्माण हुआ । यह पद्यात्मक है । यजुर्वेद गद्यमय है और सामवेद गीतात्मक है। ऋग्वेद में मण्डल 10 हैं,1028 सूक्त हैं और 11 हज़ार मन्त्र हैं । इसमें 5 शाखायें हैं - शाकल्प, वास्कल, अश्वलायन, शांखायन, मंडूकायन । ऋग्वेद के दशम मण्डल में औषधि सूक्त हैं। इसके प्रणेता अर्थशास्त्र ऋषि है। इसमें औषधियों की संख्या 125 के लगभग निर्दिष्ट की गई है जो कि 107 स्थानों पर पायी जाती है। औषधि में सोम का विशेष वर्णन है। ऋग्वेद में च्यवनऋषि को पुनः युवा करने का कथानक भी उद्धृत है और औषधियों से रोगों का नाश करना भी समाविष्ट है । इसमें जल चिकित्सा, वायु चिकित्सा, सौर चिकित्सा, मानस चिकित्सा एवं हवन द्वारा

चिकित्सा का समावेश है

सामवेद : चार वेदों में सामवेद का नाम तीसरे क्रम में आता है। पर ऋग्वेद के एक मन्त्र में ऋग्वेद से भी पहले सामवेद का नाम आने से कुछ विद्वान वेदों को एक के बाद एक रचना न मानकर प्रत्येक का स्वतंत्र रचना मानते हैं। सामवेद में गेय छंदों की अधिकता है जिनका गान यज्ञों के समय होता था। 1824 मन्त्रों कें इस वेद में 75 मन्त्रों को छोड़कर शेष सब मन्त्र ऋग्वेद से ही संकलित हैं। इस वेद को संगीत शास्त्र का मूल माना जाता है। इसमें सविता, अग्नि और इन्द्र देवताओं का प्राधान्य है। इसमें यज्ञ में गाने के लिये संगीतमय मन्त्र हैं, यह वेद मुख्यतः गन्धर्व लोगो के लिये होता है । इसमें मुख्य 3 शाखायें हैं, 75 ऋचायें हैं और विशेषकर संगीतशास्त्र का समावेश किया गया है ।

यजुर्वेद : इसमें यज्ञ की असल प्रक्रिया के लिये गद्य मन्त्र हैं, यह वेद मुख्यतः क्षत्रियो के लिये होता है । यजुर्वेद के दो भाग हैं –

1. कृष्ण : वैशम्पायन ऋषि का सम्बन्ध कृष्ण से है । कृष्ण की चार शाखायें है।

2. शुक्ल : याज्ञवल्क्य ऋषि का सम्बन्ध शुक्ल से है । शुक्ल की दो शाखायें हैं । इसमें 40 अध्याय हैं । यजुर्वेद के एक मन्त्र में 'ब्रीहिधान्यों' का वर्णन प्राप्त होता है । इसके अलावा, दिव्य वैद्य एवं कृषि विज्ञान का भी विषय समाहित है ।

अथर्ववेद : इसमें जादू, चमत्कार, आरोग्य, यज्ञ के लिये मन्त्र हैं, यह वेद मुख्यतः व्यापारियों के लिये होता है । इसमें 20 काण्ड हैं । अथर्ववेद में आठ खण्ड आते हैं जिनमें भेषज वेद एवं धातु वेद ये दो नाम स्पष्ट प्राप्त हैं। वेद मानव सभ्यता के लगभग सबसे पुराने लिखित दस्तावेज हैं! वेद ही हिन्दू धर्म के सर्वोच्च और सर्वोपरि धर्मग्रन्थ हैं! सामान्य भाषा में वेद का अर्थ है "ज्ञानज्ञान :वस्तुत ! " रूपी-मन के अज्ञान-वह प्रकाश है जो मनुष्य अन्धकार को नष्ट कर देता है वेदों को इतिहास का ! ऐसा स्रोत कहा गया है जो पोराणिक ज्ञानवेद शब्द संस्कृत के विद ! विज्ञानं का अथाह भंडार है- शब्द से निर्मित है अर्थात इस एक मात्र शब्द में ही सभी प्रकार का ज्ञान समाहित है प्राचीन भारतीय ! ऋषि जिन्हें मंत्रद्रिष्ट कहा गया है, उन्हें मंत्रो के गूढ़ रहस्यों को ज्ञान कर, समझ कर, मनन कर उनकी अनुभूति कर उस ज्ञान को जिन ग्रंथो में संकलित कर संसार के समक्ष प्रस्तुत किया वो प्राचीन ग्रन्थ "वेदकहलाये "। एक ऐसी भी मान्यता है कि इनके मन्त्रों को परमेश्वर ने प्राचीन ऋषियों को अप्रत्यक्ष रूप से सुनाया थाइसलिए वेदों को श्रुति भी ! कहा जाता है । इस जगत, जीवन एवं परमपिता परमेश्वर इन सभी का वास्तविक ज्ञान "वेद"में ही प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न

1. वेद शब्द किस धातु से बना है ।

क. दा ख. विद् ग. भू घ. दृश

2. सम्पूर्ण वैदिक धर्म कितने भागों में विभक्त है ।

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

3. वेद शब्द में कौन सा प्रत्यय है।

क. गर ख. घञ् प्रत्यय ग. ल्युट घ. कोई नहीं

4. वेदों की संख्या कितनी है ।

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

5. आर्य समाज की स्थापना किसने की थी।

क. राजा राम मोहन राय ख. महर्षि दयानन्द ग. विवेकानन्द घ. रामकृष्ण परमहंस

वेद क्या हैं ?

वेद भारतीय संस्कृति के वे ग्रन्थ हैं, जिनमें ज्योतिष, गणित, विज्ञान, धर्म, औषधि, प्रकृति, खगोलशास्त्र आदि लगभग सभी विषयों से सम्बंधित ज्ञान का भंडार भरा पड़ा है । वेद हमारी भारतीय संस्कृति की रीढ़ हैं। इनमे अनिष्ट से सम्बन्धित उपाय तथा जो इच्छा हो उसके अनुसार उसे प्राप्त करने के उपाय संग्रहीत है। लेकिन जिस प्रकार किसी भी कार्य में मेहनत लगती है, उसी प्रकार इन रत्न रूपी वेदों का श्रमपूर्वक अध्यन करके ही इनमे संकलित ज्ञान को मनुष्य प्राप्त कर सकता है।

वेद मंत्रो का संकलन और वेदों की संख्या

ऐसी मान्यता है की वेद प्रारंभ में एक ही था और उसे पढने के लिए सुविधानुसार चार भागो में विभग्त कर दिया गया ! ऐसा श्रीमदभागवत में उल्लेखित एक श्लोक द्वारा ही स्पष्ट होता है ! इन वेदों में हजारों मन्त्र और रचनाएँ हैं जो एक ही समय में संभवत: नहीं रची गयी होंगी और न ही एक ऋषि द्वारा ! इनकी रचना समय-समय पर ऋषियों द्वारा होती रही और वे एकत्रित होते गए।

शतपथ ब्राह्मण के श्लोक के अनुसार अग्नि, वायु और सूर्य ने तपस्या की और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को प्राप्त किया।

प्रथम तीन वेदों को अग्नि, वायु और सूर्य से जोड़ा गया है। इन तीनो नामों के ऋषियों से इनका सम्बन्ध बताया गया है, क्योंकि इसका कारण यह है की अग्नि उस अंधकार को समाप्त करती है जो अज्ञान का अँधेरा है। इस कारण यह ज्ञान का प्रतीक मन गया है। वायु प्राय: चलायमान है। उसका कम चलना (बहना) है। इसका तात्पर्य है की कर्म अथवा कार्य करते रहना। इसलिए यह कर्म से सम्बंधित है। सूर्य सबसे तेजयुक्त है जिसे सभी प्रणाम करते हैं ! नतमस्तक होकर उसे पूजते हैं। इसलिए कहा गया है की वह पूजनीय अर्थात उपासना के योग्य है ! एक ग्रन्थ के अनुसार ब्रम्हाजी के चार मुखो से चारो वेदों की उत्पत्ति हुई।

१. ऋग्वेद

ऋग्वेद सबसे पहला वेद है। इसमें धरती की भौगोलिक स्थिति, देवताओं के आवाहन के मन्त्र है। इस वेद में 1028 ऋचायें (मंत्र) और 10 मंडल (अध्याय) है। ऋग्वेद की ऋचाओं में देवताओं की प्रार्थना, स्तुतियाँ और देवलोक में उनकी स्थिति का वर्णन है।

२. यजुर्वेद

यजुर्वेद में यज्ञ की विधियाँ और यज्ञों में प्रयोग किए जाने वाले मंत्र हैं। यज्ञ के अलावा तत्वज्ञान का वर्णन है। इस वेद की दो शाखाएँ हैं शुक्ल और कृष्ण। 40 अध्यायों में 1975 मंत्र हैं।

३. सामवेद

साम अर्थात रूपांतरण और संगीत। सौम्यता और उपासना। इस वेद में ऋग्वेद की ऋचाओं (मंत्रों) का संगीतमय रूप है। इसमें मूलत: संगीत की उपासना है। इसमें 1875 मंत्र है।

४. अथर्ववेद

इस वेद में रहस्यमय विद्याओं के मंत्र हैं, जैसे जादू, चमत्कार, आयुर्वेद आदि। यह वेद सबसे बड़ा है, इसमें 20 अध्यायों में 5687 मंत्र है।

वेद प्राचीन भारत में रचित साहित्य हैं जो हिन्दुओं के प्राचीनतम और आधारभूत धर्मग्रन्थ भी हैं। भारतीय संस्कृति में सनातन धर्म के मूल और सब से प्राचीन ग्रन्थ हैं जिन्हें ईश्वर की वाणी समझा जाता है। वेदों को अपौरुषेय (जिसे कोई व्यक्ति न कर सकता हो, यानि ईश्वर कृत) माना जाता है तथा ब्रह्मा को इनका रचयिता माना जाता है। इन्हें श्रुति भी कहते हैं जिसका अर्थ है 'सुना हुआ'। अन्य हिन्दू ग्रंथों को स्मृति कहते हैं यानि मनुष्यों की बुद्धि या स्मृति पर आधारित। ये विश्व के उन प्राचीनतम धार्मिक ग्रंथों में हैं जिनके मन्त्र आज भी इस्तेमाल किये जाते हैं। 'वेद' शब्द संस्कृत भाषा के "विद्" धातु से बना है, इस तरह वेद का शाब्दिक अर्थ विदित यानि ज्ञान के ग्रंथ हैं। आज चतुर्वेदों के रूप में ज्ञात इन ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है –

ऋग्वेद -इसमें देवताओं का आह्वान करने के लिये मन्त्र हैं।

सामवेद -इसमें यज्ञ में गाने के लिये संगीतमय मन्त्र हैं।

यजुर्वेद - इसमें यज्ञ की असल प्रक्रिया के लिये गद्य मन्त्र हैं।

अथर्ववेद -इसमें जादू, चमत्कार, आरोग्य, यज्ञ के लिये मन्त्र हैं।

वेद के असल मन्त्र भाग को संहिता कहते हैं। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत उपर लिखे सभी वेदों के कई उपनिषद, आरण्यक तथा उपवेद आदि भी आते जिनका विवरण नीचे दिया गया है। इनकी भाषा संस्कृत है जिसे अपनी अलग पहचान के अनुसार **वैदिक संस्कृत** कहा जाता है - इन संस्कृत शब्दों के प्रयोग और अर्थ कालान्तर में बदल गए या लुप्त हो गए माने जाते हैं। ऐतिहासिक रूप से प्राचीन भारत और हिन्द-आर्य जाति के बारे में इनको एक अच्छा संदर्भ माना जाता है। संस्कृत भाषा के प्राचीन रूप को लेकर भी इनका साहित्यिक महत्व बना हुआ है।

वेदों को समझना प्राचीन काल में भारतीय और बाद में विश्व भर में एक विवाद का विषय रहा है। प्राचीन काल में, भारत में ही, इसी विवेचना के अंतर के कारण कई मत बन गए थे। मध्ययुग में भी इसके भाष्य (अनुवाद और व्याख्या) को लेकर कई शास्त्रार्थ हुए। कई लोग इसमें वर्णित चरित्रों *देव* को पूज्य और मूर्ति रूपक आराध्य समझते हैं जबकि दयानन्द सरस्वती सहित अन्य कईयों का मत है कि इनमें वर्णित चरित्र (जैसे अग्नि, इंद्र आदि) एकमात्र ईश्वर के ही रूप और नाम हैं। इनके अनुसार *देव* शब्द का अर्थ है ईश्वर की शक्ति (और नाम) ना कि मूर्ति-पूजनीय आराध्य रूप। मध्यकाल में

रचित व्याख्याओं में सायण का रचा भाष्य बहुत मान्य है। प्राचीन काल के जैमिनी, व्यास इत्यादि ऋषियों को वेदों का अच्छा ज्ञाता माना जाता है। यूरोप के विद्वानों का वेदों के बारे में मत हिन्द-आर्य जाति के इतिहास की जिज्ञासा से प्रेरित रही है। ईरान और भारत में *आर्य* शब्द के अर्थ में थोड़ी भिन्नता पाई जाती है। जहाँ ये ईरान में ईरानी जाति का द्योतक है वहीं भारत में ये कुशल, शिक्षित और संपूर्ण पुरुष को जताता है। अठारहवीं सदी उपरांत यूरोपियनों के वेदों और उपनिषदों में रूचि आने के बाद भी इनके अर्थों पर विद्वानों में असहमति बनी रही है। प्राचीन काल से भारत में वेदों के अध्ययन और व्याख्या की परम्परा रही है। हिन्दू धर्म अनुसार आर्षयुग में ब्रह्माऋषि से लेकर जैमिनि तक के ऋषि-मुनियोंने शब्दप्रमाण के रूप में इन्हीं को माने हैं और इनके आधार पर अपने ग्रन्थों का निर्माण भी किये हैं। व्यास, पाणिनी आदि को प्राचीन काल के वेदवेत्ता कहते हैं। वेदों के विदित होने यानि सात ऋषियों के ध्यान में आने के बाद इनकी व्याख्या करने की परम्परा रही है। इसी के फलस्वरूप ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, इतिहास आदि महाग्रन्थ वेदों का व्याख्यान स्वरूप रचे गए। प्राचीन काल और मध्ययुग में शास्त्रार्थ इसी व्याख्या और अर्थांतर के कारण हुए हैं। मुख्य विषय - देव, अग्नि, रूद्र, विष्णु, मरुत, सरस्वती इत्यादि जैसे शब्दों को लेकर हुए। वेदवेत्ता महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचार में ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान वेदों के विषय हैं। जीव, ईश्वर, प्रकृति इन तीन अनादि नित्य सत्ताओं का निज स्वरूप का ज्ञान केवल वेद से ही उपलब्ध होता है।

ऋषिदेव:कोटी कणाद "तद्वचनादाम्नायस्य प्राणाण्यम्" और "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" कहकर वेद को दर्शन और विज्ञान का भी स्रोत माना है। हिन्दू धर्म अनुसार सबसे प्राचीन नियमविधाता महर्षि मनु ने कहा वेदोऽखिलो धर्ममूलम् - खिलरहित वेद अर्थात् मूल संहिता रूप वेद धर्मशास्त्र का आधार है।

न केवल धार्मिक किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से भी वेदों का असाधारण महत्त्व है। वैदिक युग के आर्यों की संस्कृति और सभ्यता जानने का एक साधन है। मानव-जाति और विशेषतः आर्यों ने अपने शैशव में धर्म और समाज का किस प्रकार विकास किया इसका ज्ञान वेदों से मिलता है। विश्व के वाङ्मय में इनसे प्राचीनतम कोई पुस्तक नहीं है।आर्य-भाषाओं का मूलस्वरूप निर्धारित करने में वैदिक भाषा अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई है। यूरोप के कई विद्वानों ने संस्कृत और आर्यभाषाओं और जाति के बारे में जानने के लिए वेदों का अध्ययान किया है। मैक्समूलर जैसे विद्वानों ने इनके अध्ययन के बाद संस्कृत भाषा और यूरोपीय शब्दों और व्याकरण का विश्लेषण किया था। इनके अनुसार लैटिन, ग्रीक, जर्मन आदि सहित कई यूरोपीय, फ़ारसी और संस्कृत का मूल एक रहा होगा। इस सिद्धांत के प्रमाण लिए कई शब्दों का उल्लेख किया जाता है।

इसी प्रकार पिता, माता, भाई, पानी इत्यादि जैसे शब्दों के लिए भी समान शब्द मिलते हैं। लेकिन कई शब्दों के बिल्कुल मेल नहीं खाने जैसे कारणों से इस सिद्धांत को संपूर्ण मान्यता नहीं मिली है। सिंधु घाटी सभ्यता के विनाश का एक कारण आर्य जाति का आक्रमण माना जाता है। लगभग इसी समय 1900 ईसापूर्व में यूनान और ईरान में एक नई मानव जाति के आगमन के चिह्न मिलते हैं।

लेकिन पक्के प्रमाणों की कमी की वजह से ये नहीं सिद्ध हो पाया है कि ये वास्तव में एक ही मूल से निकली मानव जाति के समूह थे या नहीं।

वैदिक वाङ्मय और विभाजन

वर्तमान काल में वेद चार माने जाते हैं। परन्तु इन चारों को मिलाकर एक ही 'वेद ग्रंथ' समझा जाता था।

एक एव पुरा वेदसर्ववाङ्मय :प्रणव : - महाभारत

बाद में वेद को पढ़ना बहुत कठिन प्रतीत होने लगा, इसलिए उसी एक वेद के तीन या चार विभाग किए गए। तब उनको 'वेदत्रयी' अथवा 'चतुर्वेद' कहने लगे।

द्वापरयुग की समाप्ति के पूर्व वेदों के उक्त चार विभाग अलग-अलग नहीं थे। उस समय तो ऋक्, यजुः और साम - इन तीन शब्द-शैलियों की संग्रहात्मक एक विशिष्ट अध्ययनीय शब्द-राशि ही वेद कहलाती थी। वेद के पठन-पाठन के क्रम में गुरुमुख से श्रवण एवं याद करने का वेद के संरक्षण एवं सफलता की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है। इसी कारण वेद को ''श्रुति'' भी कहते हैं। वेद परिश्रमपूर्वक अभ्यास द्वारा संरक्षणीय है, इस कारण इसका नाम ''आम्नाय'' भी है।

द्वापरयुग की समाप्ति के समय श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास जी ने यज्ञानुष्ठान के उपयोग को दृष्टिगत उस एक वेद के चार विभाग कर दिये और इन चारों विभागों की शिक्षा चार शिष्यों को दी। ये ही चार विभाग ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के नाम से प्रसिद्ध है। पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु नामक -चार शिष्यों को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की शिक्षा दी। इन चार शिष्यों ने शाकल आदि अपने भिन्न-भिन्न शिष्यों को पढ़ाया। इन शिष्यों के द्वारा अपने-अपने अधीत वेदों के प्रचार व संरक्षण के कारण वे शाखाएँ उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हैं। **वेदों को तीन भागों में बांटा जा सकता है - ज्ञानकाण्ड, उपासनाकाण्ड और कर्मकाण्ड।**

वेदत्रयी

विश्व में शब्द-प्रयोग की तीन शैलियाँ होती है; जो पद्य (कविता), गद्य और गानरुप से प्रसिद्ध हैं। पद्य में अक्षर-संख्या तथा पाद एवं विराम का निश्चित नियम होता है। अतः निश्चित अक्षर-संख्या तथा पाद एवं विराम वाले वेद-मन्त्रों की संज्ञा 'ऋक्' है। जिन मन्त्रों में छन्द के नियमानुसार अक्षर-संख्या तथा पाद एवं विराम ऋषिदृष्ट नहीं है, वे गद्यात्मक मन्त्र 'यजुः' कहलाते हैं और जितने मन्त्र गानात्मक हैं, वे मन्त्र ''साम'' कहलाते हैं। इन तीन प्रकार की शब्द-प्रकाशन-शैलियों के आधार पर ही शास्त्र एवं लोक में वेद के लिये 'त्रयी' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है। वेदों के मंत्रों के 'पद्य, गद्य और गान' ऐसे तीन विभाग होते हैं। हर एक भाषा के ग्रंथों में पद्य, गद्य और गान ऐसे तीन भाग होते ही हैं। वैसे ही ये वैदिक वाङ्मय के तीन भाग है-

१- वेद का पद्य भाग (**ऋग्वेद, अथर्ववेद**)

२- वेद का गद्य भाग (**यजुर्वेद**)

३- वेद का गायन भाग (**सामवेद)**

इनको 'वेदत्रयी' कहते हैं, अर्थात् ये वेद के तीन विभाग हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद यह 'त्रयी विद्या' है। इसका भाव यह है कि ऋग्वेद पद्यसंग्रह है, यजुर्वेद गद्यसंग्रह है और सामवेद गानसंग्रह है। इस ऋक्संग्रह में अथर्ववेद सम्मिलित है, ऐसा समझना चाहिए। इसका कारण यह है कि अथर्ववेद भी पद्यसंग्रह ही है ।

यजुर्वेद गद्यसंग्रह है, अत: इस यजुर्वेद में जो ऋग्वेद के छंदोबद्ध मंत्र हैं, उनको भी यजुर्वेद पढ़ने के समय गद्य जैसा ही पढ़ा जाता है।

चतुर्वेद

वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। प्रत्येक वेद की अनेक शाखाएं बतायी गयी हैं। यथा ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1001, अर्थववेद की 91 इस प्रकार 1131 शाखाएं हैं परन्तु 12 शाखाएं ही मूल ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। वेद की प्रत्येक शाखा की वैदिक शब्द राशि चार भागों में उपलब्ध है। 1. संहिता 2. ब्राह्मण 3. आरण्यक 4. उपनिषद्। इनमें संहिता को ही वेद माना जाता है। शेष वेदों के व्याख्या ग्रन्थ हैं (नीचे विवरण दिया गया है) ।

ऋग्वेद

ऋग्वेद को चारों वेदों में सबसे प्राचीन माना जाता है। इसको दो प्रकार से बाँटा गया है। प्रथम प्रकार में इसे 10 मण्डलों में विभाजित किया गया है। मण्डलों को सूक्तों में, सूक्त में कुछ ऋचाएं होती हैं। कुल ऋचाएं 1052 हैं। दूसरे प्रकार से ऋग्वेद में 64 अध्याय हैं। आठ-आठ अध्यायों को मिलाकर एक अष्टक बनाया गया है। ऐसे कुल आठ अष्टक हैं। फिर प्रत्येक अध्याय को वर्गों में विभाजित किया गया है। वर्गों की संख्या भिन्न-भिन्न अध्यायों में भिन्न भिन्न ही है। कुल वर्ग संख्या 2024 है। प्रत्येक वर्ग में कुछ मंत्र होते हैं। सृष्टि के अनेक रहस्यों का इनमें उद्घाटन किया गया है। पहले इसकी 21 शाखाएं थी, परन्तु वर्तमान में इसकी शाकल शाखा का ही प्रचार है।

यजुर्वेद

इसमें गद्य और पद्य दोनों ही हैं। इसमें यज्ञ कर्म की प्रधानता है। प्राचीन काल में इसकी 101 शाखाएं थीं परन्तु वर्तमान में केवल पांच शाखाएं हैं - काठक, कपिष्ठल, मैत्रायणी, तैत्तिरीय, वाजसनेयी। इस वेद के दो भेद हैं - कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद। कृष्ण यजुर्वेद का संकलन महर्षि वेद व्यास ने किया है। इसका दूसरा नाम तैत्तिरीय संहिता भी है। इसमें मंत्र और ब्राह्मण भाग मिश्रित हैं। शुक्ल यजुर्वेद - इसे सूर्य ने याज्ञवल्क्य को उपदेश के रूप में दिया था। इसमें 15 शाखाएं थीं परन्तु वर्तमान में माध्यन्दिन को जिसे वाजसनेयी भी कहते हैं प्राप्त हैं। इसमें 40 अध्याय, 303 अनुवाक एवं 1975 मंत्र हैं। अन्तिम चालीसवां अध्याय ईशावास्योपनिषद है।

सामवेद

यह गेय ग्रन्थ है। इसमें गान विद्या का भण्डार है, यह भारतीय संगीत का मूल है। ऋचाओं के गायन

को ही साम कहते हैं। इसकी 1001 शाखाएं थीं। परन्तु आजकल तीन ही प्रचलित हैं - कोथुमीय, जैमिनीय और राणायनीय। इसको पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक में बांटा गया है। पूर्वार्चिक में चार काण्ड हैं - आग्नेय काण्ड, ऐन्द्र काण्ड, पवमान काण्ड और आरण्य काण्ड। चारों काण्डों में कुल 640 मंत्र हैं। फिर महानाम्न्यार्चिक के 10 मंत्र हैं। इस प्रकार पूर्वार्चिक में कुल 650 मंत्र हैं। छः प्रपाठक हैं। उत्तरार्चिक को 21 अध्यायों में बांटा गया। नौ प्रपाठक हैं। इसमें कुल 1225 मंत्र हैं। इस प्रकार सामवेद में कुल 1875 मंत्र हैं। इसमें अधिकतर मंत्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। इसे उपासना का प्रवर्तक भी कहा जा सकता है।

अथर्ववेद

इसमें गणित, विज्ञान, आयुर्वेद, समाज शास्त्र, कृषि विज्ञान, आदि अनेक विषय वर्णित हैं। कुछ लोग इसमें मंत्र-तंत्र भी खोजते हैं। यह वेद जहां ब्रह्म ज्ञान का उपदेश करता है, वहीं मोक्ष का उपाय भी बताता है। इसे ब्रह्म वेद भी कहते हैं। इसमें मुख्य रूप में अथर्वण और आंगिरस ऋषियों के मंत्र होने के कारण अथर्व आंगिरस भी कहते हैं। यह 20 काण्डों में विभक्त है। प्रत्येक काण्ड में कई-कई सूत्र हैं और सूत्रों में मंत्र हैं। इस वेद में कुल 5977 मंत्र हैं। इसकी आजकल दो शाखाएं शौणिक एवं पिप्पलाद ही उपलब्ध हैं। अथर्ववेद का विद्वान् चारों वेदों का ज्ञाता होता है। यज्ञ में ऋग्वेद का होता देवों का आह्वान करता है, सामवेद का उद्गाता सामगान करता है, यजुर्वेद का अध्वर्यु देव:कोटीकर्म का वितान करता है तथा अथर्ववेद का ब्रह्म पूरे यज्ञ कर्म पर नियंत्रण रखता है।

चार उपवेद

1. स्थापत्यवेद इसमे स्थापत्यकला के विष्य मे जिसे वास्तु शास्त्र या वास्तुकला भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गेत आता है।
2. धनुर्वेद
3. गन्धर्वेद
4. आयुर्वेद

वैदिक साहित्य के चार भाग

उपर वर्णित प्रत्येक वेद के चार भाग होते हैं। पहले भाग (संहिता) के अलावा हरेक में टीका अथवा भाष्य के तीन स्तर होते हैं। वे है -

- संहिता (मन्त्र भाग
- ब्राह्मणग्रन्थ- (गद्य में कर्मकाण्ड की विवेचना
- आरण्यक (कर्मकाण्ड के पीछे के उद्देश्य की विवेचना
- उपनिषद (परमेश्वर, परमात्मा-ब्रह्म और आत्मा के स्वभाव और सम्बन्ध का बहुत ही दार्शनिक और ज्ञानपूर्वक वर्णन

वेद की संहिताओं में मंत्राक्षरों में खड़ी तथा आड़ी रेखायें लगाकर उनके उच्च, मध्यम, या मन्द

संगीतमय स्वर उच्चारण करने के संकेत किये गये हैं। इनको **उदात्त**, **अनुदात्त** ऑर **स्वारित** के नाम से अभिगित किया गया हैं। ये स्वर बहुत प्राचीन समय से प्रचलित हैं और महामुनि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इनके मुख्य मुख्य नियमों का समावेश किया है।

स्वरों को अधिक या न्यून रूप से बोले जाने के कारण इनके भी दो-दो भेद हो जाते हैं। जैसे उदात्त-उदात्ततर, अनुदात्त-अनुदात्ततर, स्वरित-स्वरितोदात्त। इनके अलावे एक और स्वर माना गया है - एक श्रुति - इसमें तीनों स्वरों का मिलन हो जाता है। इस प्रकार कुल स्वरों की संख्या ७ हो जाती है। इन सात स्वरों में भी आपस में मिलने से स्वरों में भेद हो जाता है जिसके लिए स्वर चिह्नों में कुछ परिवर्तन हो जाता है। यद्यपि इन स्वरों के अंकण और टंकण में कई विधियाँ प्रयोग की जाती हैं और प्रकाशक-भाष्यकारों में कोई एक विधा सामान्य नहीं है, अधिकांश स्थानों पर अनुदात्त के लिए अक्षर के नीचे एक आड़ी लकीर तथा स्वरित के लिए अक्षर के ऊपर एक खड़ी रेखा बनाने का नियम है। उदात्त का अपना कोई चिह्न नहीं है। इससे अंकण में समस्या आने से कई लेखक-प्रकाशक स्वर चिह्नों का प्रयोग ही नहीं करते।

वेदों का विभाजन

आधुनिक विचारधारा के अनुसार चारों वेदों की शब्द-राशि के विस्तार में तीन दृष्टियाँ पायी जाती है-

- याज्ञिक,
- प्रायोगिक और
- साहित्यिक दृष्टि

याज्ञिक दृष्टि

इसके अनुसार वेदोक्त यज्ञों का अनुष्ठान ही वेद के शब्दों का मुख्य उपयोग माना गया है। सृष्टि के आरम्भ से ही यज्ञ करने में साधारणतया मन्त्रोच्चारण की शैली, मन्त्राक्षर एवं कर्म-विधि में विविधता रही है। इस विविधता के कारण ही वेदों की शाखाओं का विस्तार हुआ है। यथा-ऋग्वेद की २१ शाखा, यजुर्वेद की १०१ शाखा, सामवेद की १००० शाखा और अथर्ववेद की ९ शाखा- इस प्रकार कुल १,१३१ शाखाएँ हैं। इस संख्या का उल्लेख महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में भी किया है। उपर्युक्त १,१३१ शाखाओं में से वर्तमान में केवल १२ शाखाएँ ही मूल ग्रन्थों में उपलब्ध हैः-

1. ऋग्वेद की २१ शाखाओं में से केवल २ शाखाओं के ही ग्रन्थ प्राप्त हैं-
    1. शाकलशाखा और-
    2. शांखायन शाखा।
2. यजुर्वेद में कृष्णयजुर्वेद की ८६ शाखाओं में से केवल ४ शाखाओं के ग्रन्थ ही प्राप्त है-
    1. तैत्तिरीयशाखा-,
    2. मैत्रायणीय शाखा,

    3. कठशाखा और-
    4. कपिष्ठलशाखा-
3. शुक्लयजुर्वेद की १५ शाखाओं में से केवल २ शाखाओं के ग्रन्थ ही प्राप्त है-
    1. माध्यन्दिनीयशाखा और-
    2. काण्वशाखा।-
4. सामवेद की १,००० शाखाओं में से केवल २ शाखाओं के ही ग्रन्थ प्राप्त है-
    1. कौथुमशाखा और-
    2. जैमिनीयशाखा।-
5. अथर्ववेद की ९ शाखाओं में से केवल २ शाखाओं के ही ग्रन्थ प्राप्त है-
    1. शौनकशाखा और-
    2. पैप्पलादशाखा।-

उपर्युक्त १२ शाखाओं में से केवल ६ शाखाओं की अध्ययनशैली प्राप्त- हैशाकल-, तैत्तरीय, माध्यन्दिनी, काण्व, कौथुम तथा शौनक शाखा। यह कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा कि अन्य शाखाओं के कुछ और भी ग्रन्थ उपलब्ध हैं, किन्तु उनसे शाखा का पूरा परिचय नहीं मिल सकता एवं बहुतसी शाखाओं के तो- नाम भी उपलब्ध नहीं है।

प्रायोगिक दृष्टि

इसके अनुसार प्रत्येक शाखा के दो भाग बताये गये है।

1. मन्त्र भाग रुप से-यज्ञ में साक्षात् -प्रयोग आती है।
2. ब्राह्मण भाग(आज्ञाबोधक शब्द) जिसमें विधि -, कथा, आख्यायिका एवं स्तुति द्वारा यज्ञ कराने की प्रवृत्ति उत्पन्न कराना, यज्ञानुष्ठान करने की पद्धति बताना, उसकी उपपत्ति और विवेचन के साथ उसके रहस्य का निरुपण करना है।

साहित्यिक दृष्टि

इसके अनुसार प्रत्येक शाखा की वैदिक शब्द-राशि का वर्गीकरण-

1. संहिता,
2. ब्राह्मण,
3. आरण्यक और
4. उपनिषद् इन चार भागों में है।

वेद के अंग, उपांग एवं उपवेद

वेदों के सर्वांगीण अनुशीलन के लिये शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष- इन ६ अंगों के ग्रन्थ हैं। प्रतिपदसूत्र, अनुपद, छन्दोभाषा (प्रातिशाख्य), धर्मशास्त्र, न्याय तथा वैशेषिक- ये ६ उपांग ग्रन्थ भी उपलब्ध है। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा स्थापत्यवेद- ये क्रमशः चारों वेदों के उपवेद कात्यायन ने बतलाये हैं।

वेद-भाष्यकार

प्राचीन काल में व्यास, जैमिनी, पातंञ्जलि आदि मुनियों को वेदों का अच्छा ज्ञान था। व्यास ऋषि ने गीता में कई बार वेदों का ज़िक्र किया है। कई बार कृष्ण, अर्जुन से ये कहते हैं कि वेदों की अलंकारमयी भाषा के बदले उनके वचन आसान लगेंगे।

राजा राममोहन राय का ब्रह्म समाज और दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज लगभग एक ही समय में (1860) वेदों के सबसे बड़े प्रचारक बने। इनके अतिरिक्त शंकर पाण्डुरंग ने सायण भाष्य के अलावे अथर्ववेद का चार जिल्दों में प्रकाशन किया। लोकमान्य तिलक ने **ओरायन और द आर्कटिक होम इन वेदाज़** नामक दो ग्रंथ वैदिक साहित्य की समीक्षा के रूप में लिखे। बालकृष्ण दीक्षित ने सन् १८७७ में कलकत्ते से सामवेद पर अपने ज्ञान का प्रकाशन कराया। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने सतारा में चारों वेदों की संहिता का श्रमपूर्वक प्रकाशन कराया। तिलक विद्यापीठ, पुणे से पाँच जिल्दों में प्रकाशित ऋग्वेद के सायण भाष्य के प्रकाशन को प्रामाणिक माना जाता है। वैदिक संहिताओं के अनुवाद में रमेशचंद्र दत्त बंगाल से, रामगोविन्द त्रिवेदी एवम् जयदेव विद्यालंकार के हिन्दी में एवम् श्रीधर पाठक का मराठी में कार्य भी लोगों को वेदों के बारे में जानकारी प्रदान करता रहा है। इसके बाद गायत्री तपोभूमि के श्रीराम शर्मा आचार्य ने भी वेदों के भाष्य प्रकाशित किये हैं।

विदेशी प्रयास

सत्रहवीं सदी में मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब के भाई दारा शिकोह ने कुछ उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद किया जो पहले फ्रांसिसी और बाद में अन्य भाषाओं में अनूदित हुईं। यूरोप में इसके बाद वैदिक और संस्कृत साहित्य की ओर ध्यान गया। मैक्स मूलर जैसे यूरोपीय विद्वान ने भी संस्कृत और वैदिक साहित्य पर बहुत अध्ययन किया है। लेकिन यूरोप के विद्वानों का ध्यान हिन्द आर्य भाषा परिवार के सिद्धांत को बनाने और उसको सिद्ध करने में ही लगी हुई है। शब्दों की समानता को लेकर बने इस सिद्धांत में ऐतिहासिक तथ्य और काल निर्धारण को तोड़-मरोड़ करना ही पड़ता है। इस कारण से वेदों की रचना का समय १८००-१००० इस्वी ईसा पूर्व माना जाता है जो संस्कृत साहित्य और हिन्दू सिद्धांतों पर खरा नहीं उतरता। लेकिन आर्य जातियों के प्रयाण के सिद्धांत के तहत और भाषागत दृष्टि से यही काल इन ग्रंथों की रचना का मान लिया जाता है।

अन्य मतों की दृष्टि

जैसा कि उपर लिखा है, वेदों के कई शब्दों का समझना उतना सरल नहीं रहा है। इसकी वजह से इनमें वर्णित श्लोंकों को अलग-अलग अर्थों में व्यक्ति किया गया है। सबसे अधिक विवाद-वार्ता ईश्वर के स्वरूप, यानि एकमात्र या अनेक देवों के सदृश्य को लेकर हुआ है। यूरोप के संस्कृत विद्वानों की व्याख्या भी हिन्द-आर्य जाति के सिद्धांत से प्रेरित रही है। प्राचीन काल में ही इनकी सत्ता को चुनौती देकर कई ऐसे मत प्रकट हुए जो आज भी धार्मिक मत कहलाते हैं लेकिन कई रूपों में भिन्न हैं। इनका मुख्य अन्तर नीचे स्पष्ट किया गया है।

जैन - इनको मूर्ति पूजा के प्रवर्तक माना जाता है। ये अहिंसा के मार्ग पर ज़ोर देते हैं पर वेदों

को श्रेष्ठ नहीं मानते।

- बौद्ध - इस मत में महात्मा बुद्ध के प्रवर्तित ध्यान और तृष्णा को दुःखों का कारण बताया है। वेदों में लिखे ध्यान के महत्व को ये तो मानते हैं पर ईश्वर की सत्ता से नास्तिक हैं।
- शैव - वेदों में वर्णित रूद्र के रूप शिव को सर्वोपरि समझने वाले। सनातन (यानि वैदिक) के मानने वाले धर्म *शिव* को एकमात्र ईश्वर का कल्याणकारी रूप मानते हैं, लेकिन शैव लोग शंकर देव के रूप जिसमें नंदी बैल), जटा, बाघंबर इत्यादि हैंको विश्व का कर्ता मानते (हैं।
- वैष्णव - विष्णु और उनके अवतारों को ईश्वर मानने वाले। वैदिक मत विष्णु को एक ईश्वर का ही वो नाम बताते हैं जिसके अनुसार सर्वत्र फैला हुआ ईश्वर विष्णु कहलाता है।
- सिख - मुख्यतः उपनिषदों एवम मुस्लिम ग्रंथों पर श्रद्धा रखने वाले। इनका विश्वास एकमात्र ईश्वर में तो है, लेकिन वेदों को ईश्वर की वाणी नहीं समझते हैं।

यज्ञ

यज्ञ के वर्तमान रूप के महत्व को लेकर कई विद्वानों, मतों और भाष्कारों में विरोधाभाष है। यज्ञ में आग के प्रयोग को प्राचीन पारसी पूजन विधि के इतना समान होना और हवन की अत्यधिक महत्ता के प्रति विद्वानों में रूचि रही है।

देवता

देव शब्द का लेकर ही कई विद्वानों में असहमति रही है। कई मतों में (जैसे - शैव, वैष्णव और शाक्त) इसे महामनुष्य के रूप में विशिष्ट शक्ति प्राप्त साकार चरित्र मसझते हैं और उनका मूर्ति रूप में पूजन करते हैं तो अन्य कई इन्हें ईश्वर (ब्रह्म, सत्य) के ही नाम बताते हैं। उदाहरणार्थ अग्नि शब्द का अर्थ आग न समझकर सबसे आगे अर्थात् प्रथम यानि परमेश्वर समझते हैं। देवता शव्द का अर्थ दिव्य, यानि परमेश्वर (निराकार, ब्रह्म) की शक्ति से पूर्ण माना जाता है - जैसे पृथ्वी आदि। इसी मत में महादेव, देवों के अधिपति होने के कारण ईश्वर को कहते हैं। इसी तरह सर्वत्र व्यापक ईश्वर विष्णु, और सत्य होने के कारण ब्रह्मा कहलाता है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महादेव किसी चरित्र के नाम नहीं बल्कि ईश्वर के ही नाम हैं। इसी प्राकर गणेश (गणपति), प्रजापति, देवी, बुद्ध, लक्ष्मी इत्यादि परमेश्वर के ही नाम हैं। ऐसे लोग मूर्तिपूजा के विरूद्ध हैं और ईश्वर को एकमात्र सत्य, सर्वोपरि समझते हैं।

अश्वमेध

अस्वमेध से हिंसा और बलि का विचार आता है। यह कई हिन्दुओं को भी आश्चर्यजनक लगता है क्योंकि कई स्थानों पर शुद्धतावादी हिंसा (और मांस भक्षण) से परहेज करते रहे हैं। कईयों का मानना है कि मेध शब्द में अध्वरं का भी प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है अहिंसा। अतः मेध का भी अर्थ कुछ और रहा होगा। इसी प्रकार अश्व शब्द का अर्थ घोड़ा न रहकर शक्ति रहा होगा। श्रीराम शर्मा आचार्य कृत भाष्यों के अनुसार अश्व शब्द का अर्थ शक्ति, गौ शब्द का अर्थ पोषण है। इससे

अश्वमेध का अर्थ घोड़े का बलि से इतर होती प्रतीत होती है।

4.4 सारांश -

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप **सर्वविद्या का मूल वेद** को समझ लेंगे। वेदों में समस्त ज्ञानराशि का भण्डार है। वेद एवं उपवेद सर्वविधकल्याणार्थ मानवों के लिये जगत में प्रतिपाद्य है। इसके मूल परम्परा एवं महत्व को आप इस इकाई के माध्यम से समझ पायेंगे। वेदों में प्रतिपाद्य अनेक विषयों का वर्णन इस इकाई में किया गया है। जिसका अध्ययन कर आप ततसम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करनें में समर्थ हो सकेंगे।

4.5 शब्दावली

वेद – विद् धातु से ज्ञानार्थे वेद शब्द की उत्पत्ति हुई है।
उपवेद – वेदस्य समीपं उपवेदम्। प्रत्येक वेदों के उपवेद है।
सर्वविद्यामूल – सर्वविद्यामूल वेद को कहा गया है, जिससे समस्त ज्ञान एवं विज्ञान का उद्भव होता है।
शुद्धतावादी – जो शुद्धता को मानता हो।
सर्वविधकल्याण – सभी लोगों के लिये कल्याण
उदाहरणार्थ – उदाहरण के लिये।
उपवेद – वेद के समीप
अनुदात्त – स्वर का भेद
अश्व – घोड़ा

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. ख
2. क
3. ख
4. ख
5. ख

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	**प्रकाशन**
नित्यकर्म पूजाप्रकाश	गीताप्रेस गोरखपुर
भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व	
कर्मकाण्ड प्रदीप	

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1- वेद शब्द से क्या तात्पर्य है। विस्तार से वर्णन कीजिये ?

2- वेद के प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिये।

इकाई – 5 पुराणों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3. पुराण परिचय

पुराणों के प्रकार एवं महत्व

5.4 अभ्यास प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के पचंम इकाई ''पुराणों का परिचय'' नामक शीर्षक से उद्धृत है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने वेदों का अध्ययन कर लिया है। सनातन परम्परा में पुराणों की संख्या 18 है। वस्तुत: पुराण धर्मसम्बन्धित आख्यान ग्रन्थ है, जिसमें कि विभिन्न कालखण्डों में भगवान की अनेक कथाओं का वर्णन किया गया है। पुरा नवं पुराणम्। पुरा का अर्थ होता है – अतीत तथा अण का अर्थ होता है कहना। अतीत का वर्णन जिसमें कहा गया हो उसे पुराण कहते है। कर्मकाण्ड जगत में जब आप वेदों का अध्ययन करते है, तो पाते हैं कि उसमें जगत् के समस्त ज्ञान राशि समाहित है। वेद से इतर कोई शेष ज्ञान नहीं है। वर्तमान कालखण्ड में यह दृष्टिगोचर नहीं हो पाता है, क्योंकि इसका कारण है कि मूल रूप से वेद का ज्ञान अब किंचित लोगों के पास रह गया है। पुराण वेद एवं उपनिषद के पश्चात् धर्म का बोध कराने वाला एक वृहत ज्ञान राशि का भण्डार है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पुराण एवं पुराण से जुड़े अनेक विषयों का अध्ययन करेंगे। आशा है कि पाठक इस इकाई का अध्ययन करके पुराणों को सम्यक् तरीके से समझ पायेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेंगे कि –

1.पुराण किसे कहते है।

2.पुराण के कितने प्रकार है।

3. वेद एवं उपनिषद के पश्चात् पुराण एक विशाल ज्ञान राशि का भण्डार है।

4. पुराण का महत्व क्या है।

5. पुराण धर्म का आख्यान ग्रन्थ है।

5.3 पुराण परिचय

पुराण सनातन परम्परा के धर्मसम्बन्धित आख्यानग्रन्थ है जिसमें स्वायम्भु मनु से लेकर वर्तमान प्रचलित मन्वतन्तर तक का वर्णन, सृष्टियोत्पत्ति, लय, प्राचीन ऋषियों, मुनियों और राजाओं के वृत्तान्त आदि निहित है । वेदों के पश्चात् जगत् में धर्म संस्थापनार्थ महर्षि वेदव्यास जी के द्वारा अष्टादश पुराणों की रचना की गई है । भागवतमहापुराण में उद्धृत है –

अष्टादश पुराणेषु व्यासेषु वचनद्वयम् ।

जो स्मृति विभाग में आते हैं। भारतीय जीवन-धारा में जिन ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान है उनमें पुराण भक्ति-ग्रंथों के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जाते हैं। अठारह पुराणों में अलग-अलग देवी-देवताओं को केन्द्र मानकर पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, कर्म, और अकर्म की गाथाएँ कही गई हैं। कुछ

पुराणों में सृष्टि के आरम्भ से अन्त तक का विवरण किया गया है। इनमें हिन्दू देवी-देवताओं का और पौराणिक मिथकों का बहुत अच्छा वर्णन है।

कर्मकाण्ड (वेद) से ज्ञान (उपनिषद्) की ओर आते हुए भारतीय मानस में पुराणों के माध्यम से भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित हुई है। विकास की इसी प्रक्रिया में बहुदेववाद और निर्गुण ब्रह्म की स्वरूपात्मक व्याख्या से धीरे-धीरे मानस अवतारवाद या सगुण भक्ति की ओर प्रेरित हुआ।

पुराणों में वैदिक काल से चले आते हुए सृष्टि आदि संबंधी विचारों, प्राचीन राजाओं और ऋषियों के परंपरागत वृत्तांतों तथा कहानियों आदि के संग्रह के साथ साथ कल्पित कथाओं की विचित्रता और रोचक वर्णनों द्वारा सांप्रदायिक या साधारण उपदेश भी मिलते हैं। पुराण उस प्रकार प्रमाण ग्रंथ नहीं हैं जिस प्रकार श्रुति, स्मृति आदि हैं।

पुराणों में विष्णु, वायु, मत्स्य और भागवत में ऐतिहासिक वृत्त— राजाओं की वंशावली आदि के रूप में बहुत कुछ मिलते हैं। ये वंशावलियाँ यद्यपि बहुत संक्षिप्त हैं और इनमें परस्पर कहीं कहीं विरोध भी हैं पर हैं बड़े काम की। पुराणों की ओर ऐतिहासिकों ने इधर विशेष रूप से ध्यान दिया है और वे इन वंशावलियों की छानबीन में लगे हैं।

शाब्दिक अर्थ एवं महिमा

पुराण वर्तमान, भुतकाल और भविष्यकाल का देखा हुआ युग है जिसे बहुत ही सुन्दर ढ़ग से लिखा गया है जिसे धर्मं में आस्था रखने वाले लोग धर्मं ग्रन्थ मानते है और जो लोग बुद्धिजीवी होते है वह इसे विज्ञान के रूप में देखते है जिसको उदाहरण द्वारा आप समझ सकते है पुराण में १४ मन्वन्तर के बारे में बताया गया है साथ ही पृथवी के आयु बताया गया है, कौन से युग में कितने ग्रह का आकाश मंडल था वह बताया गया है उस समय कौन-२ से देवता हुए वह बताया गया है , पृथवी के कौन से शत्रु हुए उसका विनाश कैसे हुआ यहाँ समस्त विषय उल्लेखित है लेकिन वह इतने सुंन्दर ढ़ग से लिखे गये है की सभी चीजे धर्मं और पुरानी कथा मालुम जान पड़ती है जिसे आज तक नासा जैसे वैज्ञानिक तक नहीं समझ पाये। शायद इसीलिये कहा गया कि - **जहॉं विज्ञान का अन्त होता है वहॉं अध्यात्म का आरम्भ होता है**। सनातन परम्परा के समस्त विषय विज्ञान पर आधारित है यही पुराण है - पुराण में बताया गया है पृथवी ६ बार नष्ट हो चुकी है यह उसकी सातवीं उत्पत्ति है और आने वाले ७ युग की व्याख्या भी उसमें उद्धृत है, पुराण सभी प्रमाणों के साथ आपको बताता है की मैं जो भी इसमे लिखा हूँ वह सभी सत्य और प्रमाणिक है आप जो इस समय पृथ्वी पर निवास कर रहे है वह पुराण के अनुसार वैवस्त मन्वन्तर (युग) है।

विषयवस्तु

प्राचीनकाल से पुराण देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों - सभी का मार्गदर्शन करते रहे हैं।पुराण मनुष्य को धर्म एवं नीति के अनुसार जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं। पुराण मनुष्य के कर्मों का विश्लेषण कर उन्हें दुष्कर्म करने से रोकते हैं। पुराण वस्तुतः वेदों का विस्तार हैं। वेद बहुत ही जटिल तथा शुष्क भाषा-शैली में लिखे गए हैं। वेदव्यास जी ने पुराणों की रचना और पुनर्रचना की। कहा जाता है,

''पूर्णात पुराण '' जिसका अर्थ है, जो वेदों का पूरक हो, अर्थात् पुराण (जो वेदों की टीका हैं)। वेदों की जटिल भाषा में कही गई बातों को पुराणों में सरल भाषा में समझाया गया हैं। पुराण-साहित्य में अवतारवाद को प्रतिष्ठित किया गया है। निर्गुण निराकार की सत्ता को मानते हुए सगुण साकार की उपासना करना इन ग्रंथों का विषय है। पुराणों में अलग-अलग देवी-देवताओं को केन्द्र में रखकर पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म और कर्म-अकर्म की कहानियाँ हैं। प्रेम, भक्ति, त्याग, सेवा, सहनशीलता ऐसे मानवीय गुण हैं, जिनके अभाव में उन्नत समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। पुराणों में देवी-देवताओं के अनेक स्वरूपों को लेकर एक विस्तृत विवरण मिलता है। पुराणों में सत्य को प्रतिष्ठित में दुष्कर्म का विस्तृत चित्रण पुराणकारों ने किया है। पुराणकारों ने देवताओं की दुष्प्रवृत्तियों का व्यापक विवरण किया है लेकिन मूल उद्देश्य सद्भावना का विकास और सत्य की प्रतिष्ठा ही है।

अट्ठारह पुराण

पुराणों की संख्या अठारह हैं । विष्णु पुराण के अनुसार उनके नाम हैं—विष्णु, पद्म, ब्रह्म, शिव, भागवत, नारद, मार्कंडेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड, ब्रह्मांड और भविष्य ।

1. ब्रह्म पुराण
2. पद्म पुराण
3. विष्णु पुराण
4. शिव पुराण -- (वायु पुराण)
5. भागवत पुराण -- (देवीभागवत पुराण)
6. नारद पुराण
7. मार्कण्डेय पुराण
8. अग्नि पुराण
9. भविष्य पुराण
10. ब्रह्म वैवर्त पुराण
11. लिङ्ग पुराण
12. वाराह पुराण
13. स्कन्द पुराण
14. वामन पुराण
15. कूर्म पुराण
16. मत्स्य पुराण
17. गरुड़ पुराण
18. ब्रह्माण्ड पुराण

पुराणों में एक विचित्रता यह है कि प्रत्येक पुराण में अठारहों पुराणों के नाम और उनकी श्लोक संख्या है। नाम और श्लोकसंख्या प्रायः सबकी मिलती है, कहीं - कहीं भेद है। जैसे कूर्म पुराण में अग्नि के स्थान में वायुपुराण; मार्कंडेय पुराण में लिंगपुराण के स्थान में नृसिंहपुराण; देवीभागवत में शिव पुराण के स्थान में नारद पुराण और मत्स्य में वायुपुराण है। भागवत के नाम से आजकल दो पुराण मिलते हैं—एक श्रीमदभागवत, दूसरा देवीभागवत। कौन वास्तव में पुराण है इसपर झगड़ा रहा है। रामाश्रम स्वामी ने 'दुर्जनमुखचपेटिका' में सिद्ध किया है कि श्रीमदभागवत ही पुराण है इसपर काशीनाथ भट्ट ने 'दुर्जनमुखमहाचपेटिका' तथा एक और पंडित ने 'दुर्जनमुखपद्यपादुका' देवीभागवत के पक्ष में लिखी थी।

प्रमुख पुराणों का परिचय

पुराणों में सबसे पुराना विष्णुपुराण ही प्रतीत होता है। उसमें सांप्रदायिक खींचतान और रागद्वेष नहीं है। पुराण के पाँचो लक्षण भी उसपर ठीक ठीक घटते हैं। उसमें सृष्टि की उत्पत्ति और लय, मन्वंतरों, भरतादि खंडों और सूर्यादि लोकों, वेदों की शाखाओं तथा वेदव्यास द्वारा उनके विभाग, सूर्य वंश, चंद्र वंश आदि का वर्णन है। कलि के राजाओं में मगध के मौर्य राजाओं तथा गुप्तवंश के राजाओं तक का उल्लेख है। श्रीकृष्ण की लीलाओं का भी वर्णन है पर बिलकुल उस रूप में नहीं जिस रूप में भागवत में है।

कुछ लोगों का कहना है कि वायुपुराण ही शिवपुराण है क्योंकि आजकल जो शिवपुराण नामक पुराण या उपपुराण है उसकी श्लोक संख्या २४,००० नहीं है, केवल ७,००० ही है। वायुपुराण के चार पाद है जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति, कल्पों ओर मन्वंतरों, वैदिक ऋषियों की गाथाओं, दक्ष प्रजापति की कन्याओं से भिन्न भिन्न जीवोत्पति, सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजाओं की वंशावली तथा कलि के राजाओं का प्रायः विष्णुपुराण के अनुसार वर्णन है।

मत्स्यपुराण में मन्वंतरों और राजवंशावलियों के अतिरिक्त वर्णश्रम धर्म का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है और मत्सायवतार की पूरी कथा है। इसमें मय आदिक असुरों के संहार, मातृलोक, पितृलोक, मूर्ति और मंदिर बनाने की विधि का वर्णन विशेष ढंग का है। श्रीमदभागवत का प्रचार सबसे अधिक है क्योंकि उसमें भक्ति के माहात्म्य और श्रीकृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन है। नौ स्कंधों के भीतर तो जीवब्रह्म की एकता, भक्ति का महत्व, सृष्टिलीला, कपिलदेव का जन्म और अपनी माता के प्रति वैष्णव भावानुसार सांख्यशास्त्र का उपदेश, मन्वंतर और ऋषिवंशावली, अवतार जिसमें ऋषभदेव का भी प्रसंग है, ध्रुव, वेणु, पृथु, प्रह्लाद इत्यादि की कथा, समुद्रमथन आदि अनेक विषय हैं। पर सबसे बड़ा दशम स्कंध है जिसमें कृष्ण की लीला का विस्तार से वर्णन है। इसी स्कंध के आधार पर शृंगार और भक्तिरस से पूर्ण कृष्णचरित् संबंधी संस्कृत और भाषा के अनेक ग्रंथ बने हैं। एकादश स्कंध में यादवों के नाश और बारहवें में कलियुग के राचाओं के राजत्व का वर्णन है। भागवत की लेखनशैली और पुराणों से भिन्न है। इसकी भाषा पांडित्यपूर्ण और साहित्य संबंधी चमत्कारों से भरी हुई है, इससे इसकी रचना कुछ पीछे की मानी जाती है।

अग्निपुराण एक विलक्षण पुराण है जिसमें राजवंशावलियों तथा संक्षिप्त कथाओं के अतिरिक्त धर्मशास्त्र, राजनीति, राज- धर्म, प्रजाधर्म, आयुर्वेद, व्याकरण, रस, अलंकार, शस्त्र- विद्या आदि अनेक विषय हैं। इसमें तंत्रदीक्षा का भी विस्तृत प्रकरण है। कलि के राजाओं की वंशावली विक्रम तक आई है, अवतार प्रसंग भी है। इसी प्रकार और पुराणों में भी कथाएँ हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. पुरा नवं में पुरा का अर्थ है -

क. अर्वाचीन ख. प्राचीन ग. नवीन घ. कोई नहीं

2. पुराणों की कुल संख्या है ।

क. 13 ख. 16 ग. 17 घ. 18

3. सबसे बड़ा पुराण है।

क. मार्कण्डेय पुराण ख. ब्रह्मवैवर्त पुराण ग. लिंग पुराण घ. स्कन्द पुराण

4. उपपुराण का अर्थ है ।

क. महापुराण ख. पुराण के समीप ग. स्कन्द पुराण घ. कोई नहीं

5. आख्यान का अर्थ होता है ।

क. कथा ख. कहानी ग. कविता घ. विवरण

विष्णुपुराण के अतिरिक्त और पुराण जो आजकल मिलते हैं उनके विषय में संदेह होता है कि वे असल पुराणों के न मिलने पर पीछे से न बनाए गए हों। कई एक पुराण तो मत मतांतरों और संप्रदायों के राग द्वेष से भरे हैं। कोई किसी देवता की प्रधानता स्थापित करता है, कोई किसी देवता की प्रधानता स्थापित करता है, कोई किसी की। ब्रह्मवैवर्त पुराण का जो परिचय मत्स्यपुराण में दिया गया है उसके अनुसार उसमें रथंतर कल्प और वराह अवतार की कथा होनी चाहिए पर जो ब्रह्मवैवर्त आजकल मिलता है उसमें यह कथा नहीं है। कृष्ण के वृंदावन के रास से जिन भक्तों की तृप्ति नहीं हुई थी उनके लिये गोलोक में सदा होनेवाले रास का उसमें वर्णन है। आजकल का यह ब्रह्मवैवर्त मुसलमानों के आने के कई सौ वर्ष पीछे का है क्योंकि इसमें 'जुलाहा' जाति की उत्पत्ति का भी उल्लेख है—'म्लेच्छात् कुविंदकन्यायां' जोला जातिर्बभूव ह' (१०, १२१)। ब्रह्मपुराण में तीर्थों और उनके माहात्म्य का वर्णन बहुत अदिक हैं, अनंत वासुदेव और पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) माहात्म्य तथा और बहुत से ऐसे तीर्थों के माहात्म्य लिखे गए हैं जो प्राचीन नहीं कहे जा सकते। 'पुरुषोत्तमप्रासाद' से अवश्य जगन्नाथ जी के विशाल मंदिर की ओर ही इशारा है जिसे गांगेय वंश के रिजा चोड़गंगा (सन् १०७७ ई०) ने बनवाया था। मत्स्यपुराण में दिए हुए लक्षण आजकल के पद्मपुराण में भी पूरे

नहीं मिलते हैं। वैष्णव सांप्रदायिकों के द्वेष की इसमें बहुत सी बातें हैं। जैसे, पाषडिलक्षण, मायावादनिंदा, तामसशास्त्र, पुराणवर्णनइत्यादि। वैशेषिक, न्याय, सांख्य और चार्वाक तामस शास्त्र कहे गए हैं और यह भी बताया गया है कि दैत्यों के विनाश के लिये बुद्ध रूपी विष्णु ने असत् बौद्ध शास्त्र कहा। इसी प्रकार मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कंद और अग्नि तामस पुराण कहे गए हैं। सारंश यह कि अधिकांश पुराणों का वर्तमान रूप हजार वर्ष के भीतर का है। सबके सब पुराण सांप्रदायिक है, इसमें भी कोई संदेह नहीं है। कई पुराण (जैसे, विष्णु) बहुत कुछ अपने प्राचीन रूप में मिलते हैं पर उनमें भी सांप्रदायिकों ने बहुत सी बातें बढ़ा दी हैं।

पुराणों का काल एवं रचयिता

यद्यपि आजकल जो पुराण मिलते हैं उनमें से अधिकतर पीछे से बने हुए या प्रक्षिप्त विषयों से भरे हुए हैं तथापि पुराण बहुत प्राचीन काल से प्रचलित थे। बृहदारण्यक और शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि गीली लकड़ी से जैसे धुआँ अलग अलग निकलता है बैसे ही महान् भूत के निःश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद, अथर्वांगिरस, इतिहास, पुराणविद्या, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुव्याख्यान हुए। छांदोग्य उपनिषद् में भी लिखा है कि इतिहास पुराण वेदों में पाँचवाँ वेद है। अत्यंत प्राचीन काल में वेदों के साथ पुराण भी प्रचलित थे जो यज्ञ आदि के अवसरों पर कहे जाते थे। कई बातें जो पुराण केलक्षणों में हैं, वेदों में भी हैं। जैसे, पहले असत् था और कुछ नहीं था यह सर्ग या सृष्टितत्व है; देवासुर संग्राम, उर्वशी पुरूरवा संवाद इतिहास है। महाभारत के आदि पर्व में (१। २३३) भी अनेक राजाओं के नाम और कुछ विषय गिनाकर कहा गया है कि इनके वृत्तांत विद्वान सत्कवियों द्वारा पुराण में कहे गए हैं। इससे कहा जा सकता है कि महाभारत के रचनाकाल में भी पुराण थे। मनुस्मृति में भी लिखा है कि पितृकार्यों में वेद, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण आदि सुनाने चाहिए।

अब प्रश्न यह होता है कि पुराण हैं किसके बनाए। शिवपुराण के अंतर्गत रेवा माहात्म्य में लिखा है कि अठारहों पुराणों के वक्ता सत्यवती सुत व्यास हैं। यही बात जन साधारण में प्रचलित है। पर मत्स्य पुराण में स्पष्ट लिखा है कि पहले पुराण एक ही था, उसी से १८ पुराण हुये। ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि वेदव्यास ने एक पुराण संहिता का संकलन किया था। इसके आगे की बात का पता विष्णु पुराण से लगता है। उसमें लिखा है कि व्यास का एक लोमहर्षण नाम का शिष्य था जो सुत जाति का था। व्यास जी ने अपनी पुराण संहिता उसी के हाथ में दी। लोमहर्षण के छह शिष्य थे— सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शांशपायन, अकृतव्रण और सावर्णी। इनमें से अकृत- व्रण, सावर्णी और शांशपायन ने लोमहर्षण से पढ़ी हुई पुराणसंहिता के आधार पर और एक एक संहिता बनाई। वेदव्यास ने जिस प्रकार मंत्रों का संग्रहकर उन का संहिताओं में विभाग किया उसी प्रकार पुराण के नाम से चले आते हुए वृत्तों का संग्रह कर पुराणसंहिता का संकलन किया। उसी एक संहिता को लेकर सुत के चेलों के तीन और संहीतायें बनाई। इन्हीं संहिताओं के आधार पर अठारह पुराण बने होंगे। मत्स्य, विष्णु, ब्रह्मांड आदि सब पुराणों में ब्रह्मपुराण पहला कहा गया है। पर जो ब्रह्मपुराण

आजकल प्रचलित है वह कैसा है यह पहले कहा जा चुका है। जो कुछ हो, यह तो ऊपर लिखे प्रमाण से सिद्ध है कि अठारह पुराण वेदव्यास के बनाए नहीं हैं। जो पुराण आजकल मिलते हैं उनमें विष्णुपुराण और ब्रह्मांडपुराण की रचना औरों से प्राचीन जान पड़ती है। विष्णुपुराण में 'भविष्य राजवंश' के अंतर्गत गुप्तवंश के राजाओं तक का उल्लेख है इससे वह प्रकरण ईसा की छठी शताब्दी के पहले का नहीं हो सकता। जावा के आगे जो बाली टापू है वहाँ के हिंदुओं के पास ब्रह्मांडपुराण मिला है। इन हिंदुओं के पूर्वज ईसा की पाँचवी शताब्दी में भारतवर्ष में पूर्व के द्वीपों में जाकर बसे थे। बालीवाले ब्रह्माण्डपुराण में 'भविष्य राजवंश प्रकरण' नहीं है उसमें जनमेजय के प्रपौत्र अधिसीमकृष्ण तक का नाम पाया जाता है। यह बात ध्यान देने की है। इससे प्रकट होता है कि पुराणों में जो भविष्य राजवंश है वह पीछे से जोड़ा हुआ है। यहाँ पर ब्रह्मांडपुराण की जो प्राचीन प्रतियाँ मिलती हैं देखना चाहिए कि उनमें भूत और वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग कहाँ तक है। 'भविष्यराजवंश वर्णन' के पूर्व उनमें ये श्लोक मिलते हैं— तस्य पुत्रः शतानीको बलबान् सत्यविक्रमः। ततः सुर्त शतानीकं विप्रास्तमभ्यषेचयन्। पुत्रोश्वमेधदत्तो ? भूत् शतानीकस्य वीर्यवान्। पुत्रो ? श्वमेधदत्ताद्वै जातः परपुरजयः। अधिसीमकृष्णो धर्मात्मा साम्पतोयं महायशाः। यस्मिन् प्रशासति महीं युष्माभिरिदमाहृतम्।। दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि दर्षाणि पुष्करम् वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः।। अर्थात्— उनके पुत्र बलवान् और सत्यविक्रम शतानीक हुए। पीछे शतानीक के पुत्र को ब्राह्मणों ने अभिषिक्त किया। शतानीक के अश्वमेधदत्त नाम का एक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। अश्वमेधदत्त के पुत्र परपुरंजय धर्मात्मा अधिसीम कृष्ण हैं। ये ही महायशा आजकल पृथ्वी का शासन करते हैं। इन्हीं के समय में आप लोगों ने पुष्कर में तीन वर्ष का और दृषद्वती के किनारे कुरुक्षेत्र में दो वर्ष तक का यज्ञ किया है। उक्त अंश से प्रकट है कि आदि ब्रह्मांडपुराण अधिसीमकृष्ण के समय में बना। इसी प्रकार विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण आदि की परीक्षा करने से पता चलता है कि आदि विष्णुपुराण परीक्षित के समय में और आदि मत्स्यपुराण जनमेजय के प्रपौत्र अधिसीमकृष्ण के समय में संकलित हुआ।

पुराण संहिताओं से अठारह पुराण बहुत प्राचीन काल में ही बन गए थे इसका पता लगता है। आपस्तंबधर्मसूत्र(२।२४।५) में भविष्यपुराण का प्रमाण इस प्रकार उदधृत है— आभूत संप्लवात्ते स्वर्गजितः। पुनः सर्गे बीजीर्था भवतीति भविष्यत्पुराणे। यह अवश्य है कि आजकल पुराण अपने आदिम रूप में नहीं मिलते हैं। बहुत से पुराण तो असल पुराणों के न मिलने पर फिर से नए रचे गए हैं, कुछ में बहुत सी बातें जोड़ दी गई हैं। प्रायः सब पुराण शैव, वैष्णव और सौर संप्रदायों में से किसी न किसी के पोषक हैं, इसमें भी कोई संदेह नहीं। विष्णु, रुद्र, सूर्य आदि की उपासना वैदिक काल से ही चली आती थी, फिर धीरे धीरे कुछ लोग किसी एक देवता को प्रधानता देने लगे, कुछ लोग दूसरे को। इस प्रकार महाभारत के पीछे ही संप्रदायों का सूत्रपात हो चला। पुराणसंहिताएँ उसी समय में बनीं। फिर आगे चलकर आदिपुराण बने जिनका बहुत कुछ अंश आजकल पाए जानेवाले कुछ पुराणों के भीतर है। पुराणों का उद्देश्य पुराने वृत्तों का संग्रह करना, कुछ प्राचीन और कुछ

कल्पित कथाओं द्वारा उपदेश देना, देवमहिमा तथा तीर्थमहिमा के वर्णन द्वारा जनसाधारण में धर्मबुद्धि स्थिर रखना था। इसी से व्यास ने सूत (भाट या कथक्केड़) जाति के एक पुरुष को अपनी संकलित आदिपुराण संहिता प्रचार करने के लिये दी।

पुराणों की रचना वैदिक काल के काफ़ी बाद की है,ये स्मृति विभाग में रखे जाते हैं। पुराणों में सृष्टि के आरम्भ से अन्त तक का विशद विवरण दिया गया है। पुराणों को मनुष्य के भूत, भविष्य, वर्तमान का दर्पण भी कहा जा सकता है। इस दर्पण में मनुष्य अपने प्रत्येक युग का चेहरा देख सकता है। इस दर्पण में अपने अतीत को देखकर वह अपना वर्तमान संवार सकता है और भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है। अतीत में जो हुआ, वर्तमान में जो हो रहा है और भविष्य में जो होगा, यही कहते हैं पुराण। इनमें हिन्दू देवीदेवताओं का और- पौराणिक मिथकों का बहुत अच्छा वर्णन है। इनकी भाषा सरल और कथा कहानी की तरह है। पुराणों को वेदों और उपनिषदों जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं है।

पुराण महिमा

पुराण शब्द 'पुरा' एवं 'अण' शब्दों की संधि से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ -'पुराना' अथवा 'प्राचीन' होता है 'पुरा' शब्द का अर्थ है अनागत एवं - अतीत।

'अण' शब्द का अर्थ होता है - कहना या बतलाना अर्थात् जो पुरातन अथवा अतीत के तथ्यों, सिद्धांतों, शिक्षाओं, नीतियों, नियमों और घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करे। माना जाता है कि सृष्टि के रचनाकर्ता ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम जिस प्राचीनतम धर्मग्रंथ की रचना की, उसे पुराण के नाम से जाना जाता है। हिन्दू सनातन धर्म में, पुराण सृष्टि के प्रारम्भ से माने गये हैं, इसलिए इन्हें सृष्टि का प्राचीनतम ग्रंथ मान लिया जाता है किन्तु ये बहुत बाद की रचना है। सूर्य के प्रकाश की भाँति पुराण को ज्ञान का स्रोत माना जाता है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से अंधकार हटाकर उजाला कर देता है, उसी प्रकार पुराण अपनी ज्ञानरूपी किरणों से मानव के मन का अंधकार दूर करके सत्य के प्रकाश का ज्ञान देते हैं। सनातनकाल से ही जगत पुराणों की शिक्षाओं और नीतियों पर ही आधारित है।प्राचीनकाल से पुराण देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों - सभी का मार्गदर्शन करते रहे हैं। पुराण मनुष्य को धर्म एवं नीति के अनुसार जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं। पुराण मनुष्य के कर्मों का विश्लेषण कर उन्हें दुष्कर्म करने से रोकते हैं। पुराण वस्तुतः वेदों का विस्तार हैं। वेद बहुत ही जटिल तथा शुष्क भाषा - शैली में लिखे गए हैं। वेदव्यास जी ने पुराणों की रचना और पुनर्रचना की। कहा जाता है, "पूर्णात पुराण।" जिसका अर्थ है, जो वेदों का पूरक हो, अर्थात् पुराण। वेदों की जटिल भाषा में कही गई बातों को पुराणों में सरल भाषा में समझाया गया हैं। पुराण-साहित्य में अवतारवाद को प्रतिष्ठित किया गया है। निर्गुण निराकार की सत्ता को मानते हुए सगुण साकार की उपासना करना इन ग्रंथों का विषय है। पुराणों में अलग-अलग देवी-देवताओं को केन्द्र में रखकर पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म और कर्म-अकर्म की कहानियाँ हैं। प्रेम, भक्ति, त्याग, सेवा, सहनशीलता ऐसे मानवीय गुण हैं, जिनके अभाव में उन्नत समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। पुराणों में देवी-देवताओं के अनेक स्वरूपों को लेकर एक विस्तृत विवरण मिलता है। पुराणकारों ने देवताओं की दुष्प्रवृत्तियों का व्यापक विवरण किया है

लेकिन मूल उद्देश्य सद्भावना का विकास और सत्य की प्रतिष्ठा ही है।

पुराणों की संख्या

18 पुराणों को इस प्रकार भी समझ सकते हैं -

विष्णु पुराण	ब्रह्म पुराण	शिव पुराण
भागवत पुराण	ब्रह्माण्ड पुराण	लिङ्ग पुराण
नारद पुराण	ब्रह्म वैवर्त पुराण	स्कन्द पुराण
गरुड़ पुराण	मार्कण्डेय पुराण	अग्नि पुराण
पद्म पुराण	भविष्य पुराण	मत्स्य पुराण
वराह पुराण	वामन पुराण	कूर्म पुराण

यह सूची विष्णु पुराण पर आधारित है। मत्स्य पुराण की सूची में शिव पुराण के स्थान पर वायु पुराण है।

पुराणों में श्लोक संख्या

संसार की रचना करते समय ब्रह्मा ने एक ही पुराण की रचना की थी। जिसमें एक अरब श्लोक थे। यह पुराण बहुत ही विशाल और कठिन था। पुराणों का ज्ञान और उपदेश देवताओं के अलावा साधारण जनों को भी सरल ढंग से मिले ये सोचकर महर्षि वेद व्यास ने पुराण को अठारह भागों में बाँट दिया था। इन पुराणों में श्लोकों की संख्या चार लाख है। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचे गये अठारह पुराणों और उनके श्लोकों की संख्या इस प्रकार है ।

सुखसागर के अनुसार

पुराण	श्लोकों की संख्या
ब्रह्मपुराण	दस हज़ार
पद्मपुराण	पचपनहजार
विष्णुपुराण	तेइस हज़ार
शिवपुराण	चौबीसहज़ार
श्रीमद्भावतपुराण	अठारहहज़ार
नारदपुराण	पच्चीसहज़ार
मार्कण्डेयपुराण	नौ हज़ार
अग्निपुराण	पन्द्रह हज़ार
भविष्यपुराण	पाँच सौ

ब्रह्मवैवर्तपुराण	अठारहहज़ार
लिंगपुराण	ग्यारह हज़ार
वाराहपुराण	चौबीसहज़ार
स्कन्धपुराण	181 हजार
कूर्मपुराण	सत्रह हज़ार
मत्सयपुराण	चौदह हज़ार
गरुड़पुराण	उन्नीस हज़ार
ब्रह्माण्डपुराण	बारह हज़ार
मनपुराण	दस हज़ार

पुराणों की संख्या अठारह क्यों ?

- अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, सिद्धि, ईशित्व या वशित्व, सर्वकामावसायिता, सर्वज्ञत्व, दूरश्रवण, सृष्टि, पराकायप्रवेश, वाकसिद्धि, कल्पवृक्षत्व, संहारकरणसामर्थ्य, भावना, अमरता, सर्वन्याय ये - अट्ठारह सिद्धियाँ मानी जाती हैं।
- सांख्य दर्शन में पुरुष, प्रकृति, मन, पाँच महाभूत) पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश (, पाँच ज्ञानेद्री) कान, त्वचा, चक्षु, नासिका और जिह्वा) और पाँच कर्मेंद्री वाक), पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये अठारह तत्त्व वर्णित हैं। (
- छः वेदांग, चार वेद, मीमांसा, न्यायशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद और गंधर्व वेद ये अठारह प्रकार की विद्याएँ मानी जाती हैं।
- एक संवत्सर, पाँच ऋतुएँ और बारह महीने ये सब मिलकर काल के अठारह भेदों को - बताते हैं।
- श्रीमद् भगवतगीता के अध्यायों की संख्या भी अठारह है।
- श्रीमद्भगवतगीता में कुल श्लोकों की संख्या अठारह सौ है।
- श्रीराधा, कात्यायनी, काली, तारा, कूष्मांडा, लक्ष्मी, सरस्वती, गायत्री, छिन्नमस्ता, षोडशी, त्रिपुरभैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी, पार्वती, सिद्धिदात्री, भगवती, जगदम्बा के ये अठारह स्वरूप माने जाते हैं।
- श्रीविष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं के अंश से प्रकट हुई भगवती दुर्गा अठारह भुजाओं से सुशोभित हैं

उप पुराण

महर्षि वेदव्यास ने अठारह पुराणों के अतिरिक्त कुछ उप-पुराणों की भी रचना की है। उप-पुराणों को पुराणों का ही साररूप कहा जा सकता है। उप-पुराण इस प्रकार हैं:

1. सनत्कुमार पुराण
2. कपिल पुराण
3. साम्ब पुराण
4. आदित्य पुराण
5. नृसिंह पुराण
6. उशनः पुराण
7. नंदी पुराण
8. माहेश्वर पुराण
9. दुर्वासा पुराण
10. वरुण पुराण
11. सौर पुराण
12. भागवत पुराण
13. मनु पुराण
14. कालिकापुराण
15. पराशर पुराण
16. वसिष्ठ पुराण

5.4 सारांश -

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप पुराणों के आधारभूत तथ्यों को जान लेंगे। पुराण हमारे अतीत का धरोहर है, जो हमारी विरासत को आख्यान रूप में प्रकट करता है। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति – विनाश, भगवान के विभिन्न रूप का अवतार वर्णन, धर्मसंस्थापनार्थ अनेकों आख्यान, राजाओं – महाराजाओं का वर्णन आदि प्राप्त होता है। आशा है आप इकाई के अध्ययन के पश्चात् पुराण एवं उससे जुड़े कई विषयों का ज्ञान प्राप्त करनें में सक्षम होंगे।

5.5 शब्दावली

पुराण – पुरा नवं पुराणम्

उपपुराण – पुराण के समीप

संस्थापना – स्थापना के साथ

उत्पत्ति - प्राकट्य,

लय – विनाश

धर्मसंस्थापनार्थ – धर्म की स्थापना के लिये

पुरातन – पुराना

जनसाधारण – आम लोग

दैवीकृपा – देवताओं की कृपा

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. ख
2. घ
3. घ
4. ख
5. क

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	प्रकाशन
नित्यकर्म पूजाप्रकाश	गीताप्रेस गोरखपुर
भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व –	चौखम्भा प्रकाशन
कर्मकाण्ड प्रदीप –	चौखम्भा प्रकाशन

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1- पुराण किसे कहते है ? विस्तार से उसका वर्णन कीजिये।

2- पुराणों के कितने प्रकार है। विस्तृत वर्णन कीजिये।

खण्ड – 2
पंचांग परिचय एवं मुहूर्त्त ज्ञान

इकाई – 1 तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण विचार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण का परिचय

1.3.1 तिथियों का परिचय

1.3.2 नक्षत्रों का परिचय

1.3.3 वारों का परिचय

1.3.4 योगों का परिचय

1.3.5 करण परिचय

1.4 तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण का वैशिष्ट्य

1.4.1 प्रतिपदा इत्यादि तिथियों का निर्णय

1.4.2 नक्षत्रों का वैशिष्ट्य

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण विचार संबंधी प्रविधियों का अध्ययन आप करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। प्रत्येक दिन तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण प्रायः पृथक- पृथक होता है। बिना इसके विचार किये वह दिन शुभ है या अशुभ है इसका विचार आप नही कर सकते हैं। अतः ये तिथि, वार, नक्षत्रादि क्या होते हैं इसका ज्ञान आपको इस इकाई के अध्ययन से हो जायेगा।

तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण विचार के अभाव में किसी व्रत, किसी मुहूर्त्त, किसी उत्सव एवं किसी पर्व का ज्ञान किसी भी व्यक्ति को नही हो सकता है। क्योकि कोई भी व्रत करते हैं तो उसका आधार तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण ही होता है, साधारण रूप से एकादशी का विचार करना हो तो आपको यह कौन सी तिथि है? महीने में कितनी बार आती है ? इत्यादि-इत्यादि बिना जाने आप एकादशी का विचार नही कर सकते हैं। इसी प्रकार वार का व्रत, जैसे मंगलवार का व्रत करना हो तो यह जानना आवश्यक होगा कि मंगलवार कब आता है ? इसमें किसका पूजन करना चाहिय? आदि-आदि।

इस इकाई के अध्ययन से आप तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण इत्यादि के विचार करने की विधि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण आदि विषय के अज्ञान संबंधी दोषों का निवारण हो सकेगा जिससे सामान्य जन भी अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगें। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों एवं महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायक होना, सामाजिक सहभागिता का विकास, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी बनाना आदि।

1.2 उद्देश्य-

अब तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण विचार की आवश्यकता को आप समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते हैं।

1. कर्मकाण्ड को लोकोपकारक बनाना।
2. व्रत, पर्व, उत्सवों के निर्णयार्थ शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।
3. कर्मकाण्ड में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।

4. प्राच्य विद्या की रक्षा करना।

5. लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।

6. समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

1.3 तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण का परिचय -

इसमें तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करणों का परिचय आपको कराया जायेगा क्योकि बिना इसके परिचय के तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण का आधारभूत ज्ञान नही हो सकेगा। आधारभूत ज्ञान हो जाने पर किसी भी विषय के महत्त्व एवं उपयोगिता को आसानी से समझा जा सकता है

1.3.1 तिथियों का परिचय

तिथि क्या है ? इस पर विचार करते हुये आचार्यों ने कहा है **एक-चन्द्रकलावृद्धिक्षयान्यतरावच्छिन्नः कालः तिथिः।** अर्थात् चन्द्रमा के एक-एक कला वृद्धि के अवच्छिन्न काल को तिथि कहा जाता है। तिथियों को दो प्रकारों में बांटा गया है जिन्हें शुक्ला तिथि एवं कृष्णा तिथि के रूप में जाना जाता है। चन्द्रमा के एक-एक कला की वृद्धि के अवच्छिन्न काल को शुक्ल तिथि एवं चन्द्रमा के क्षयावच्छिन्न काल को कृष्णा तिथि कहते हैं।

चन्द्रमा के एक कला वृद्धि या एक कला क्षय के काल को प्रतिपदा तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के दो कला वृद्धि या दो कला क्षय के काल को द्वितीया तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के तीन कला वृद्धि या क्षय के काल को तृतीया तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के चार कला वृद्धि या क्षय के काल को चतुर्थी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के पांच कला वृद्धि या क्षय के काल को पंचमी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के छः कला वृद्धि या क्षय के काल को षष्ठी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के सात कला वृद्धि या क्षय के काल को सप्तमी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के आठ कला वृद्धि या क्षय के काल को अष्टमी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के नव कला वृद्धि या क्षय के काल को नवमी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के दश कला वृद्धि या क्षय के काल को दशमी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के ग्यारह कला वृद्धि या क्षय के काल को एकादशी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के बारह कला वृद्धि या क्षय के काल को द्वादशी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के तेरह कला वृद्धि या क्षय के काल को त्रयोदशी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के चौदह कला वृद्धि या क्षय के काल को चतुर्दशी तिथि कहते हैं। चन्द्रमा के पन्द्रह कला वृद्धि या क्षय के काल को पूर्णिमा या अमावास्या तिथि कहते हैं। इसी प्रकार समस्त तिथियों का विचार किया जाता है।

सभी तिथियां दो प्रकार की होती है जिन्हे पूर्णा एवं खण्डा के नाम से जाना जाता है। पूर्णा तिथि की व्याख्या करते हुये नारदीय पुराण में कहा गया है कि आदित्योदयबेलायामारभ्य

षष्टिनाडिका सम्पूर्णा इति विज्ञेया। अर्थात् सूर्योदय से आरम्भ कर साठ नाडी तक जो तिथि भोग करती है उसे पूर्णा तिथि कहते हैं। अतो अन्या खण्डा यानी इसके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की तिथियों को खण्डा कहा जाता है। तिथियों के लक्षण का प्रतिपादन करते हुये बतलाया गया है कि खर्वो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथि लक्षणम् अर्थात् खर्व, दर्प एवं हिंसा तिथियों के तीन लक्षण बतलाये गये हैं। इनकी व्याख्या करते हुये कहा गया- खर्वो साम्यं अर्थात् तिथियों में जो साम्यता पाई जाती है उसे खर्व के अन्तर्गत रखा गया है। साम्यता का अर्थ सामान्यता से है जैसे प्रतिपदा, द्वितीया , तृतीया इत्यादि। दर्पो वृद्धिः यानी तिथियों में वृद्धि जो होती है उसे दर्प में रखा गया है जैसे प्रतिपदा, द्वितीया, द्वितीया, तृतीया इत्यादि। हिंसा क्षयः अर्थात् तिथियों का क्षय हो जाना जैसे प्रतिपदा , तृतीया इत्यादि। यहॉ द्वितीया की हानि हो गयी है। इससे ऊपर वाले में द्वितीया तिथि की वृद्धि हो गयी है। इस प्रकार से खर्व, दर्प एवं हिंसा इन तीन प्रकार की तिथियों को बराबर अनुभूत करते हैं।

इस प्रकरण में आपने प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की तिथियों का ज्ञान क्या है? इसको आपने जाना। आशा है आपको तिथियों का सामान्य ज्ञान हो गया होगा।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- तिथियों को कितने प्रकारों में बांटा गया है?

क- 2, ख- 3, ग-4, घ- 5 ।

प्रश्न 2- चन्द्रमा के एक-एक कला वृद्धि को कहा जाता है-

क-शुक्ल, ख- कृष्ण, ग- पीत , घ- हरित।

प्रश्न 3- चन्द्रमा के एक - एक कला ह्रास को कहा गया है-

क-शुक्ल, ख- कृष्ण, ग- पीत , घ- हरित।

प्रश्न 4- प्रतिपदा में कितने कला की वृद्धि या क्षय होता है?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- आठ ।

प्रश्न 5- द्वितीया में कितने कला की वृद्धि या क्षय होता है?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- आठ ।

प्रश्न 6- तृतीया में कितने कला की वृद्धि या क्षय होता है?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- आठ ।

प्रश्न 7- चतुर्थी में कितने कला की वृद्धि या क्षय होता है?

क- चार, ख- तीन, ग- दो, घ- एक।

प्रश्न 8- पंचमी में कितने कला की वृद्धि या क्षय होता है?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- पॉंच।

प्रश्न 9- खर्व तिथि का लक्षण क्या है ?

क-साम्यता, ख- वृद्धि, ग- क्षय , घ- अनिश्चित।

प्रश्न 10- दर्प तिथि का लक्षण क्या है ?

क-साम्यता, ख- वृद्धि, ग- क्षय , घ- अनिश्चित।

प्रश्न 11- हिंसा तिथि का लक्षण क्या है ?

क-साम्यता, ख- वृद्धि, ग- क्षय , घ- अनिश्चित।

1.3.2 नक्षत्रों का परिचय-

ज्योतिषीय ज्ञान का मुख्य आधार नक्षत्र हैं।जिस भी काल खण्ड में व्यक्ति का जन्म होता है उस समय कोई न कोई नक्षत्र अवश्य होती है। इन नक्षत्रों के आधार पर ही राशि नाम का निर्धारण किया जाता है।प्रत्येक नक्षत्र के चार पाद बतलाये गये है। जिस पाद में जातक का जन्म होता है उस पाद में निश्चित वर्ण को आधार मानकर राशि नाम का निर्धारण किया जाता है। अभिजित सहित कुल नक्षत्रों की संख्या अठ्ठाईस मानी जाती है। अभिजित को छोड़कर कुल नक्षत्रों की संख्या सत्ताईस बतलायी गयी है। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा एवं रेवती के नाम से जाना जाता है।

अब नक्षत्रों के बारे में अब आप जान गये होगे। इन नक्षत्रों के आधार पर वर्णों का निर्धारण कर किस प्रकार नक्षत्र नाम का निर्धारण किया जाता है इसके बारे में जानना अति आवश्यक है। इसलिये अग्रिम जानकारी दी जा रही है इसे ध्यान पूर्वक समझना चाहिये।

अश्विनी नक्षत्र के चारो पादों को **चू, चे, चो, ला** के रूप में जाना जाता है**। भरणी नक्षत्र** के चारो पादों को **ली, लू, ले, लो** के रूप में जाना जाता है। **कृत्तिका नक्षत्र** के चारो पादों को **अ, ई, उ, ए** के रूप में जाना जाता है। **रोहिणी नक्षत्र** के चारो पादों को **ओ, वा, वी, वू** के रूप में जाना जाता है। **मृगशिरा नक्षत्र** के चारो पादों को वे, वो, का, की के रूप में जाना जाता है। आर्द्रा नक्षत्र के चारो पादों को कू, घ, ड., छ के रूप में जाना जाता है। पुनर्वसु के चारो पादों को के, को, हा, ही के रूप में

जाना जाता है। पुष्य नक्षत्र के चारो पादों को हू, हे, हो, डा के रूप में जाना जाता है। आश्लेषा नक्षत्र के चारो पादों को डी, डू, डे, डो के रूप में जाना जाता है। मघा
नक्षत्र के चारो पादों को मा, मी, मू, मे के रूप में जाना जाता है। पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र के चारो पादों को मो, टा, टी, टू के रूप में जाना जाता है। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के चारो पादों को टे, टो, पा, पी के रूप में जाना जाता है। हस्त नक्षत्र के चारो पादों को पू, ष, ण, ठ के रूप में जाना जाता है। चित्रा नक्षत्र के चारो पादों को पे, पो, रा, री के रूप में जाना जाता है। स्वाती नक्षत्र के चारो पादों को रू, रे, रो, ता के रूप में जाना जाता है। विशाखा नक्षत्र के चारो पादों को ती, तू, ते, तो के रूप में जाना जाता है। अनुराधा नक्षत्र के चारो पादों को ना, नी, नू, ने के रूप में जाना जाता है। ज्येष्ठा नक्षत्र के चारो पादों को नो, या, यी, यू के रूप में जाना जाता है। मूल नक्षत्र के चारो पादों को ये, यो, भा, भी के रूप में जाना जाता है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के चारो पादों को भू, ध, फ, ढ के रूप में जाना जाता है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चारो पादों को भे, भो, जा, जी के रूप में जाना जाता है। श्रवण नक्षत्र के चारो पादों को खी, खू, खे, खो के रूप में जाना जाता है। धनिष्ठा नक्षत्र के चारो पादों को गा, गी, गू, गे के रूप में जाना जाता है। शतभिषा नक्षत्र के चारो पादों को गो, सा, सी, सू के रूप में जाना जाता है। पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र के चारो पादों को से, सो, दा, दी के रूप में जाना जाता है। उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र के चारो पादों को दू, थ, झ, यं के रूप में जाना जाता है। रेवती नक्षत्र के चारो पादों को दे, दो, चा, ची के रूप में जाना जाता है।

इन पादों का निर्धारण भयात् एवं भभोग के आधार पर होता है। भ का अर्थ नक्षत्र होता है। यात् का गत हुआ होता है यानी जितनी घटी नक्षत्र गत हो गयी उसे भयात् के रूप में एवं जितनी घटी नक्षत्र सम्पूर्ण भोग करेगी उसे भभोग के रूप में जाना जाता है। इसके निर्धारण हेतु बतलाया गया है कि-

गतर्क्ष नाडी खरशेषु शुद्धा, सूर्योदयादिष्ट भवेद् युक्ता।
भयात् संज्ञा भवतीह तस्य, निजर्क्ष्य नाड़ी सहितो भभोगः।।

इसका अर्थ यह हुआ कि गत नक्षत्र को साठ में से घटाकर सूर्योदयादिष्ट को जोड़ देने से भयात् संज्ञा हो जाती है। और वर्तमान नक्षत्र में उस घटाये हुये मान को जोड़ने से भभोग संज्ञा हो जाती है। जिसके आधार पर पाद भेद का निर्धारण हो जाता है। इस प्रकार से इसमें आपने नक्षत्रों के नाम एवं पाद भेद की दृष्टि से उनके वर्णाक्षरों को जाना। इसके ज्ञान से नक्षत्र ज्ञान आपका प्रौढ़ होगा तथा आसानी से आप राशि का निर्माण भी करने में समर्थ हो सकेगें।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु

विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- अभिजित् नक्षत्र को छोड़कर कुल नक्षत्रों की संख्या कितनी है?

क- 27, ख- 28, ग- 29, घ- 30।

प्रश्न 2- इन नक्षत्रों में से किसको चे वर्ण वाली नक्षत्र के रूप में जाना जाता है?

क-रेवती को, ख- अश्विनी को, ग- आश्लेषा को , घ- हस्त को।

प्रश्न 3- लू वर्ण वाली नक्षत्र किसे कहा गया है?

क- भरणी को, ख- कृत्तिका को, ग-रोहिणी को, घ- मूल को।

प्रश्न 4- अ वर्ण किस नक्षत्र में आता है?

क- अश्विनी, ख- भरणी, ग- कृत्तिका, घ- रोहिणी।

प्रश्न 5- ओ वर्ण किस नक्षत्र में आता है?

क- अश्विनी, ख- भरणी, ग- कृत्तिका, घ- रोहिणी।

प्रश्न 6- ला वर्ण किस नक्षत्र में आता है?

क- अश्विनी, ख- भरणी, ग- कृत्तिका, घ- रोहिणी।

प्रश्न 7- ली वर्ण किस नक्षत्र में आता है?

क- अश्विनी, ख- भरणी, ग- कृत्तिका, घ- रोहिणी।

प्रश्न 8- ए वर्ण किस नक्षत्र में आता है?

क- अश्विनी, ख- भरणी, ग- कृत्तिका, घ- रोहिणी।

प्रश्न 9- मा वर्ण किस नक्षत्र में आता है?

क- अश्विनी, ख- भरणी, ग- कृत्तिका, घ- मघा।

प्रश्न 10- खी वर्ण किस नक्षत्र में आता है?

क- अश्विनी, ख- भरणी, ग-श्रवण, घ- रोहिणी।

1.3.3 वारों का परिचय-

आप सभी जानते है कि एक वर्ष में बारह महीनें होते हैं। एक महीने मे तीस या इकतिस दिन होते हैं फरवरी मास को छोड़कर। सात दिनों का एक सप्ताह होता है। दिनों को ही वारों के रूप में जाना जाता है जिन्हे क्रमशः सूर्यवार, सोमवार, भौमवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार एवं शनिवार के रूप में जाना जाता है। ज्योतिष में इन सात वारों के नामों को ग्रहों से जोड़कर मुख्य ग्रह के रूप में सूर्यवार को रवि, सोमवार को चन्द्र, भौमवार को मंगल, बुधवार को बुध, बृहस्पतिवार को गुरु, शुक्रवार को

शुक्र एवं शनिवार को शनि के रूप में जाना जाता है। सूर्य का वर्ण लाल, चन्द्रमा यानी सोम का वर्ण सफेद, भौम का वर्ण लाल, बुध का वर्ण हरा, गुरु का वर्ण पीला, शुक्र का वर्ण सफेद एवं शनि का वर्ण काला बतलाया गया है। जिस व्यक्ति का जो ग्रह अशुभ फल दाता होता है उस व्यक्ति के लिये उससे संबंधित ग्रहों वाले दिवसों में संबंधित वर्णों से पूजन या उनके दान का विधान किया गया है।

वारों के वैकल्पिक नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं-

रविवार- भानु, सूर्य, बुध्न, भास्कर, दिवाकर, सविता, प्रभाकर, तपन, दिवेश, दिनेश, अर्क, दिवामणि, चण्डांशु, द्युमणि इत्यादि।

सोमवार- चन्द्र, विधु, इन्दु, निशाकर, शीतांशु, हिमरश्मि, जडांशु, मृगांक, शशांक, हरिपाल इत्यादि।

भौमवार- कुज, भूमितनय, आर, भीमवक्त्र एवं अंगारक इत्यादि।

बुधवार- सौम्य, वित्, ज्ञ, मृगांकजन्मा, कुमारबोधन, तारापुत्र इत्यादि।

गुरूवार- बृहस्पति, इज्य, जीव, सुरेन्द्र, सुरपूज्य, चित्रशिखण्डितनय, वाक्पति इत्यादि।

शुक्रवार- उशना, आस्फुजित्, कवि, भृगु, भार्गव, दैत्यगुरु इत्यादि।

शनिवार- मन्द, शनैश्चर, रवितनय, रौद्र, अर्कि, सौरि, पंगु, शनि इत्यादि।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- सविता किसका नाम है?

क- सूर्य का, ख- चन्द्र का, ग- मंगल का, घ- बुध का ।

प्रश्न 2- तपन किसका नाम है?

क- सूर्य का, ख- चन्द्र का, ग- मंगल का, घ- बुध का ।

प्रश्न 3 - निशाकर किसका नाम है?

क- सूर्य का, ख- चन्द्र का, ग- मंगल का, घ- बुध का ।

प्रश्न 4- मृगांक किसका नाम है?

क- सूर्य का, ख- चन्द्र का, ग- मंगल का, घ- बुध का ।

प्रश्न 5- तारापुत्र किसका नाम है?

क- सूर्य का, ख- चन्द्र का, ग- मंगल का, घ- बुध का ।

प्रश्न 6- वित् किसका नाम है?

क- सूर्य का, ख- चन्द्र का, ग- मंगल का, घ- बुध का।

प्रश्न 7 जीव किसका नाम है?

क- सूर्य का, ख- गुरू का, ग- मंगल का, घ- बुध का।

प्रश्न 8- वाक्पति किसका नाम है?

क- गुरू का, ख- चन्द्र का, ग- मंगल का, घ- बुध का।

प्रश्न 9- उशना किसका नाम है?

क- सूर्य का, ख- चन्द्र का, ग- शुक्र का, घ- बुध का।

प्रश्न 10- मन्द किसका नाम है?

क- सूर्य का, ख- चन्द्र का, ग- मंगल का, घ- शनि का।

1.3.4 योगों का परिचय

कुल सत्ताईस योग होते हैं, जिन्हे क्रमशः विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतिपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र एवं वैधृति। इन योगों का प्रयोग संकल्पादि के अवसर पर किया जाता है तथा शुभाशुभ विचार में भी इनका महत्व है। जन्म कुण्डली में योग का फल जानने हेतु इन्ही योगों का प्रयोग देखने को मिलता है।

इसके अलावा आनन्दादि योगों का प्रयोग भी देखने को मिलता है, जिसका प्रयोग यथा नाम तथा गुणः के आधार पर लिखा रहता है। इन योगों की संख्या अठ्ठाईस बतलायी गयी है। इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है-

आनन्दाख्यः कालदण्डश्च धूम्रो धाता सौम्यो ध्वांक्षकेतु क्रमेण।
श्रीवत्साख्यो वज्रकं मुद्गरश्च छत्रं मित्रं मानसं पद्मलुम्बौ।
उत्पातमृत्यु किलकाणसिद्धी शुभो अमृताख्यो मुसलो गदश्च।
मातंगरक्षश्चरसुस्थिराख्याः प्रवर्धमानाः फलदाः स्वनाम्ना।।

अर्थात् इन योगों के नाम इस प्रकार है- 1 आनन्द, 2 कालदण्ड, 3 धूम्र, 4 धाता, 5 सौम्य, 6 ध्वांक्ष, 7 केतु, 8 श्रीवत्स, 9 वज्र, 10 मुद्गर, 11 छत्र, 12 मित्र, 13 मानस, 14 पद्म, 15 लुम्ब, 16 उत्पात, 17 मृत्यु, 18 काण, 19 सिद्धि, 20 शुभ, 21 अमृत, 22 मुशल, 23 गद, 24 मातंग, 25 रक्ष, 26 चर, 27 सुस्थिर और 28 प्रवर्धमान हैं। ये सभी योग अपने नाम के अनुसार फल देने वाले होते है।

इन योगों के निर्धारण का नियम बतलाते हुये कहा गया है कि-

दास्रादर्के मृगादिन्दौ सार्पाद्भौमे कराद्बुधे।

मैत्राद् गुरौ भृगौ वैश्वाद् गण्या मन्दे च वारुणात्।।

अर्थात् रविवार को अश्विनी से, सोमवार को मृगशिरा से, मंगलवार को आश्लेषा से, बुधवार को हस्त से, गुरूवार को अनुराधा से, शुक्रवार को उत्तराषाढ़ा से और शनिवार को शतभिषा से योगों को जाना चाहिये। अभिजित सहित वर्तमान नक्षत्र तक गिनकर जितनी संख्या हो उस दिन आनन्द से गिनने पर उतनी संख्या वाला योग होता है। उदाहरण स्वरूप यदि रविवार को धनिष्ठा नक्षत्र है तो कौन योग होगा ? ऐसे प्रश्न के उत्तर के लिये रविवार को अश्विनी से धनिष्ठा तक अभिजित् सहित गिनने पर 24 संख्या हुयी। अतः आनन्दादि से 24वां मातंग योग आया। इसी प्रकार सभी वारों में समझना चाहिये।

किसी भी कार्य के आरम्भ में इन योगों का विचार करना चाहिये। शुभ योगों के होने पर उसमें आरम्भ शुभदायक तथा अशुभ योगों में कार्य का आरम्भ अशुभदायक होता है। अशुभ योगों में कार्यारम्भ आवश्यक हो तो उसके परिहार का विचार कर आवश्यक दुष्ट घड़ी का त्याग कर कार्यारम्भ किया जा सकता है जिसका विचार इस प्रकार है-

ध्वांक्षे वज्रे मुद्गरे चेषुनाड्ये वर्ज्या वेदाः पद्मलुम्बे गदे अश्वाः।

धूम्रे काणे मौसले भूर्द्वयं द्वे रक्षोमृत्यूत्पातकालाश्च सर्वे।।

अर्थात् 6 ध्वांक्ष, 9 वज्र और 10 मुद्गर योगों में आदि की पांच घटी, 14 पद्म और 15 लुम्ब योगों मे आदि की चार घटी, 23 गद योग में आदि की सात घटी, 3 धूम्र योग में आदि की 1 घटी, 18 काण योग में दो घटी , 22 मुशल में दो घटी, 25 राक्षस, 17 मृत्यु और 16 उत्पात एवं 2 काल योगों की समस्त घटिकायें शुभ कर्म में त्याज्य हैं।

इसके अलावा यह भी ज्ञतव्य है कि सूर्य जिस नक्षत्र पर हो, उस नक्षत्र से वर्तमान चन्द्र नक्षत्र चौथा, नवां, छठा, दसवां, तेरहवां, और बीसवॉं हो तो रवियोग होता है। यह उस काल के समस्त दोषों को नष्ट करने वाला बतलाया गया है। यथा-

सूर्यभाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसम्मिते ।

चन्द्रर्क्षे रवियोगाः स्युर्दोषसंघविनाशकाः।।

इस प्रकार आप योगों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। अब इस पर कुछ अभ्यास प्रश्न दिये जा रहे है जिसको आप आसानी पूर्वक हल कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन

आपको करना है-

प्रश्न 1-कुल विष्कंभादि योगों की संख्या कितनी बतलायी गयी हैं ?

क- 26, ख- 27, ग- 28, घ- 29।

प्रश्न 2-कुल आनन्दादि योगों की संख्या कितनी बतलायी गयी हैं ?

क- 26, ख- 27, ग- 28, घ- 29।

प्रश्न 3-रविवार को आनन्दादि योगों का विचार किस नक्षत्र से किया गया हैं ?

क- अश्विनी, ख-मृगशिरा , ग- आश्लेषा , घ- हस्त।

प्रश्न 4- सोमवार को आनन्दादि योगों का विचार किस नक्षत्र से किया गया हैं ?

क- अश्विनी, ख-मृगशिरा , ग- आश्लेषा , घ- हस्त।

प्रश्न 5- मंगलवार को आनन्दादि योगों का विचार किस नक्षत्र से किया गया हैं ?

क- अश्विनी, ख-मृगशिरा , ग- आश्लेषा , घ- हस्त।

प्रश्न 6- बुधवार को आनन्दादि योगों का विचार किस नक्षत्र से किया गया हैं ?

क- अश्विनी, ख-मृगशिरा , ग- आश्लेषा , घ- हस्त।

प्रश्न 7-गुरुवार को आनन्दादि योगों का विचार किस नक्षत्र से किया गया हैं ?

क- अनुराधा, ख-उत्तराषाढ़ा , ग- आश्लेषा , घ- हस्त।

प्रश्न 8-शुक्रवार को आनन्दादि योगों का विचार किस नक्षत्र से किया गया हैं ?

क- उत्तराषाढ़ा, ख-मृगशिरा , ग- आश्लेषा , घ- हस्त।

प्रश्न 9-ध्वांक्ष योग में कार्यारम्भ में आदि की कितनी घड़ी त्याज्य हैं ?

क- 5, ख-10 , ग-15 , घ-20।

प्रश्न 10-मुद्गर योग में कार्यारम्भ में आदि की कितनी घड़ी त्याज्य हैं ?

क- 5, ख-10 , ग-15 , घ-20।

प्रश्न 11- पद्म योग में कार्यारम्भ में आदि की कितनी घड़ी त्याज्य हैं ?

क- 5, ख-10 , ग-4 , घ-20।

1.3.5 करण परिचय-

एक तिथि में दो करण होते हैं। करण चर एवं स्थिर दो प्रकार के होते हैं। चर करण सात होते हैं जिन्हें बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि के नाम से जाना जाता है। इनका प्रारम्भ शुक्ल प्रतिपदा के उत्तरार्द्ध से होता है। और एक मास में इनकी आठ आवृत्तियां होती हैं। शकुनी, चतुष्पद, नाग तथा किंस्तुघ्न ये चार स्थिर करण है। इनका प्रारम्भ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध से होता

है। अर्थात् चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध में शकुनी, अमावास्या के पूर्वार्ध में चतुष्पद, उत्तरार्ध में नाग तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न करण सदा नियत रहते हैं। इनकी स्थिर संज्ञा है।

इसमें जहां - जहां विष्टि शब्द आया है, उससे उस तिथि के निर्दिष्ट भाग को भद्रा कहते हैं। जैसे शुक्ल पक्ष में चार, ग्यारह और कृष्णपक्ष में तीन, दश तिथियों के उत्तरार्ध में भद्रा रहती है। और शुक्लपक्ष में आठ, पन्द्रह कृष्णपक्ष में सात, चौदह तिथियों के पूर्वार्ध में भद्रा रहती है।

भद्रा के ज्ञान हेतु तिथियों का मान जानना आवश्यक है। जैसे दिया गया कि कृष्णपक्ष के उत्तरार्ध में भद्रा रहती है तो उत्तरार्ध का प्रारम्भ कब होगा? इसका सम्पूर्ण काल कितना रहेगा? इन सारी चींजों को जानना आवश्यक है, अन्यथा इसके अभाव में भद्रा का निर्धारण नही हो सकेगा। जैसे द्वितीया तिथि का घटी मान 14.4 दिया गया है। इस मान को 60.00 में से घटाने पर 45.56 शेष बचेगा। इस मान को तृतीया के घटी मान 12.31 में जोड़ने से तृतीया का भोग काल 58.27 हो जाता है। इस भोग काल का आधा 29.13.30 आयेगा। इस मान को द्वितीया के मान घटी 14.4 में जोड़ने पर तृतीया का उत्तरार्ध 43.17 के बाद प्रारम्भ होगा। उसी समय से भद्रा प्रारम्भ होकर तृतीया की समाप्ति पर्यन्त रहेगी। इसी प्रकार अन्य सभी भद्राओं को समझना चाहिये। अब आप करण का सामान्य परिचय जान गये होगें। आवश्यकतानुसार विष्टि करण का साधन भी आराम से कर सकते है। बस किंचित् अभ्यास की जरूरत है। अब इस आधार पर कुछ अभ्यास प्रश्न दिये जा रहे हैं जो इस प्रकार है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-एक तिथि में कितने करण होते हैं ?

क-एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

प्रश्न 2- करण कितने प्रकार के होते हैं ?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

प्रश्न 3- कितने चर करण होते हैं ?

क-एक, ख- दो, ग- पांच, घ- सात।

प्रश्न 4- कितने स्थिर करण होते हैं ?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

प्रश्न 5-बालव कौन सा करण हैं ?

क-चर, ख- स्थिर, ग- द्विस्वभाव, घ- मिश्रित।

प्रश्न 6-कौलव कौन सा करण हैं ?

क-चर, ख- स्थिर, ग- द्विस्वभाव, घ- मिश्रित।

प्रश्न 7-बणिज कौन सा करण हैं ?

क-चर, ख- स्थिर, ग- द्विस्वभाव, घ- मिश्रित।

प्रश्न 8-शकुनी कौन सा करण हैं ?

क-चर, ख- स्थिर, ग- द्विस्वभाव, घ- मिश्रित।

प्रश्न 9-चतुष्पद कौन सा करण हैं ?

क-चर, ख- स्थिर, ग- द्विस्वभाव, घ- मिश्रित।

प्रश्न 10-नाग कौन सा करण हैं ?

क-चर, ख- स्थिर, ग- द्विस्वभाव, घ- मिश्रित।

प्रश्न 11-किंस्तुघ्न कौन सा करण हैं ?

क-चर, ख- स्थिर, ग- द्विस्वभाव, घ- मिश्रित।

1.4 तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण का वैशिष्ट्य-

इसमें तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण के विशेषताओं पर आपका ध्यान आकृष्ट कराया जायेगा। इन तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करणों के संबंध बतलायी जाने वाली अधोलिखित बातें संबंधित विषय के ज्ञान को प्रौढ़ करेगा।

1.4.1 प्रतिपदा इत्यादि तिथियों का निर्णय-

प्रतिपद् पंचमी चैव उपोष्या पूर्वसंयुता इस जाबालि के वचन के रूप में उद्धृत मदन रत्न की पंक्ति के अनुसार प्रतिपदा एवं पंचमी पूर्व तिथि से संयुक्त हो तो उपवास योग्य होती है। लेकिन कहीं- कहीं पर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को अपरान्ह व्यापिनी स्वीकार करने के लिये कहा गया है तथा पर संयुता यानी बाद वाली तिथि यानी द्वितीया से विद्ध प्रतिपदा को उपवास में स्वीकार का विधान किया गया है। अपरान्ह व्यापिनी तिथि के अभाव में सायान्ह व्यापिनी तिथि को भी ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु उपवास प्रातः काल से ही होगा, दिन के मध्य भाग से नही इसका विचार करना चाहिये।

द्वितीया तिथि का निर्णय करते हुये बतलाया गया है कि-

एकादशी षष्ठी द्वितीया च चतुर्दशी।
त्रयोदशी अमावास्या उपोष्या स्युः पराश्रिताः।।

अर्थात् एकादशी, षष्ठी, द्वितीया, चतुर्दशी, त्रयोदशी एवं अमावास्या पर तिथि से आश्रित हो तो उपवास योग्य होती है।

तृतीया तिथि का निर्णय करते हुये बतलाया गया है कि रम्भा व्रत में तृतीया तिथि पूर्वविद्धा ग्रहण की जाती है। अन्य सभी व्रतो में तृतीया तिथि पर विद्धा स्वीकार की जाती है। इसका वर्णन करते हुये ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कहा गया है कि-

रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम।
अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते।।

गण युक्ता का अर्थ चतुर्थी से युक्तता का है। स्कन्द पुराण में तो कहा गया है कि-

कलाकाष्ठापि वा यत्र द्वितीया संप्रदृश्यते।
सा तृतीया न कर्तव्या कर्त्तव्या गण संयुता।।

अर्थात् तृतीया किंचित् मात्र भी द्वितीया से संपृक्त हो तो उस तृतीया को उपवास नही होगा। चतुर्थी से संयुक्त तृतीया ही करना चाहिये।

चतुर्थी तिथि का निर्णय करते हुये बतलाया गया है कि

चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते।
मध्यान्हव्यापिनी सा तु परतश्चेत्परे हनि।

गणेश भगवान के लिये की जाने वाली चतुर्थी को मातृ विद्धा यानी तृतीया तिथि से बेध होने पर स्वीकार करना चाहिये। क्योकि इस व्रत का कर्मकाल चतुर्थी में चन्द्रमा को देखकर अर्घ का दान करना है। गणपति कल्प नामक ग्रन्थ में लिखा गया है कि विनायक व्रत में मध्यान्ह कालीन चतुर्थी का विचार करना चाहिये। इससे अतिरिक्त अन्यत्र पंचमी विद्धा स्वीकार की गयी है।

एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका।
उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः।।

इस श्लोक को कहते हुये वृद्ध वसिष्ठ ने कहा है कि एकादशी, षष्ठी, अमावास्या, एवं चतुर्थी पर नक्षत्र से संयुक्त हो तो उपोष्य होती है।

पंचमी का निर्णय करते हुये कहा है कि -

श्रावणे पंचमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपंचमी।
तां परित्यज्य पंचम्यश्चतुर्थी सहिता हिताः।

मदन रत्न में उदाहृत वचनों के अनुसार नागपंचमी को छोड़कर अन्य सारी पंचमियां चतुर्थी सहित शुभ मानी गयी है। आचार्य जाबालि ने कहा है कि पंचमी उपवास में पूर्व विद्धा एवं अन्य कार्यों में पर विद्धा स्वीकार करनी चाहिये। यह भी वचन मिलता है कि पंचमी को कृष्ण पक्ष में पूर्वविद्धा तथा शुक्लपक्ष में परविद्धा स्वीकार करना चाहिये।

षष्ठी निर्णय करते हुये सा च षण्मुन्योरिति वाक्य के अनुसार मुनि का मतलब सप्तमी बतलाया गया है। अर्थात् षष्ठी पर विद्धा स्वीकार की जानी चाहिये लेकिन स्कन्द व्रत में पूर्वविद्धा स्वीकार किया गया है। इसका मतलब स्कन्द व्रत को छोड़कर अन्य षष्ठी के व्रत पर विद्धा स्वीकार किये जाते हैं। शिवरहस्य नामक ग्रन्थ का वचन है कि-

नागविद्धा च या षष्ठी शिवविद्धा च सप्तमी।

दशम्येकादशी विद्धा नोपोष्याः स्युः कदाचनः।।

अर्थात् नागविद्धा यानी पंचमी विद्धा षष्ठी, शिवविद्धा यानी अष्टमी विद्धा सप्तमी, दशमी विद्धा एकादशी में उपवास नही करना चाहिये।

सप्तमी का निर्णय करते हुये ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कहा गया है कि

सप्तमी नाष्टमी युक्ता न सप्तम्या युताष्टमी

अर्थात् सप्तमी युता अष्टमी एवं अष्टमी युता सप्तमी नही करना चाहिये। स्कन्द पुराण में कहा गया है कि-

षष्ठ्येकादशी अमावास्या पूर्वविद्धा तथाष्टमी।

सप्तमी पर विद्धा च नोपोष्यं तिथिपंचकम्।

अर्थात् षष्ठी, एकादशी, अमावास्या, अष्टमी पूर्वविद्धा एवं सप्तमी पर विद्धा नही स्वीकार करना चाहिये।

अष्टमी तिथि का निर्णय करते हुये बतलाया गया है कि सा च शुक्लोतरा कृष्णा पूर्वा। यानी शुक्लपक्ष की अष्टमी को उत्तरा यानी परविद्धा और कृष्णपक्ष की अष्टमी को पूर्वविद्धा स्वीकार करना चाहिये। शिवशक्ति महोत्सव में दोनों ही पक्षों की अष्टमी जब नवमी से सुयुक्त हो तो करना चाहिये।

नवमी तिथि का निर्णय करते हुये कहा गया है कि सा अष्टमी विद्धैव ग्राह्या। अर्थात् अष्टमी विद्धा नवमी करना चाहिये।

अष्टम्या नवमी विद्धा कर्तव्या फलकांक्षिभिः।

न कुर्यान्नवमी ताता दशम्या तु कदाचन।।

अर्थात् अष्टमी से नवमी बेध हो तो नवमी करना चाहिये। दशमी बेध वाली नवमी नही करना चाहिये। ब्रह्मवैवर्त्त में इसे दिशा विद्धा कहकर समझाया गया है।

दशमी निर्णय करते हुये कहा गया है कि सा चोपवासादिषु नवमी युक्तैव ग्राह्या अर्थात् उपवासादि में नवमी युता दशमी ही स्वीकार करना चाहिये। आचार्य पैठिनसि ने कहा है कि-

पंचमी सप्तमी चैव दशमी च त्रयोदशी।

प्रतिपन्नवमी चैव कर्तव्या संम्मुखी तिथि।।

सम्मुखी तिथि अर्थात् पूर्वयुतातिथि स्वीकार करनी चाहिये। दशमी तु प्रकर्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम ऐसा कहते हुए आचार्य आपस्तम्ब ने बतलाया कि दशमी तिथि दुर्गा यानी नवमी से संयुक्त हो तो ग्राह्य होती है।

एकादशी तिथि का निर्णय करते हुये बतलाया गया है कि एकादशी द्वादशी उभयोरप्याधिक्ये सर्वैरेव परोपोष्या अर्थात् एकादशी एवं द्वादशी परतिथि से संयुक्त हो तो उपवास योग्य होती है। स्मृतिकार माधव जी का वचन है कि

एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्धते यदि।
तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्त्तैर्ग्राह्यं परं दिनम्।।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि एकादशी एवं द्वादशी परदिन से संयुक्त हो तो स्मार्तों के लिये स्वीकार्य है।

त्रयोदशी का निर्णय करते हुये आचार्य माधव ने बतलाय है कि त्रयोदशी शुक्लपक्षे पूर्वविद्धा कृष्णपक्षे परविद्धा ग्राह्या। शुक्ला त्रयोदशी पूर्वा परा कृष्णा त्रयोदशी। अर्थात् शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को पूर्वविद्धा एवं कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को परविद्धा स्वीकार करना चाहिये।

चतुर्दशी के निर्णय में निगमवचन इस प्रकार मिलता है-

शुक्लेपक्षे अष्टमी चैव शुक्ले पक्षे चतुर्दशी। परविद्धा प्रकर्तव्या पूर्वविद्धा न कुत्रचित्।
कृष्णे पक्षे अष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या परविद्धा न कुत्रचित्।।

शुक्लपक्ष की अष्टमी एवं चतुर्दशी परविद्धा करनी चाहिये पूर्व विद्धा नही। कृष्ण पक्ष की अष्टमी एवं कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी पूर्वविद्धा करनी चाहिये पर विद्धा नही।

पूर्णिमा एवं अमावास्या के निर्णय में कहा गया है कि सावित्री व्रत को छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र परविद्धा स्वीकार करना चाहिये।अब आप तिथियों के निर्णय आसानी से कर पायेगें जिसके कारण आप किसी व्रत या उपवास में भ्रमित नही होगें। जिससे समस्त आध्यत्मिक फल व्यक्ति को प्राप्त हो सकेगा। अब इस पर कुछ प्रश्न इस प्रकार है।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-गण युक्ता में गण का अर्थ क्या है ?

क-तृतीया, ख-चतुर्थी, ग- पंचमी, घ- षष्ठी।

प्रश्न 2- मातृ विद्धा का अर्थ कौन सी तिथि हैं ?

क-तृतीया, ख-चतुर्थी, ग- पंचमी, घ- षष्ठी।

प्रश्न 3- नाग विद्धा क्या हैं ?

क-तृतीया, ख-चतुर्थी, ग- पंचमी, घ- षष्ठी।

प्रश्न 4- शिवविद्धा का अर्थ हैं ?

क-अष्टमी, ख-चतुर्थी, ग- पंचमी, घ- षष्ठी।

प्रश्न 5-दुर्गा तिथि क्या हैं ?

क-तृतीया, ख-चतुर्थी, ग- नवमी, घ- षष्ठी।

प्रश्न 6- दिशा विद्धा क्या है ?

क-तृतीया, ख-चतुर्थी, ग- पंचमी, घ-दशमी।

प्रश्न 7-मुनि का मतलब कौन तिथि हैं ?

क-तृतीया, ख-चतुर्थी, ग- पंचमी, घ- सप्तमी।

प्रश्न 8-पूर्व विद्धा का अर्थ है ?

क-पूर्व तिथि ख- परतिथि, ग- द्विस्वभाव तिथि, घ- मिश्रित।

प्रश्न 9-पर विद्धा अर्थ है ?

क-पूर्व तिथि, ख-पर तिथि , ग- द्विस्वभाव तिथि, घ- मिश्रित।

प्रश्न 10-सम्मुखी तिथि क्या है ?

क-पूर्वतथि ख- परतिथि , ग- द्विस्वभाव तिथि, घ- मिश्रित।

1.4.2 नक्षत्रों का वैशिष्ट्य

प्रत्येक नक्षत्रों के विविध नाम अधोलिखित प्रकार से दिये गये है-

अश्विनी- नासत्य, दस्र, आश्वयुक्, तुरग, वाजि, अश्व, हय।

भरणी- अन्तक, यम, कृतान्त।

कृत्तिका- अग्नि, वन्हि, अनल, कृशानु, दहन, पावक, हुतभुक्, हुताश।

रोहिणी- धाता, ब्रह्मा, कः, विधाता, द्रुहिण, विधि, विरंचि, प्रजापति।

मृगशिरा- शशभृत्, शशी, मृगांक, शशांक, विधु, हिमांशु, सुधांशु।

आर्द्रा- रुद्र, शिव, ईश, त्रिनेत्र।

पुनर्वसु- अदिति, आदित्य।

पुष्य-ईज्य, गुरु, तिष्य, देवपुरोहित।

आश्लेषा- सर्प, उरग, भुजग, भुजंग, अहि, भोगी।

मघा- पितृ, पितर।

पूर्वा फाल्गुनी- भग, योनि, भाग्य।

उत्तरा फाल्गुनी- अर्यमा।

हस्त- रवि, कर, सूर्य, ब्रध्न, अर्क, तरणि, तपन।

चित्रा- त्वष्टृ, त्वाष्टृ, तक्ष।

स्वाती- वायु, वात, अनिल, समीर, पवन, मारुत।

विशाखा- शक्राग्नि, इन्द्राग्नि, विषाग्नि, द्विष, राधा।

अनुराधा- मित्र।

ज्येष्ठा- इन्द्र, शक्र, वासव, आखण्डल, पुरन्दर।

मूल- निर्ऋति, रक्ष, अस्रप।

पूर्वाषाढ़ा- जल, नीर, उदक, अम्बु, तोय।

उत्तराषाढ़ा- विश्वे, विश्वेदेव।

श्रवण- गोविन्द, विष्णु, श्रुति, कर्ण, श्रवः।

धनिष्ठा- वसु, श्रविष्ठा।

शतभिषा-वरुण, अपांपति, नीरेश, जलेश।

पूर्वाभाद्रपदा- अजपाद, अजचरण, अजांघ्रि।

उत्तराभाद्रपदा- अहिर्बुध्न्य।

रेवती- पूषा, अन्त्य, पौष्ण।

इस प्रकार आपने नक्षत्रों के विविध नामों को देखा। इसके ज्ञान से किसी भी श्लोक में वर्णित किसी भी उपनाम को उसके मूल नाम से समझ सकेगें। इस पर कुछ प्रश्न दिये जा रहे हैं जो इस प्रकार है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-वसु किसका नाम है ?

क-श्रवण, ख-धनिष्ठा, ग-शतभिषा, घ- पूर्वाभाद्रपदा।

प्रश्न 2-वरुण किसका नाम है ?

क-श्रवण, ख-धनिष्ठा, ग-शतभिषा, घ- पूर्वाभाद्रपदा।

प्रश्न 3-अजचरण किसका नाम है ?

क-श्रवण, ख-धनिष्ठा, ग-शतभिषा, घ- पूर्वाभाद्रपदा।

प्रश्न 4-गोविन्द किसका नाम है ?

क-श्रवण, ख-धनिष्ठा, ग-शतभिषा, घ- पूर्वाभाद्रपदा।

प्रश्न 5-विश्वेदेव किसका नाम है ?

क-उत्तराषाढ़ा, ख-धनिष्ठा, ग-शतभिषा, घ- पूर्वाभाद्रपदा।

प्रश्न 6-जल किसका नाम है ?

क-श्रवण, ख-पूर्वाषाढ़ा, ग-शतभिषा, घ- पूर्वाभाद्रपदा।

प्रश्न 7-रक्ष किसका नाम है ?

क-श्रवण, ख-धनिष्ठा, ग-मूल, घ- पूर्वाभाद्रपदा।

प्रश्न 8 -वासव किसका नाम है ?

क-श्रवण, ख-धनिष्ठा, ग-शतभिषा, घ- ज्येष्ठा।

प्रश्न 9-मित्र किसका नाम है ?

क-अनुराधा, ख-धनिष्ठा, ग-शतभिषा, घ- पूर्वाभाद्रपदा।

प्रश्न 10-राधा किसका नाम है ?

क-श्रवण, ख-विशाखा, ग-शतभिषा, घ- पूर्वाभाद्रपदा।

1.5 सारांश

इस ईकाई में आपने तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण के बारे में जाना है। वस्तुतः किसी भी प्रकार ज्योतिषीय ज्ञान या व्रत, पर्व एवं उत्सवों के निर्णय हेतु इन बातों का ज्ञान अनिवार्य ही नही अपितु अपरिहार्य माना जाता है। तिथियों का संबंध हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण से है। तिथियों की संख्या पन्द्रह है जिनका नाम प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा या अमावास्या है। ये दोनो तिथियां शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की है। शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियों का नाम आता है। कृष्ण पक्ष में भी यही नाम होते है परन्तु पूर्णिमा नही होता इसके स्थान पर अमावास्या नाम की तिथि को स्वीकार किया गया है। अमावास्या के लिये पंचांग में 30 संख्या दी गयी होती है। पूर्णिमा के स्थान पर 15 लिखा गया होता है। तिथियों की क्षय एवं वृद्धि होती रहती है।

सूर्योदय के बाद किसी तिथि का प्रारंभ हो तथा दूसरे सूर्योदय के पहले अन्त हो जाय तो उसे क्षय तिथि के नाम से जाना जाता है। ठीक इसके विपरीत एक ही तिथि यदि दो सूर्योदय में पाई जाती है उसे तिथि वृद्धि कहते हैं। क्योकि एक ही तिथि दो दिवसों में हो जाती है। शुक्ल पक्ष में तिथियों की वृद्धि यानी उसमें चन्द्रमा की कलाओं की क्रमशः वृद्धि होती जाती है। यानी प्रतिपदा में एक कला, द्वितीया में दो कला, तृतीया में तीन कला, चतुर्थी में चार कला, पंचमी में पांच कला, षष्ठी में छ कला, सप्तमी में सात कला, अष्टमी में आठ कला, नवमी में नौ कला इत्यादि की वृद्धि होता जाती है। कृष्णपक्ष में इसी प्रकार चन्द्रमा की कलाओं में ह्रास पाया जाता है। जैसे प्रतिपदा में एक कला , द्वितीया में दो कला, तृतीया में तीन कला, चतुर्थी में चार कला, पंचमी में पांच कला, षष्ठी में छ कला, सप्तमी में सात कला, अष्टमी में आठ कला, नवमी में नौ कला इत्यादि की कमी होती जाती है।

प्रतिदिन कोई न कोई नक्षत्र अवश्य होती है। इन नक्षत्रों के आधार पर ही राशि नाम का निर्धारण किया जाता है। प्रत्येक नक्षत्र के चार पाद बतलाये गये हैं। जिस पाद में जातक का जन्म होता है उस पाद में निश्चित वर्ण को आधार मानकर राशि नाम का निर्धारण किया जाता है। अभिजित सहित कुल नक्षत्रों की संख्या अट्ठाईस मानी जाती है। अभिजित को छोड़कर कुल नक्षत्रों की संख्या सत्ताईस बतलायी गयी है। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा एवं रेवती के नाम से जाना जाता है।

दिनों को ही वारों के रूप में जाना जाता है जिन्हे क्रमशः सूर्यवार, सोमवार, भौमवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार एवं शनिवार के रूप में जाना जाता है। ज्योतिष में इन सातों वारों के नामों को ग्रहों से जोड़कर मुख्य ग्रह के रूप में सूर्यवार को रवि, सोमवार को चन्द्र, भौमवार को मंगल, बुधवार को बुध, बृहस्पतिवार को गुरु, शुक्रवार को शुक्र एवं शनिवार को शनि के रूप में जाना जाता है। सूर्य का वर्ण लाल, चन्द्रमा यानी सोम का वर्ण सफेद, भौम का वर्ण लाल, बुध का वर्ण हरा, गुरु का वर्ण पीला, शुक्र का वर्ण सफेद एवं शनि का वर्ण काला बतलाया गया है।

कुल सत्ताईस योग होते हैं जिन्हे क्रमशः विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतिपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र एवं वैधृति। इन योगों का प्रयोग संकल्पादि के अवसर पर किया

जाता है तथा शुभाशुभ विचार में भी इनका महत्त्व है। जन्म कुण्डली में योग का फल जानने हेतु इन्ही योगों का प्रयोग देखने को मिलता है।

एक तिथि में दो करण होते है। करण चर एवं स्थिर दो प्रकार के होते है। चर करण सात होते हैं जिन्हें बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि के नाम से जाना जाता है। इनका प्रारम्भ शुक्ल प्रतिपदा के उत्तरार्द्ध से होता है। और एक मास में इनकी आठ आवृत्तियां होती है। शकुनी, चतुष्पद, नाग तथा किंस्तुघ्न ये चार स्थिर करण है। इनका प्रारम्भ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध से होता है। अर्थात् चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध में शकुनी, अमावास्या के पूर्वार्ध में चतुष्पद, उत्तरार्ध में नाग तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न करण सदा नियत रहते हैं। इनकी स्थिर संज्ञा है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

विष्टि- भद्रा, शिव - कल्याण, पूर्वविद्धा- पूर्व तिथि से वेध होना, परविद्धा- बाद वाली तिथि से बेध होना, आवृत्ति- अभ्यास, चर- चलायमान, सर्व- सभी, पूर्वार्ध- पहले का आधा भाग, पूर्वान्ह- दिन के पूर्व का भाग, अपरान्ह- दोपहर के बाद का समय, सायान्ह- सायंकाल का समय, उत्तरार्ध- बाद वाला आधा भाग, शंख- देवपूजन में ध्वनि हेतु रखा जाने वाला मुह से बजाया जाने वाला एक प्रकार का वाद्य यन्त्र। उपोष्य- उपवास योग्य, गतर्क्ष- गत नक्षत्र, ख- शून्य, रस- छ, सूर्योदय- सूर्य का उदय काल, सूर्यास्त- सूर्य का अस्त होने का समय, अर्णव- समुद्र, सम्भव- उत्पन्न, गण- समूह, तुरग- अश्व, हस्त- हाथ, नाग- सर्प, यम- यमराज, आर्द्र- गीला, शुक्लपक्ष- प्रकाश पक्ष, कृष्णपक्ष- अंधकारपक्ष, रक्त- लाल, पीत- पीला, कृष्ण- काला, हरा-हरित, श्वेत- सफेद, भार्गव- शुक्र, अम्बु- जल, अम्बुज- कमल, सम- समान, अन्त्य नक्षत्र- रेवती, अन्तक- अन्त करने वाला, कृतान्त- कृत्य को करने वाले का अन्त, अनल- अग्नि, हुतभुक्- हवि का भोग लगाने वाला, हुताश- हुत का अशन करने वाला, धाता-धारण करने वाला, प्रजापति- प्रजा के स्वामी, देवपुरोहित- देवताओं के पुरोहित, उरग- सर्प, अदिति- पुनर्वसु, अहिर्बुध्न्य- सूर्य का नाम, अपांपाति- जल के स्वामी, नीरेश- नीर यानी जल के स्वामी, जलेश- जल के स्वामी, रक्ष- राक्षस, अर्क- सूर्य, सुधांशु- चन्द्रमा, विधु- चन्द्रमा, शक्राग्नि- इन्द्र एवं अग्नि, समीर- वायु, शशभृत्- चन्द्रमा, अजचरण- सूर्य का एक नाम, गोविन्द- विष्णु भगवान, वरुण- शतभिषा का स्वामी, कुज- मंगल, गज- हाथी, भ- नक्षत्र, लघु- थोड़ा, अम्बर- वस्त्र, ईज्य- पुष्य, अहि- सर्प, उर्ध्व- उपर, अधो- नीचे, सौम्य- बुध, जीव- गुरु, दैत्यगुरु- शुक्र, मन्द- शनि, उदक- जल, पुष्पसार- इत्र, कूर्म- कछुआ, सहस्र- हजार, पश्य- देखकर, वरद- वर देने वाले, भव- होवो, पथ- रास्ता, निर्वाण- मोक्ष, जापक- जप करने वाला, ।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

6.3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-क, 3-ख, 4-क, 5-ख, 6-ग, 7-क, 8-घ, 9-क, 10-ख, 11-ग।

6.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-क, 4-ग, 5-घ, 6-क, 7-ख, 8-ग, 9-घ, 10-ग।

6.3.3 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-क, 3-ख, 4-ख, 5-ख, 6-घ, 7-ख, 8-क, 9-ग, 10-घ।

6.3.4 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-ख, 2-ग, 3-क, 4-ख, 5-ग, 6-घ, 7-क, 8-क, 9-क , 10-क, 11-ग।

6.3.5 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-ख, 2-ख, 3-घ, 4-घ, 5-क, 6-क, 7-क, 8-ख, 9-ख, 10-ख, 11-ख।

6.4.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-ख, 2-क, 3-ग, 4-क, 5-ग, 6-घ, 7-घ 8-क, 9-ख, 10-क।

6.4.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-ख, 2-ग, 3-घ, 4-क, 5-क, 6-ख, 7-ग 8-घ, 9-क, 10-ख।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-मुहूर्त चिन्तामणिः।

2-भारतीय कुण्डली विज्ञान भग-1

3-शीघ्रबोध।

4-शान्ति- विधानम्।

5-आह्निक सूत्रावलिः।

6-उत्सर्ग मयूख।

7-विद्यापीठ पंचांग।

8- फलदीपिका

9- अवकहड़ा चक्र।

10- सर्व देव प्रतिष्ठा प्रकाशः।

11- संस्कार-भास्करः । वीणा टीका सहिता।

12- मनोभिलषितव्रतानुवर्णनम्- भारतीय व्रत एवं अनुष्ठान।

13- संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री-

1- स्मृति कौस्तुभः।

2- श्री काशी विश्वनाथ पंचांग।

3- जातकालंकार।

4- याज्ञवल्क्य स्मृतिः।

5- संस्कार- विधानम्।

1.10 निबंधात्मक प्रश्न-

1-तिथियों का परिचय दीजिये।

2- वारों का परिचय बतलाइये।

3- नक्षत्रों का परिचय दीजिये।

4- योगों का परिचय दीजिये।

5- करणों का परिचय दीजिये।

6- प्रतिपदा से पंचमी तक के तिथियों का निर्णय लिखिये।

7- पंचमी से दशमी तक के तिथियों का निर्णय लिखिये।

8- दशमी से पूर्णिमा तक के तिथियों के निर्णय को लिखिये।

9- नक्षत्रों के पर्यायवाची शब्दों को लिखिये।

10- वारों के पर्यायवाची शब्दों को लिखिये।

इकाई - 2 पंचांग का शुभाशुभ फल विचार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 पंचांग के शुभाशुभ स्वरूप

2.3.1 तिथियों के शुभाशुभ स्वरूप

2.3.2 तिथियों एवं वारों के संयोग से शुभ एवं अशुभ विचार

2.3.2 तिथियों एवं नक्षत्रों के संयोग से शुभ एवं अशुभ का विचार

2.3.4 तिथि, वार एवं नक्षत्रादि योगों द्वारा शुभ एवं अशुभ का विचार

2.4 शुभाशुभ योगों का विशेष विचार

2.4.1 वार एवं नक्षत्र के संयोग से सर्वार्थ सिद्धि योग का विचार

2.4.2 शुभाशुभ योग विचार का परिहार

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावलियॉं

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में पंचांग के शुभ एवं अशुभ फल संबंधी प्रविधियों का अध्ययन आप करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। पंचांग में पांच अंग मुख्यतया होते हैं जिन्हें हम तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण के रूप में जानते हैं। बिना इसके विचार किये वह दिन शुभ है या अशुभ है, इसका विचार आप नही कर सकते है। अतः इन तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करणादि से कैसे शुभ एवं अशुभ का विचार किया जाता है, इसका ज्ञान आपको इस इकाई के अध्ययन से हो जायेगा।

तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण यानी पंचांग के विचार के अभाव में किसी व्रत, किसी मुहूर्त्त, किसी उत्सव एवं किसी पर्व का ज्ञान किसी भी व्यक्ति को नही हो सकता है। क्योकि कोई भी व्रत करते है तो उसका आधार तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण ही होते हैं। किसी दिन किसी नवीन कार्य का आरम्भ करते हैं तो उस दिन पंचांग का विचार कर लेते हैं क्योकि शुभ मुहूर्त्त में आरम्भ किया गया कार्य शुभ फल प्रदान करने वाला होता है तथा अशुभ मुहूर्त्त में प्रारम्भ किया गया कार्य अशुभ फल देने वाला होता है। साधारण रूप से सभी लोग शुभ फल की अभिलाषा रखते हैं जिसके कारण पंचांग का शुभाशुभ ज्ञान सभी लोगों के लिये अनिवार्य है। इसी प्रकार वार का व्रत जैसे मंगलवार का व्रत करना हो तो यह जानना आवश्यक होगा किस मंगलवार से हम व्रत आरम्भ करें जिससे वह व्रत निर्विघ्नता पूर्वक सम्पादित किया जा सके। आदि-आदि। इस इकाई के अध्ययन से आप पंचांग यानी तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण इत्यादि के शुभ एवं अशुभ विचार करने की विधि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे विषय के अज्ञान संबंधी दोषों का निवारण हो सकेगा जिससे सामान्य जन भी अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगें। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों एवं महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायक होना, सामाजिक सहभागिता का विकास, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी बनाना आदि।

2.2 उद्देश्य

अब पंचांग के शुभ एवं अशुभ विचार की आवश्यकता को आप समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते है।

1. पंचांग ज्ञान को लोकोपकारक बनाना।
2. व्रत, पर्व, उत्सवों के निर्णयार्थ शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।
3. ज्येतिष में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।
4. प्राच्य विद्या की रक्षा करना।
5. लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।
6. समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

2.3 पंचांग के शुभाशुभ स्वरूप-

पंचांग में विद्वानों ने पांच अंगों का विचार किया है। पंचांग शब्द ज्योतिष एवं कर्मकाण्ड दोनों में आता है। कर्मकाण्ड का पंचांग अलग है जिसमें गणपति पूजन, कलशस्थापन, मातृका पूजन, नान्दी श्राद्ध एवं आचार्य वरण आता है। यहां हम ज्योतिष के पंचांग पूजन की बात कर रहे है। ज्योतिष के पंचांग में तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण इन पांच अंगों को बतलाया गया है। इन पांचों अंगों के आधार पर ही शुभ एवं अशुभ के बारे में विचार करते हैं। यहां हम उनके पृथक्- पृथक् स्वरूपों की चर्चा करेगें जिससे संबंधित विषय का ज्ञान प्रगाढ़ हो सकेगा।

2.3.1 तिथियों के शुभाशुभ स्वरूप

तिथि क्या है ? इस पर विचार करते हुये आचार्यों ने कहा है एक- चन्द्रकलावृद्धिक्षयान्यतरावच्छिन्नः कालः तिथिः। अर्थात् चन्द्रमा के एक-एक कला वृद्धि के अवच्छिन्न काल को तिथि कहा जाता है। इसके बारे में वृहद् ज्ञान आप इससे पूर्व के प्रकरण में प्राप्त कर चुके हैं। तिथियों की संख्या पन्द्रह है जिनका नाम प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा या अमावास्या है। ये दोनो तिथियां शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की है। इनके शुभ एवं अशुभ के बारे में यह वचन मिलता है-

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्यो अशुभमध्यशस्ता।
सिते असिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धा।। मुहूर्त्तचिन्तामणिः
शुभाशुभप्रकरण- 4

इस श्लोक के अनुसार तिथियों को पांच भागों में बांटा गया है जिन्हें नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता एवं पूर्णा के नाम से जाना जाता है। नन्दा में प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां, भद्रा में द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां, जया में तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथियां, रिक्ता में चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी

तिथियां तथा पूर्णा में पंचमी, दशमी एवं अमावास्या या पूर्णिमा तिथियां आती है। प्रत्येक पक्ष में ये नन्दादि तिथियां तीन बार आती है। उसी को व्यक्त करते हुये कहा गया है कि शुक्ल पक्ष में प्रथम नन्दा इत्यादि तिथियां अशुभ, द्वितीय नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य एवं तृतीय नन्दा इत्यादि तिथियां शुभ होती है। उसी प्रकार कृष्ण पक्ष में प्रथम नन्दा इत्यादि तिथियां शुभ, द्वितीय नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य एवं तृतीय नन्दा आदि तिथियां अशुभ होती है।

शुक्रवार को नन्दा तिथि यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी, बुधवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथि, भौमवार को जया यानी तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथि, शनिवार को रिक्ता यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथि तथा गुरुवार को पंचमी, दशमी, अमावास्या या पूर्णिमा तिथि सिद्ध योग प्रदान करती है अर्थात् इसमें कार्य का आरम्भ कार्य को सिद्धि दिलाने वाला होता है।

चन्द्रमा के पूर्ण या क्षीण होने से तिथियों में बलत्व या निर्बलत्व होता है। शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से पंचमी तक चन्द्रमा के क्षीण होने के कारण प्रथमावृति की नन्दा इत्यादि तिथियां अशुभ है। षष्ठी से दशमी तक चन्द्रमा के मध्य यानी न पूर्ण न क्षीण होने से द्वितीयावृति की नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य मानी जाती है। ठीक इसी प्रकार तृतीयावृति की नन्दादि तिथियां चन्द्रमा के पूर्ण होने के कारण शुभ कही गयी है।

इसके अध्ययन से तिथियों की संज्ञा एवं शुभ एवं अशुभत्व का विचार आप सम्यक् तरीके से जान गये होगें। इस ज्ञान को पुष्ट करने के लिये नीचे प्रश्न दिया जा रहा है जो इस प्रकार है-

अभ्यास प्रश्न - 1

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-नन्दा किसका नाम है ?

क-प्रतिपदा, ख-सप्तमी, ग-त्रयोदशी, घ- चतुर्दशी।

प्रश्न 2- भद्रा किसका नाम है ?

क-प्रतिपदा, ख-सप्तमी, ग-त्रयोदशी, घ- चतुर्दशी।

प्रश्न 3- जया किसका नाम है ?

क-प्रतिपदा, ख-सप्तमी, ग-त्रयोदशी, घ- चतुर्दशी।

प्रश्न 4-रिक्ता किसका नाम है ?

क-प्रतिपदा, ख-सप्तमी, ग-त्रयोदशी, घ- चतुर्दशी।

प्रश्न 5-पूर्णा किसका नाम है ?

क-प्रतिपदा, ख-पंचमी, ग-त्रयोदशी, घ- चतुर्दशी।

प्रश्न 6- शुक्रवार को कौन तिथि हो तो सिद्धा योग बनता है ?

क-नन्दा, ख-भद्रा, ग- जया, घ- रिक्ता।

प्रश्न 7- बुधवार को कौन तिथि हो तो सिद्धा योग बनता है ?

क-नन्दा, ख-भद्रा, ग- जया, घ- रिक्ता।

प्रश्न 8- भौमवार को कौन तिथि हो तो सिद्धा योग बनता है ?

क-नन्दा, ख-भद्रा, ग- जया, घ- रिक्ता।

प्रश्न 9- शनिवार को कौन तिथि हो तो सिद्धा योग बनता है ?

क-नन्दा, ख-भद्रा, ग- जया, घ- रिक्ता।

प्रश्न 10- गुरूवार को कौन तिथि हो तो सिद्धा योग बनता है ?

क-नन्दा, ख-भद्रा, ग- पूर्णा, घ- रिक्ता।

2.3.2 तिथियों एवं वारों के संयोग से शुभ एवं अशुभ विचार-

अब हम रवि इत्यादि वारों, तिथियों एवं नक्षत्रों के संयोग से शुभ एवं अशुभ कालों का विचार इस प्रकार करेगें। अधोलिखित श्लोक को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये।

नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा चैव पूर्णा मृतार्कात्।

याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवं धनिष्ठार्यम्णं ज्येष्ठान्त्यं रवेर्दग्धभं स्यात्।। मुहूर्त्तचिन्तामणिः

शुभाशुभप्रकरणम्- 5

अर्थात् सूर्य आदि वारों में क्रम से नन्दा, भद्रा, नन्दा, जया, रिक्ता, भद्रा और पूर्णा तिथियां पड़ जाये तो अधम योग होता है। इसका मतलब रविवार को नन्दा यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां हो, सोमवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां हो, भौमवार को नन्दा यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां हो, बुधवार को जया यानी तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथियां हों, गुरुवार को रिक्ता यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियां हों, शुक्रवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां हो और शनिवार को पूर्णा यानी पंचमी, दशमी एवं अमावास्या या पूर्णिमा तिथियां आती हो तो मृत योग बन जाता है।

इसी प्रकार सूर्यादि वारों में क्रमशः भरणी आदि नक्षत्र हो अर्थात् रविवार को भरणी, सोमवार को चित्रा, मंगलवार को उत्तराषाढ़ा, बुधवार को धनिष्ठा, बृहस्पतिवार को उत्तराफाल्गुनि, शुक्रवार को ज्येष्ठा और शनिवार को रेवती आ जाय तो दग्ध योग होता है। ये दोनों मृत्यु योग एवं दग्ध योग यात्रा में अत्यन्त निन्दित है। अन्य शुभ कार्य भी इनमें न किये जाय तो उत्तम होता है।

तिथियों और वारों से संबंधित शुभाशुभत्व पर विचार करते हुये ग्रन्थकार ने एक विचार और दिया है जिसका वर्णन मै यहां अत्यन्त उचित समझता हूँ जो इस प्रकार है।

षष्ठ्यादितिथयो मन्दाद्विलोमं प्रतिपद् बुधे ।
सप्तम्यर्के धमाः षष्ठ्याद्यामाश्च रदधावने।।

इस श्लोक की व्याख्या करते हुये बतलाया गया है कि षष्ठी आदि क्रम से तिथियों और शनि आदि उलटे वारों के योग से क्रकच नामक अधम योग होता है। जैसे शनिवार को षष्ठी, शुक्रवार को सप्तमी, गुरुवार को अष्टमी, बुधवार को नवमी, भौमवार को दशमी, सोमवार को एकादशी और रविवार को द्वादशी हो जाय तो क्रकच नाम का कुयोग होता है। यह कुयोग दिन एवं तिथि के संयोग से तेरह बनने के कारण हो रहा है। जैसे शनिवार का मतलब सात एवं षष्ठी तिथि का मतलब छ, दोनों को जोड़ने से तेरह हो रहा है जिसके कारण क्रकच नामक योग बन रहा है। एक और उदाहरण समझ लेने से यह बात पूरी तरह दिमाग में बैठ जायेगी जैसे भौमवार और दशमी, इसमें भौमवार की संख्या तीन है, दशमी की दश संख्या को इसमें जोड़ने से तेरह हो रहा है जिसके कारण यह योग लग रहा है।

इसके साथ ही ज्यौतिष शास्त्र में यह बतलाया गया है कि बुधवार को प्रतिपदा तथा रविवार को सप्तमी हो तो संवर्तक नाम का कुयोग होता है। इसे शुभ नही माना गया है।

इसके अलावा दग्धादि योगों की चर्चा करते हुये बतलाया गया है कि-

सूर्येशपंचाग्निरसाष्टनन्दा वेदांगसप्ताश्विगजांकशैलाः।
सूर्यांगसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्च हुताशनश्च।
सूर्यादिवारे तिथयोभवन्ति मघाविशाखाशिवमूलवन्हिः।
ब्राह्मं करोर्काद्यमघण्टकाश्च शुभे विवजर्या गमने त्ववश्यम्।।

अर्थात् रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगलवार को पंचमी, बुधवार को तृतीया, बृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी एवं शनिवार को नवमी पड़ जाय तो दग्ध योग होता है।

रविवार को चतुर्थी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को द्वितीया, बृहस्पतिवार को अष्टमी, शुक्रवार को नवमी एवं शनिवार को सप्तमी पड़ जाय तो विष नामक योग होता है।

रविवार को द्वादशी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को अष्टमी, बृहस्पतिवार को नवमी, शुक्रवार को दशमी एवं शनिवार को एकादशी पड़ जाय तो हुताशन योग होता है।

रविवार को मघा, सोमवार को विशाखा, मंगलवार को आर्द्रा, बुधवार को मूल, बृहस्पतिवार को कृत्तिका, शुक्रवार को रोहिणी एवं शनिवार को हस्त नक्षत्र आ जाय तो यमघण्ट नामक योग होता है।

उक्त चारों योग समस्त शुभ कार्यों में वर्जित बतलाये गये है। विशेष कर यात्रा में तो अवश्य ही त्याज्य है।

इसमें आपने तिथियों, वारों एवं नक्षत्रों के संयोग से अशुभ योगों के बारे में जाना। इसको छोड़कर

अन्यत्र शुभ होता है। अतः इस पर कुछ प्रश्न दिये जा रहे हैं जिसका हल आपके ज्ञान को अभिवर्द्धित करेगा।

अभ्यास प्रश्न – 2

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- शनिवार को क्रकच योग बनता है ?
क-षष्ठी, ख-सप्तमी, ग-अष्टमी, घ- नवमी।

प्रश्न 2- शुक्रवार को क्रकच योग बनता है ?
क-षष्ठी, ख-सप्तमी, ग-अष्टमी, घ- नवमी।

प्रश्न 3- गुरुवार को क्रकच योग बनता है ?
क-षष्ठी, ख-सप्तमी, ग-अष्टमी, घ- नवमी।

प्रश्न 4- बुधवार को क्रकच योग बनता है ?
क-षष्ठी, ख-सप्तमी, ग-अष्टमी, घ- नवमी।

प्रश्न 5- भौमवार को क्रकच योग बनता है ?
क-षष्ठी, ख-दशमी, ग-अष्टमी, घ- नवमी।

प्रश्न 6- सोमवार को क्रकच योग बनता है ?
क-षष्ठी, ख-सप्तमी, ग-अष्टमी, घ- एकादशी।

प्रश्न 7- रविवार को क्रकच योग बनता है ?
क-षष्ठी, ख-सप्तमी, ग-अष्टमी, घ- द्वादशी।

प्रश्न 8- शनिवार को कौन तिथि हो तो दग्ध योग बनता है ?
क-षष्ठी, ख-सप्तमी, ग-अष्टमी, घ- नवमी।

प्रश्न 9- शनिवार को कौन तिथि हो तो विष योग बनता है ?
क-षष्ठी, ख-सप्तमी, ग-अष्टमी, घ- नवमी।

प्रश्न 10- शनिवार को कौन तिथि हो तो हुताशन योग बनता है ?
क-षष्ठी, ख-सप्तमी, ग-अष्टमी, घ- एकादशी।

2.3.3 तिथियों एवं नक्षत्रों के संयोग से शुभ एवं अशुभ का विचार

तिथियों एवं नक्षत्रों के मिलन शुभ एवं अशुभ का विचार हम इस प्रकार करते है-

तथा निन्द्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिमे।

अनुराधा तृतीयायां पंचम्यां पित्र्यभं तथा।

त्र्युत्तराश्च तृतीयायामेकादश्यां च रोहिणी।

स्वाती चित्रे त्र्योदश्यां सप्तम्यां हस्तराक्षसे।

नवम्यां कृतिकाष्टाम्यां पूभा षष्ठ्यां च रोहिणी।।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि द्वादशी तिथि में आश्लेषा, प्रतिपदा तिथि में उत्तराषाढ़ा, द्वितीया तिथि में अनुराधा, पंचमी मे मघा, तृतीया में तीनों उत्तरा यानी उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, एकादशी में रोहिणी, त्रयोदशी में स्वाती और चित्रा, सप्तमी में हस्त एवं मूल, नवमी में कृत्तिका, अष्टमी में पूर्वाभाद्रपदा और षष्ठी में रोहिणी पड़े तो निन्द्य योग होता है। इनमें शुभ कार्य करना वर्जित माना गया है।

नक्षत्रों का मासों से संबंध करके भी शुभ एवं अशुभ का विचार किया गया है-

कदास्त्रभे त्वाष्ट्रवायू विश्वेज्यौ भगवासवौ।

वैश्वस्त्रुति पाशिपौष्णे अजपादग्निपित्र्यभे।।

चित्राद्वीशौ शिवाश्व्यर्काः श्रुतिमूले यमेन्द्रभे।

चैत्रादिमासे शून्याख्यास्तारा वित्तविनाशदाः।।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि चैत्रमास में रोहिणी एवं अश्विनी नक्षत्र, वैशाख मास में चित्रा एवं स्वाती नक्षत्र, ज्येष्ठ मास में उत्तराषाढ़ा एवं पुष्य नक्षत्र, आषाढ़ में पूर्वाफाल्गुनि एवं धनिष्ठा नक्षत्र, श्रावण में उत्तराषाढ़ा एवं श्रवण नक्षत्र, भाद्रपद में शतभिषा एवं रेवती नक्षत्र, आश्विन में पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र, कार्तिक में कृत्तिका एवं मघा नक्षत्र, मार्गशीर्ष में चित्रा एवं विशाखा नक्षत्र, पौष में आर्द्रा एवं अश्विनी नक्षत्र, माघ मे श्रवण एवं मूल नक्षत्र, फाल्गुन में भरणी एवं ज्येष्ठा नक्षत्र मास शून्य नक्षत्र कहे गये हैं। इनमें शुभ कार्य करने से कर्ता के धन का नाश होता है।

इसी प्रकार राशियों के शून्यता का भी वर्णन मिलता है। यथा-

घटो झषो गौर्मिथुनं मेषकन्यालितौलिनः।

धनुः कर्को मृगः सिंहश्चैत्रादौ शून्यराशयः।।

अर्थात् चैत्र मास में कुम्भ, वैशाख में मीन, ज्येष्ठ में वृष, आषाढ़ में मिथुन, श्रावण में मेष, भाद्रपद में कन्या, आश्विन में वृश्चिक्, कार्तिक में तुला, मार्गशीर्ष में धनु, पौष में कर्क, माघ में मकर और फाल्गुन में सिंह ये राशियां शून्य मानी गयी है। इनमें शुभ कार्य करने से कर्ता के वंश और धन दोनों का विनाश होता है।

इसी प्रकार पंचांग में तिथियों एवं लग्नों के संयोग से भी शुभ एवं अशुभ का विचार इस प्रकार किया गया है-

पक्षादितस्त्वोजतिथौ घटैणौ मृगेन्द्रनक्रौ मिथुनांगने च।
चापेन्दुभे कर्कहरी हयान्त्यौ गोन्त्यौ च नेष्टे तिथिशून्यलग्ने।।

शुक्ल एवं कृष्ण दोनों पक्षों में प्रतिपदा से लेकर विषम तिथियों में क्रम से प्रतिपदा में तुला एवं मकर, तृतीया में सिंह और मकर, पंचमी में मिथुन और कन्या, सप्तमी में धनु एवं कर्क, नवमी में कर्क और सिंह, एकादशी में धनु और मीन, त्रयोदशी में वृष और मीन शून्य लग्न है। इनमें कोई शुभकार्य करना उचित नही है।

इसमें आपने तिथियों, वारों, मासों, लग्नों एवं नक्षत्रों के संयोग से अशुभ योगों के बारे में जाना। इसको छोड़कर अन्यत्र शुभ होता है। अतः इस पर कुछ प्रश्न दिये जा रहे हैं जिसका हल आपके ज्ञान को अभिवर्द्धित करेगा।

अभ्यास प्रश्न- 3

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- द्वादशी तिथि में कौन नक्षत्र त्याज्य है ?

क-आश्लेषा, ख- अनुराधा, ग-मघा, घ- तीनों उत्तरा।

प्रश्न 2- द्वितीया तिथि में कौन नक्षत्र त्याज्य है ?

क-आश्लेषा, ख- अनुराधा, ग-मघा, घ- तीनों उत्तरा।

प्रश्न 3- पंचमी तिथि में कौन नक्षत्र त्याज्य है ?

क-आश्लेषा, ख- अनुराधा, ग-मघा, घ- तीनों उत्तरा।

प्रश्न 4- तृतीया तिथि में कौन नक्षत्र त्याज्य है ?

क-आश्लेषा, ख- अनुराधा, ग-मघा, घ- तीनों उत्तरा।

प्रश्न 5- एकादशी तिथि में कौन नक्षत्र त्याज्य है ?

क-रोहिणी, ख- अनुराधा, ग-मघा, घ- तीनों उत्तरा।

प्रश्न 6- त्रयोदशी तिथि में कौन नक्षत्र त्याज्य है ?

क-आश्लेषा, ख- स्वाती, ग-मघा, घ- तीनों उत्तरा।

प्रश्न 7- सप्तमी तिथि में कौन नक्षत्र त्याज्य है ?

क-आश्लेषा, ख- अनुराधा, ग-हस्त, घ- तीनों उत्तरा।

प्रश्न 8- नवमी तिथि में कौन नक्षत्र त्याज्य है ?

क-आश्लेषा, ख- अनुराधा, ग-मघा, घ- कृत्तिका।

प्रश्न 9- अष्टमी तिथि में कौन नक्षत्र त्याज्य है ?

क-पूर्वाभाद्रपदा, ख- अनुराधा, ग-मघा, घ- तीनों उत्तरा।

प्रश्न 10- षष्ठी तिथि में कौन नक्षत्र त्याज्य है ?

क-आश्लेषा, ख- रोहिणी, ग-मघा, घ- तीनों उत्तरा।

2.3.4 तिथि, वार एवं नक्षत्रादि योगों द्वारा शुभ एवं अशुभ का विचार

इसमें तिथि, वारों एवं नक्षत्रों तीनों का संयोग पाया जाता है। इन तीनों के संयोगो के आधार पर अशुभ एवं शुभ फलों का विचार करते है-

वर्जयेत् सर्वकार्येषु हस्तार्कं पंचमी तिथौ।
भौमाश्विनीं च सप्तम्यां षष्ठ्यां चन्द्रैन्दवं तथा।
बुधानुराधामष्टम्यां दशम्यां भृगुरेवतीम्।
नवम्यां गुरुपुष्यं चैकादशम्यां शनिरोहिणीम्।।

इसके अर्थ का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि पंचमी तिथि में रविवार और हस्त नक्षत्र हो, सप्तमी तिथि में भौमवार और अश्विनी नक्षत्र हो, षष्ठी में सोमवार एवं मृगशिरा नक्षत्र हो, अष्टमी में बुधवार और अनुराधा नक्षत्र हो, दशमी में शुक्रवार एवं रेवती नक्षत्र हो, नवमी में गुरुवार एवं पुष्य नक्षत्र हो और एकादशी में शनिवार एवं रोहिणी नक्षत्र हो तो इन्हें समस्त शुभ कार्यो में त्याग कर देना चाहिये।

यद्पि यहॉं नक्षत्र एवं वार के योग से शुभ योग होते है, तथापि तिथियों के योग से निषिद्ध योग हो जाता है। इसी को मधुसर्पिष योग भी कहते है। महर्षि वसिष्ठ ने दूसरे प्रकार का मधु सर्पिष् योग कहा है जिसको हालाहल योग भी कहा गया है।

नक्षत्रों एवं वारों के योग से कुछ विशिष्ट कार्यों को करने के लिये विवर्जित किया गया है जो इस प्रकार है-

गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथाक्रमम्।
भौमाश्विनीं शनौ ब्राह्मं गुरौ पुष्यं विवर्जयेत्।

यहॉं पर जिन योगों की चर्चा की गयी हैं वे योग सिद्ध योग बनाते है लेकिन कुछ विशेष कार्य हेतु इन योगों को वर्जित किया गया है। गृह प्रवेश में भौमवार एवं अश्विनी नक्षत्र का संयोग त्याग देना चाहिये। यात्रा में शनिवार एवं रोहिणी नक्षत्र के संयोग को त्याग देना चाहिये। विवाह में गुरुवार एवं पुष्य नक्षत्र के संयोग को त्याग देना चाहिये।

विशेष- भौमाश्विनी, शनिरोहिणी और गुरुपुष्य ये तीनो सिद्धि है। तथापि गृहप्रवेश में भौमवार निषिद्ध है, अश्विनी नक्षत्र भी विहित नही है। अतः सिद्ध योग होते हुये भी गृहप्रवेश में त्याज्य है। वसिष्ठ एवं राजमार्तण्ड के अनुसार यात्रा में शनिवार निन्द्य माना गया है। अतः रोहिणी के योग से सिद्ध योग होते हुये भी यात्रा में त्याज्य है। गुरुपुष्य योग कामुकता का वर्धक होने से विवाह में निषिद्ध माना गया है।

सभी प्रकार के कार्यों में अधोलिखित योगों को त्याज्य माना है-

जन्मर्क्षमासतिथयोव्यतिपातभद्रा वैधृत्यमापितृदिनानितिथिक्षयर्द्धी।
न्यूनाधिमासकुलिकप्रहरार्द्धपातविष्कम्भवज्रघटिकात्रयमेववर्ज्यम्।
परिधार्द्धं पंच शूले षट् च गण्डातिगण्डयोः
व्याघाते नवनाड्यश्च वर्ज्याः सर्वेषु कर्मसु।।

अर्थात् जन्म नक्षत्र, जन्म मास, जन्म तिथि, व्यतिपात, भद्रा, वैधृति, अमावास्या, पितृ घात दिन, तिथि का क्षय दिन, तिथि वृद्धि वाला दिन, न्यून मास, अधिक मास, कुलिक योग, अर्द्धयाम, पात, विष्कम्भ योग और वज्र योग की तीन घटी, परिघ योग का आधा, शूलयोग की पॉच घटी, गण्ड एवं अतिगण्ड योग की छः छः घटी एवं व्याघात योग की नव घटी सभी प्रकार के शुभ कार्यों हेतु वर्जित की गयी है।

विशेष- जन्म नक्षत्र एवं जन्म मास उपनयन में शुभ होता है।

दूसरे दूसरे गर्भ से उत्पन्न बालक बालिकाओं का विवाह उत्तम है।

नारद संहिता के अनुसार पट्टबन्धन, मुण्डन, अन्नप्राशन, व्रतबन्ध इन कार्यों में जन्मर्क्ष शुभ माना गया है। बहुत से कार्यो में जन्म की तारा शुभ कही गयी है।

इस प्रकार आपने तिथियों, वारों, मासों, लग्नों एवं नक्षत्रों के संयोग से शुभ एवं अशुभ योगों के बारे में जाना। इसको छोड़कर अन्यत्र शुभ होता है। अतः इस पर कुछ प्रश्न दिये जा रहे हैं जिसका हल आपके ज्ञान को अभिवर्द्धित करेगा।

अभ्यास प्रश्न - 4

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- पंचमी तिथि में क्या त्याज्य है ?

क- हस्तार्क, ख- भौमाश्विनी, ग- इन्द्रेन्दवम्, घ- बुधानुराधा।

प्रश्न 2- सप्तमी तिथि में क्या त्याज्य है ?०

क- हस्तार्क, ख- भौमाश्विनी, ग- इन्द्रेन्दवम्, घ- बुधानुराधा।

प्रश्न 3- षष्ठी तिथि में क्या त्याज्य है ?

क- हस्तार्क, ख- भौमाश्विनी, ग- इन्द्रेन्दवम्, घ- बुधानुराधा।

प्रश्न 4- अष्टमी तिथि में क्या त्याज्य है ?

क- हस्तार्क, ख- भौमाश्विनी, ग- इन्द्रेन्दवम्, घ- बुधानुराधा।

प्रश्न 5- दशमी तिथि में क्या त्याज्य है ?

क- भृगुरेवती, ख- भौमाश्विनी, ग- इन्द्रेन्दवम्, घ- बुधानुराधा।

प्रश्न 6- नवमी तिथि में क्या त्याज्य है ?

क- हस्तार्क, ख- भौमाश्विनी, ग- गुरुपुष्य, घ- बुधानुराधा।

प्रश्न 7- एकादशी तिथि में क्या त्याज्य है ?

क- हस्तार्क, ख- भौमाश्विनी, ग- शनिरोहिणी, घ- बुधानुराधा।

प्रश्न 8- गृहप्रवेश में क्या त्याज्य है ?

क- हस्तार्क, ख- भौमाश्विनी, ग- इन्द्रेन्दवम्, घ- बुधानुराधा।

प्रश्न 9- यात्रा में क्या त्याज्य है ?

क- शनि रोहिणी, ख- भौमाश्विनी, ग- इन्द्रेन्दवम्, घ- बुधानुराधा।

प्रश्न 10 - विवाह में क्या त्याज्य है ?

क- हस्तार्क, ख- भौमाश्विनी, ग- गुरुपुष्य, घ- बुधानुराधा ।

2.4. शुभाशुभ योगों का विशेष विचार-

इस प्रकरण में पंचांग के अनुसार शुभ अशुभ फलों के विशेष विचार किये जायेगें। इसका ज्ञान शुभ अशुभ फलों के जानने हेतु अतयावश्यक बतलाया गया है।

2.4.1 वार एवं नक्षत्र के संयोग से सर्वार्थ सिद्धि योग का विचार-

सर्वाथसिद्धि योग एक ऐसा योग है जिसमें कार्य करने से सभी प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति होती है। आइये विचार करें कि सर्वार्थ सिद्धि योग कैसे बनता है। इस सन्दर्भ में अधोलिखित श्लोक मिलता है-

सूर्येर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रं चन्द्रे श्रुतिब्राह्मशशीज्यमैत्रम्।
भौमेश्व्यहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं ज्ञे ब्राह्ममैत्रार्ककृशानुचान्द्रम्।
जीवेन्त्यमैत्राश्व्यदितिज्यधिष्ण्यं शुक्रेन्त्यमैत्राश्व्यदितिश्रवोभम्।
शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि पूर्वैः।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि रविवार को अर्क यानी हस्त नक्षत्र, मूल नक्षत्र, उत्तर यानी उत्तराफाल्गुनि, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य और अश्विनी ये सात नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

सोमवार को श्रुति यानी श्रवण, ब्राह्म यानी रोहिणी, शशी यानी मृगशिरा, इज्य यानी पुष्य, और मैत्र यानी अनुराधा ये पॉच नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

मंगलवार को अश्व यानी अश्विनी, अहिर्बुध्न्य यानी उत्तराभाद्रपदा, कृशानु यानी कृत्तिका तथा सार्पं यानी आश्लेषा ये चार नक्षत्र मिल जाय तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

बुधवार को ब्राह्म यानी रोहिणी, मैत्र यानी अनुराधा, अर्क यानी हस्त, कृशानु अर्थात् कृत्तिका, और चान्द्रं यानी मृगशिरा ये पॉच नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग बनता है।

बृहस्पतिवार को अन्त्य यानी रेवती, मैत्र यानी अनुराधा, अश्व यानी अश्विनी, अदिति यानी पुनर्वसु, इज्य यानी पुष्य, धिष्ण्य यानी नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

शुक्रवार को अन्त्य यानी रेवती, मैत्र यानी अनुराधा, अश्व अर्थात् अश्विनी, अदिति यानी पुनर्वसु, और श्रव यानी श्रवण नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग बनता है।

शनिवार को श्रुति यानी श्रवण, ब्राह्म यानी रोहिणी, समीर यानी स्वाती, भानि अर्थात् नक्षत्राणि अर्थात् ये नक्षत्र पाये जाते हों तो उस दिन सर्वार्थ सिद्धि योग बन रहा है ऐसा कहा जा सकता है।

इसी प्रकार उत्पात, मृत्यु, काण एवं सिद्ध योग का विचार इस प्रकार किया गया है-

द्वीशात्तोयाद्वासवात्पौष्णभाच्च ब्राह्मात्पुष्यादर्यमर्क्षाद्युगर्क्षैः।

स्यादुत्पातो मृत्यु काणौ च सिद्धिर्वारेर्काद्ये तत्फलं नामतुल्यम्।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि अर्काद्ये यानी सूर्यवार को विशाखा नक्षत्र से चार - चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी रविवार को विशाखा नक्षत्र हो तो उत्पात योग, अनुराधा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो काण योग एवं मूल नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते हैं।

सोमवार को तृतीया यानी पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी सोमवार को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हो तो उत्पात योग, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, अभिजित् नक्षत्र हो तो काण योग एवं श्रवण नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

मंगलवार को धनिष्ठा नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये हैं। यानी मंगलवार को धनिष्ठा नक्षत्र हो तो उत्पात योग, शतभिषा नक्षत्र हो तो मृत्यु

योग, पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र हो तो काण योग एवं उत्तराभाद्रपद नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

बुधवार को रेवती नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये हैं। यानी बुधवार को रेवती नक्षत्र हो तो उत्पात योग, अश्विनी नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, भरणी नक्षत्र हो तो काण योग एवं कृत्तिका नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

वृहस्पतिवार को रोहिणी नक्षत्र से चार- चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी गुरुवार को रोहिणी नक्षत्र हो तो उत्पात योग, मृगशिरा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, आर्द्रा नक्षत्र हो तो काण योग एवं पुनर्वसु नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

शुक्रवार को पुष्य नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी शुक्रवार को पुष्य नक्षत्र हो तो उत्पात योग, आश्लेषा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, मघा नक्षत्र हो तो काण योग एवं पूर्वा फाल्गुनि नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते हैं।

शनिवार को उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र से चार- चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी शनिवार को उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र हो तो उत्पात योग, हस्त नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, चित्रा नक्षत्र हो तो काण योग एवं स्वाती नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

इस प्रकार आपने तिथियों, वारों, एवं नक्षत्रों के संयोग से सर्वार्थ सिद्धि योग, उत्पात योग, मृत्यु योग, काण योग एवं सिद्ध योगों के बारे में जाना। अतः इस पर कुछ प्रश्न दिये जा रहे हैं जिसका हल आपके ज्ञान को अभिवर्द्धित करेगा।

अभ्यास प्रश्न- 5

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- सर्वार्थसिद्धि योग हेतु रविवार को कौन सी नक्षत्र ग्राह्य है ?

क- हस्त, ख- रोहिणी, ग- कृत्तिका, घ- मृगशिरा।

प्रश्न 2- सर्वार्थसिद्धि योग हेतु सोमवार को कौन सी नक्षत्र ग्राह्य है ?

क- हस्त, ख- रोहिणी, ग- कृत्तिका, घ- मृगशिरा।

प्रश्न 3- सर्वार्थसिद्धि योग हेतु मंगलवार को कौन सी नक्षत्र ग्राह्य है ?

क- हस्त, ख- रोहिणी, ग- कृत्तिका, घ- मृगशिरा।

प्रश्न 4- सर्वार्थसिद्धि योग हेतु बुधवार को कौन सी नक्षत्र ग्राह्य है ?

क- हस्त, ख- रोहिणी, ग- कृत्तिका, घ- मृगशिरा।

प्रश्न 5- सर्वार्थसिद्धि योग हेतु गुरुवार को कौन सी नक्षत्र ग्राह्य है ?

क- रेवती, ख- रोहिणी, ग- कृत्तिका, घ- मृगशिरा।

प्रश्न 6- सर्वार्थसिद्धि योग हेतु शुक्रवार को कौन सी नक्षत्र ग्राह्य है ?

क- हस्त, ख- अनुराधा, ग- कृत्तिका, घ- मृगशिरा।

प्रश्न 7- सर्वार्थसिद्धि योग हेतु शनिवार को कौन सी नक्षत्र ग्राह्य है ?

क- हस्त, ख- रोहिणी, ग- स्वाती, घ- मृगशिरा।

प्रश्न 8- उत्पात योग हेतु रविवार को कौन सी नक्षत्र ग्राह्य है ?

क- हस्त, ख- रोहिणी, ग- कृत्तिका, घ- विशाखा।

प्रश्न 9- काण योग हेतु सोमववार को कौन सी नक्षत्र ग्राह्य है ?

क- हस्त, ख- रोहिणी, ग- कृत्तिका, घ-अभिजित्।

प्रश्न 10- सिद्धि योग हेतु बुधवार को कौन सी नक्षत्र ग्राह्य है ?

क- हस्त, ख- रोहिणी, ग- कृत्तिका, घ- मृगशिरा।

2.4.2 शुभाशुभ योग विचार का परिहार-

अभी तक आपने विभिन्न प्रकार के शुभ एवं अशुभ विचार के नियमों को जाना। लेकिन इन नियमों के परिहार के ज्ञान के अभाव में शुभाशुभ का ज्ञान सम्यक् प्रकार से नही हो पाता है इसलिये यहॉ सन्दर्भित विषय पर परिहार का लेखन किया जा रहा है। आशा ही नही अपितु विश्वास है कि यह ज्ञान आपके लिये गुणकारी सिद्ध होगा।

दुष्ट योगों का परिहार

तिथयो मासशून्यश्च शून्यलग्नानि यान्यपि।
मध्यदेशे विवर्ज्यानि न दूष्याणीतरेषु च।
पंग्वंधकाणलग्नानि मासशून्याश्च राशयः।
गौडमालवयोः त्याज्या अन्यदेशे न गर्हिता।।

इसका अर्थ यह हुआ कि मास में शून्य तिथियां तथा शून्य लग्न मध्यदेश में ही त्याज्य है, अन्य देशों में दूषित नही है। शून्य लग्न का विचार 2.3.3 में पक्षादितस्त्वोजतिथौ घटैणौ में किया गया है।

इसका विचार मध्य देश में ही करना चाहिये। इस सन्दर्भ में आचार्य मनु ने कहा है कि- हिमवद् विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विशननादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।। अर्थात् हिमवान् और विन्ध्याचल के बीच सरस्वती नदी से पूर्व प्रयाग से पश्चिम, इनके भूभाग को मनु ने मध्य देश कहा है। आधुनिक मध्यप्रदेश इससे भिन्न है। इसके साथ ही पंगु, अन्ध एवं काण लग्न और मास में शून्य राशियां गौड़ एवं मालव देश में ही वर्जित है।

कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः ।
हूण-बंग-खशेष्वेव वजर्यास्त्रितयजास्तथा ।।

इसका अर्थ बतलाते हुये कहा गया है कि तिथि और वार से उत्पन्न कुयोग जो नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या...इस श्लोक में वर्णित जैसे मृत्यु योग है। षष्ठ्यादि में वर्णित क्रकच योग, सूर्येश पंचाग्नि में वर्णित दग्ध, विष और हुताशन योग, तिथि और नक्षत्र से उत्पन्न कुयोग जो तथा निन्द्यं शुभे सार्पं में दिया गया है, नक्षत्र एवं वार से उत्पन्न कुयोग जो याम्यं त्वाष्ट्रं आदि दग्ध योग के बारे में दिया गया है वह, यमघण्ट योग, आननदादि योगों में कालदण्ड, मृत्यु उत्पातादि और तिथि, वार एवं नक्षत्र तीनों से उत्पन्न कुयोग इत्यादि को हूण, बंग एवं खशदेशों में वर्जित किया गया है अन्य देशों में नही।

हूण जाति के लोग पूर्व काल में चीन की पूर्वी सीमा पर लूट पाट करते थे। वहां से प्रबल अवरोध होने पर तुर्कीस्तान पर अधिकार कर लिया और वक्षु नद के किनारे आ बसे। फिर कालिदास के समय में हूण लोग वक्षु नद के तट तक ही सीमित थे। रघुवंश में कालिदास ने हूणों का वर्णन वक्षु नद के तट पर ही किया है। बाद में फारस के सम्राट से हार कर भारत में घुसे और सीमान्त प्रदेश कपिसा गोधार पर अधिकार कर लिया। फिर मध्य देश की ओर चढ़ाई करने लगे और गुप्त सम्राटों से युद्ध करते हुये हूणों के प्रतापी राजा तोरमाण ने गुप्त साम्राज्य के पश्चिम भाग पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। इस प्रकार गांधार, काश्मीर, पंजाब, राजपुताना, मालवा, काठियावाड़ इनके शासन में आये। इनको हूण देश कहा जाता है।

मृत्युक्रकचदग्धादीनिन्दौ शस्ते शुभांजगुः।
केचिद्यामोत्तरंचान्ये यात्रायामेव निन्दितान्।।

चन्द्रमा के शुद्ध रहने पर मृत्यु, क्रकच एवं दग्ध आदि योग शुभ हो जाते है । और किसी अन्य आचार्य के मत में एक प्रहर के बाद ये योग शुभदायक होते है और किसी आचार्य के मत में सभी कुयोग यात्रा में ही निन्दित है, अन्य शुभ कार्यों में निन्द्य नही है।

अयोगे सुयोगोपि चेत् स्यात्तदानीमयोगं निहत्यैष सिद्धिं तनोति।
परे लग्नशुद्ध्या कुयोगादिनाशः दिनार्द्धोत्तरं विष्टिपूर्वं च शस्तम्।।

क्रकच आदि कुयोगों के रहते हुये उसी समय कोई अन्य सुयोग आ जावे तो वह सुयोग, कुयोग के अशुभ फलों को नष्ट करके अपने सुयोग का ही शुभ फल देता है। अन्य आचार्य गण कहते है कि

जिस कार्य के लिये जैसी लग्नशुद्धि कही गयी है वैसी लग्न शुद्धि रहने पर कुयोग के दुष्ट फल नष्ट हो जाते है। कुछ आचार्यों के मत से दिन के आधे भाग की भद्रा आदि कुयोगों का फल नष्ट हो जाता है। भद्रा के संबंध में कहा गया है कि शुक्लपक्ष में अष्टमी और पूर्णिमा के पूर्वार्ध में चौथ और एकादशी के उत्तरार्ध में भद्रा रहती है। कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के अन्त्यार्ध में और सप्तमी तथा चतुर्दशी के पूर्वार्ध में भद्रा रहती है।

भद्रा का वर्णन करते हुये बतलाया गया है कि जब चन्द्रमा कुम्भ, मीन, कर्क एवं सिंह राशि का हो, उसी समय भद्रा भी आ जाय तो भद्रा का निवास मृत्यु लोक में रहता है। मेष, वृष, मिथुन एवं वृश्चिक के चन्द्रमा में भद्रा का निवास स्वर्ग में रहता है। कन्या, मकर, तुला एवं धनु राशि के चन्द्रमा में भद्रा का निवास पाताल लोक में रहता है। भद्रा का निवास जिस लोक में रहता है उस लोक में उसका अशुभ फल होता है।

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेस्य।

कुर्याद्दिक्शूलादि चिन्त्यं क्षणेषु नैवोल्लंघ्यः परिघश्चापि दण्डः।।

जिस वार में जो कार्य करना शास्त्र में कहा गया है, वह वार वर्त्तमान समय में न हो और कार्य करना अत्यावश्यक हो तो वर्तमान निषिद्ध वार में भी विहित वार के काल होरा में उस कार्य को कर लेना चाहिये। जैसे किसी व्यक्ति ने शुक्रवार को ही श्मश्रुकर्म कराने का निश्चय किया है। आज भौमवार है और किसी कार्य के निमित्त आज ही श्मश्रु कर्म करा अत्यावश्यक है तो मंगल वार को शुक्र की होरा में श्मश्रु कर्म कर लेने में कोई दोष नही है।

इस प्रकार आपने शुभ अशुभ विचार के सन्दर्भ में विविध विषयों का अध्ययन किया । साथ ही विषम कालीन परिस्थितियों में परिहार पूर्वक किस प्रकार कार्य साधन हो सकेगा इसका यथा शास्त्रीय प्रमाण आपने देखा। आशा है आप शुभ एवं अशुभ काल का सही तरीके से विवेचन कर पायेगें। अब मैं इस पर आधारित कुछ प्रश्न आपके हल करने के लिये प्रदान कर रहा हूँ जो अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 6

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- जब चन्द्रमा मीन को हो तो भद्रा का निवास कहां पाया जाता है ?

क- स्वर्ग, ख- पाताल, ग- मृत्युलोक, घ- चन्द्रलोक में।

प्रश्न 2- जब चन्द्रमा वृष को हो तो भद्रा का निवास कहां पाया जाता है ?

क- स्वर्ग, ख- पाताल, ग- मृत्युलोक, घ- चन्द्रलोक में।

प्रश्न 3- जब चन्द्रमा मकर का हो तो भद्रा का निवास कहां पाया जाता है ?

क- स्वर्ग, ख- पाताल, ग- मृत्युलोक, घ- चन्द्रलोक में।

प्रश्न 4- जब चन्द्रमा कुम्भ का हो तो भद्रा का निवास कहां पाया जाता है ?

क- स्वर्ग, ख- पाताल, ग- मृत्युलोक, घ- चन्द्रलोक में।

प्रश्न 5- जब चन्द्रमा मेष को हो तो भद्रा का निवास कहां पाया जाता है ?

क- स्वर्ग, ख- पाताल, ग- मृत्युलोक, घ- चन्द्रलोक में।

प्रश्न 6- जब चन्द्रमा कन्या का हो तो भद्रा का निवास कहां पाया जाता है ?

क- स्वर्ग, ख- पाताल, ग- मृत्युलोक, घ- चन्द्रलोक में।

प्रश्न 7- भद्रा का फल उसके निवास से कहां पाया जाता है ?

क- नीचे के लोक में, ख- उपर के लोक में, ग- उसी लोक में, घ- अनिश्चत लोक में।

प्रश्न 8- जब निषिद्ध वार में कार्य अति आवश्यक हो तो उचित काल होरा में वह कार्य-

क- किया जा सकता है, ख- नही किया जा सकता ,

ग- कभी किया जा सकता है, घ- जैसी इच्छा।

प्रश्न 9- जब चन्द्रमा शुद्ध हो तो मृत्यु योग होता है ?

क- शुभ, ख- अशुभ, ग- अनावश्यक, घ- आवश्यक।

प्रश्न 10- जब चन्द्रमा शुद्ध हो तो क्रकच योग होता है ?

क- शुभ, ख- अशुभ, ग- अनावश्यक, घ- आवश्यक ।

2.5 सारांश-

इस ईकाई में आपने शुभ एवं अशुभ योगों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। शुभाशुभ ज्ञान के बिना प्रायः लोग कार्य का आरम्भ नही करते क्योकि प्रत्येक कार्य का आरम्भ करने वाला यह भली भांति सोचता है कि कार्य निर्विघ्नता पूर्वक सम्पन्न होना चाहिये। सम्पन्नता के साथ - साथ निश्चित उद्देश्य को भी प्राप्त करने में वह कार्य सफलता प्रदान करे। इस ईकाई में शुभ या अशुभ का विचार करने के लिये सबसे पहले तिथियों को केन्द्र विन्दु मानकर विचार किया गया। इसके अनुसार सम्पूर्ण तिथियों के पांच भागों में बांटा गया है जिन्हें नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता एवं पूर्णा के नाम से जाना जाता है। नन्दा में प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां, भद्रा में द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां, जया में तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथियां, रिक्ता में चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियां तथा पूर्णा में पंचमी, दशमी एवं अमावास्या या पूर्णिमा तिथियां आती है। प्रत्येक पक्ष में ये नन्दादि तिथियां तीन

बार आती है। उसी को व्यक्त करते हुये कहा गया है कि शुक्ल पक्ष में प्रथम नन्दा इत्यादि तिथियां अशुभ, द्वितीय नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य एवं तृतीय नन्दा इत्यादि तिथियां शुभ होती है। उसी प्रकार कृष्ण पक्ष में प्रथम नन्दा इत्यादि तिथियां शुभ, द्वितीय नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य एवं तृतीय नन्दा आदि तिथियां अशुभ होती है।

शुक्रवार को नन्दा तिथि यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी, बुधवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथि, भौमवार को जया यानी तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथि, शनिवार को रिक्ता यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथि तथा गुरुवार को पंचमी, दशमी, अमावास्या या पूर्णिमा तिथि सिद्ध योग प्रदान करती है अर्थात् इसमें कार्य का आरम्भ कार्य को सिद्धि दिलाने वाला होता है।

उसके बाद तिथियों और वारों के संयोग से शुभ एवं अशुभ का विचार करते हुये कहा गया है कि रविवार को नन्दा यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां हो, सोमवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां हो, भौमवार को नन्दा यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां हो, बुधवार को जया यानी तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथियां हों, गुरुवार को रिक्ता यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियां हों, शुक्रवार को भद्रा यानीं द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां हो और शनिवार को पूर्णा यानी पंचमी, दशमी एवं अमावास्या या पूर्णिमा तिथियां आती हो तो मृत योग बन जाता है।

फिर तिथि, वार, नक्षत्रादि का विचार करते हुये कहा गया है कि पंचमी तिथि में रविवार और हस्त नक्षत्र हो, सप्तमी तिथि में भौमवार और अश्विनी नक्षत्र हो, षष्ठी में सोमवार एवं मृगशिरा नक्षत्र हो, अष्टमी में बुधवार और अनुराधा नक्षत्र हो, दशमी में शुक्रवार एवं रेवती नक्षत्र हो, नवमी में गुरुवार एवं पुष्य नक्षत्र हो और एकादशी में शनिवार एवं रोहिणी नक्षत्र हो तो इन्हें समस्त शुभ कार्यो में त्याग कर देना चाहिये। इसी प्रकार परिहार सहित विविध योगों का वर्णन करते हुये भद्रा का विचार एवं परिहार भी प्रस्तुत किया गया जो तत्संबंधी ज्ञान के लिये आवश्यक ही नही अपितु अपरिहार्य है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

विष्टि- भद्रा, सित पक्ष - शुक्ल पक्ष, असित पक्ष- कृष्ण पक्ष, शस्त-शुभ, सम- समान, मध्य- मध्यम , सर्व- सभी, पूर्वार्ध- पहले का आधा भाग, उत्तरार्ध- बाद वाला आधा भाग, सितवार- शुक्रवार, ज्ञवार- बुधवार, अर्किवार- शनिवार, याम्य- भरणी, त्वाष्ट्र- चित्रा, वैश्वदेव-उत्तराषाढ़ा, अर्यमा- उत्तराफाल्गुनि, अन्त्यर्क्ष- रेवती, गतर्क्ष- गत नक्षत्र, ख- शून्य, रद- दांत, भूत तिथि- चतुर्दशी, विधु- चन्द्रमा, क्षय- क्षीण, विधुक्षय तिथि- अमावास्या, पल- मांस, क्षुर- क्षुरा, रति- प्रेम, विश्वतिथि- त्रयोदशी तिथि, दश तिथि- दशमी तिथि, द्वि तिथि- द्वितीया तिथि , धात्री फल- ऑवला, अमा-

अमावास्या, अद्रि- सात, गो तिथि- नवमी तिथि, सूर्या तिथि- द्वादशी तिथि, ईश तिथि- एकादशी तिथि, अग्नि तिथि- तृतीया तिथि, रस तिथि- षष्ठी तिथि, नन्दा तिथि- नवमी तिथि, वेद तिथि- चतुर्थी तिथि, अंग तिथि- षष्ठी तिथि, अश्वि तिथि- द्वितीया तिथि, गज तिथि- अष्टमी तिथि, अंक तिथि- नवमी तिथि, शैलतिथि-सप्तमी तिथि, उरग तिथि- अष्टमी तिथि, दिशि तिथि- नवमी तिथि, शिव तिथि- आर्द्रा तिथि, वन्हि तिथि- कृत्तिका, ब्राह्म- रोहिणी, कर नक्षत्र- हस्त नक्षत्र, अर्क- सूर्य, चन्द्र तिथि- प्रतिपदा तिथि, दृश तिथि- द्वितीया तिथि, नभसि मास- श्रावण मास, अनल तिथि- तृतीया तिथि, नेत्र तिथि- द्वितीया तिथि, माधव मास- वैशाख मास, शर तिथि- पंचमी तिथि, इष मास- आश्विन मास, शिवा तिथि- एकादशी तिथि, मार्ग मास- मार्गशीर्ष मास, नाग तिथि- अष्टमी तिथि, मधु मास- चैत्र मास, उर्ज्जा मास- कार्तिक मास, शुक्र मास- ज्येष्ठ मास, तपस्य- फाल्गुन मास, तपस मास- माघ मास, अब्धि तिथि- चतुर्थी तिथि, सार्प नक्षत्र- आश्लेषा नक्षत्र, पितृभं- मघा नक्षत्र, राक्षस नक्षत्र- मूल नक्षत्र, कदा नक्षत्र- रोहिणी, स्रभ नक्षत्र- अश्विनी, वायू नक्षत्र- स्वाती नक्षत्र, इज्य नक्षत्र- पुष्य नक्षत्र, भग नक्षत्र- पूर्वा फाल्गुनि, वासव नक्षत्र- धनिष्ठा, श्रुति नक्षत्र- श्रवण नक्षत्र, पाशी नक्षत्र- शतभिषा, पौष्ण नक्षत्र- रेवती नक्षत्र, अजपाद् नक्षत्र- पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र, द्वीश नक्षत्र- विशाखा नक्षत्र, यम नक्षत्र- भरणी नक्षत्र, इन्द्रभ-ज्येष्ठा, घट लग्न- कुम्भ लग्न, झष लग्न- मीन लग्न, अलि लग्न- वृश्चिक लग्न, मृगेन्द्र लग्न- सिंह लग्न, नक्र लग्न- मकर लग्न, अंगना लग्न- कन्या लग्न।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 1

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-ख, 6-क, 7-ख, 8-ग, 9-घ, 10-ग।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 2

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-ख, 6-घ, 7-घ, 8-घ, 9-ख, 10-घ।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 3

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-ख।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 4

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ग, 7-ग, 8-ख, 9-क, 10-ग।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 5

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-घ, 10-ग ।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 6

1-ग, 2-क, 3-ख, 4-ग, 5-क, 6-ख, 7-ग 8-क, 9-क, 10-क ।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-मुहूर्त्त चिन्तामणिः।

2-विद्यापीठ पंचांग।

3- फलदीपिका

4- अवकहड़ा चक्र।

5- संस्कार-भास्करः । वीणा टीका सहिता।

6- मनोभिलषितव्रतानुवर्णनम्- भारतीय व्रत एवं अनुष्ठान।

7- संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

2.9- सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री-

1- स्मृति कौस्तुभः।

2- श्री काशी विश्वनाथ पंचांग।

3- जातकालंकार।

4- याज्ञवल्क्य स्मृतिः।

5- संस्कार- विधानम्।

2.10 निबंधात्मक प्रश्न-

1-नन्दा आदि तिथियों की संज्ञा बतलाइये।

2- वारों से मृत योग का विचार बतलाइये।

3- दग्ध योग का परिचय दीजिये।

4- क्रकच योग का परिचय दीजिये।

5- करणों का परिचय दीजिये।

6- विष योग का विचार लिखिये।

7- हुताशन योग लिखिये।

8- यमघण्ट योग को लिखिये।

9- सर्वार्थ सिद्धि योग को लिखिये।

इकाई – 3 जातकर्म, नामकरण एवं अन्नप्राशन मुहूर्त्त

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 जातकर्म, नामकरण एवं अन्नप्राशन संस्कारों का परिचय एवं महत्त्व

3.3.1 जातकर्म संस्कार का परिचय एवं महत्त्व

3.3.2 नामकरण संस्कार का परिचय एवं महत्त्व

3.3.3 अन्नप्राशन संस्कार का परिचय एवं महत्त्व

3.4 जातकर्म, नामकरण एवं अन्नप्राशन का मुहूर्त्त

3.4.1 जातकर्म संस्कार का मुहूर्त्त विचार

3.4.2 नामकरण संस्कार का मुहूर्त्त विचार

3.4.3 अन्नप्राशन मुहूर्त्त का विचार

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावलियॉं

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में जातकर्म संस्कार, नामकरण संस्कार एवं अन्नप्राशन संस्कार संबंधी प्रविधियों का अध्ययन आप करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। जन्मोत्तर संस्कारों में प्रथम संस्कार जातकर्म संस्कार। यह संस्कार जातक के उत्पन्न होने के बाद संपन्न किया जाता है। उसके बाद के संस्कारों में से नामकरण, अन्नप्राशनादि संस्कार कराये जाते है। इन संस्कारों का ज्ञान आपको इस इकाई के अध्ययन से हो जायेगा।

प्राचीन काल में ऋषियों एवं महर्षियों द्वारा एक ऐसा अनूठा प्रयोग किया गया जिसमें मानव को मानव बनाने की प्रक्रिया का चिन्तन एवं मनन किया गया। मानवता से व्यक्ति जब-जब जितना दूर होता है समाज में अत्याचार, अनाचार, पापाचार आदि कृत्य बढ़ते हैं जिससे समाज एवं राष्ट्र का ह्रास होने लगता है। इसलिये आवश्यक है कि समाज में सांस्कारिक लोगों की अभिवृद्धि हो। यह आवश्यक नही कि पढ़ा लिखा सुशिक्षित व्यक्ति गलत नही करेगा लेकिन यह जरूर आवश्यक है कि एक सुसंस्कारित व्यक्ति असदाचरण नही करेगा। आज लोगों का चारित्रिक पतन हो रहा है। इसके कारण नैतिकता निर्बल होती जा रही है। व्यक्ति के चारित्रिक बल को जीवन्त कर नैतिकता को विकसित करने का काम संस्कार करते हैं। इन संस्कारों की नीव जो गर्भाधान से रखी जाती है का पल्लवन जातकर्मादि संस्कारों से प्रारम्भ हो जाता है इसलिये इनका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

इस इकाई के अध्ययन से आप जातकर्म संस्कार, नामकरण संस्कार एवं अन्नप्राशन संस्कार का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे विषय के अज्ञान संबंधी दोषों का निवारण हो सकेगा जिससे सामान्य जन भी अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगें। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों एवं महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायक होना, सामाजिक सहभागिता का विकास, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी बनाना आदि।

3.2 उद्देश्य

आप जातकर्म, नामकरण एवं अन्नप्राशन संस्कार के सम्पादन की आवश्यकता को समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते है।

1. सांस्कारिक ज्ञान को लोकोपकारक बनाना।
2. जातकर्म संस्कार का शास्त्रीय विधि से प्रतिपादन।

3. नामकरण संस्कार का शास्त्रीय विधि से सम्पादन।
4. अन्नप्राशन संस्कार वर्णन सहित संस्कार सम्पादन में भ्रान्तियों को दूर करना।
5. प्राच्य विद्या की रक्षा करना।
6. लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।
7. समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

3.3 जातकर्म, नामकरण एवं अन्नप्राशन संस्कारों का परिचय एवं महत्त्व

महर्षि आश्वलायन के अनुसार विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, अन्नप्राशन, उपनयन, समावर्तन एवं अन्त्येष्टि ये ग्यारह संस्कार होते हैं। वैखानस ने ऋतुसंगमन, गर्भाधान, सीमन्त, विष्णबलि, जातकर्म, उत्थान, नामकरण, अन्नप्राश्न, प्रवासगमन, पिण्डवर्धन, चौलक, उपनयन, पारायण, व्रतबन्धविसर्ग, उपाकर्म, उत्सर्जन, समावर्तन, पाणिग्रहण इन अठ्ठारह संस्कारों को बतलाया है। पारस्कर ने विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, केशान्त , समावर्तन एवं अन्त्येष्टि इन तेरह संस्कारों की बात स्वीकार की है। बौधायन गृह्यसूत्र में विवाह, गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, अन्नप्राश्न, चूड़ाकरण, कर्णवेध, उपनयन, समावर्तन, पितृमेध इन तेरह संस्कारों का वर्णन किया है। इस प्रकार हम देखते है कि समस्त आचार्यो के अनुसार जातकर्म संस्कार, नामकरण संस्कार एवं अन्नप्राशन संस्कारों का वर्णन अवश्य किया गया है। यहां हम इन तीनों संस्कारों के पृथक्-पृथक् स्वरूपों की चर्चा करेगें जिससे संबंधित विषय का ज्ञान प्रगाढ़ हो सकेगा।

3.3.1 जातकर्म संस्कार का परिचय एवं महत्त्व-

जातकर्म संस्कार का प्रयोजन व्यक्त करते हुये महर्षि भृगु ने कहा है-

जातकर्मक्रियां कुर्यात् पुत्रायुः श्रीविवृद्धये।
ग्रहदोष विनाशाय सूतिका अशुभविच्छिदे।
कुमार ग्रहनाशाय पुंसां सत्वविवृद्धये।।

इसका अर्थ स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि पुत्र की आयु एवं श्री की वृद्धि के लिये जातकर्म संस्कार की क्रिया करनी चाहिये। ग्रहों से संबंधी दोषों के विनाश के लिये , सूतिका के अशुभ के विनाश हेतु

तथा कुमार के ग्रह नाश एवं पुंसत्व की वृद्धि के लिये जातकर्म संस्कार करने चाहिये। सूतिका का मतलब सद्यः प्रसूता है ।

इसमें बच्चे को घी एवं शहद चटाने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इसका विधान गृह्यसूत्रों में मिलता है। कारण बतलाते हुये संस्कार एवं शान्ति का रहस्य नामक ग्रन्थ में लिखा गया है कि जब बच्चा मॉ के पेट में रहता है उसकी आखों में एक प्रकार का मल पदार्थ जमा रहता है जिसे चिकित्सकीय भाषा में मैकोनियम कहा गया है। डॉक्टर लोग इसे निकलवाने के लिये अरण्डी के तेल का प्रयोग करते हैं लेकिन वह स्वाद में तीखा होने के कारण बच्चे द्वारा सुगमता से ग्रहण नही किया जाता। वहीं पर घी एवं मधु स्वाद में भी ग्राह्य होता है। चरक संहिता के अनुसार घी एवं मधु में प्रभूत गुण बतलाये गये हैं। घी एवं मधु के प्रयोग से मैकोनियम भी बाहर आता है। घी एवं मधु का प्राशन स्वर्ण शलाका से कराने का विधान मिलता है आचार्य सुश्रुत इसके साथ स्वर्ण भस्म भी मिलाने की बात करते हैं। लिखते हैं- जातकर्मणि कृते मधुसर्पिः अनन्तचूर्णम् अंगुल्या अनामिकया लेहयेत्। अर्थात् अनामिका अंगुलि से मधु, घृत एवं सुवर्ण बालक को चटाना चाहिये। सुवर्ण खाने वाले के अंग में विष ऐसे ही प्रभाव नही करता है जैसे पानी में रहते हुये भी कमल के पत्र पर पानी का प्रभाव नही होता है।

बच्चे की रक्षा हेतु उसका प्रथम आहार उसकी मां के दूध में होता है इसलिये स्तन पान कराना अति आवश्यक बतलाया गया है। चिकित्सकीय भाषा में मां के प्रथम दुग्ध को कोलोस्ट्रम कहा जाता है। यह बच्चे के पोषण में तो बहुत फायदा नही करता है लेकिन इसे पीकर तथा घी शहद चाटकर उसकी ऑते साफ हो जाती है। इसमें आयुष्यवर्द्धन कर्म भी किया जाता है। आयुष्यवर्द्धन कर्म का मतलब है आयु को बढ़ाने वाला कर्म। इसमें जातक का पिता शिशु के नाभि या दक्षिण कर्ण के यहां इसका उच्चारण करे कि अग्नि बनस्पतियां सब तुम्हे आयुष्यमान बनावें । इस अवसर पर जातक के जन्म के छठें दिन षष्ठी महोत्सव करने का विधान है। इसमें काष्ठ पीठ पर स्कन्द एवं प्रद्युम्न को स्थापित कर पूजन करने का विधान है। दश दिन तक सूतक लगने के कारण पूजन का तो निषेध मिलता है परन्तु इस अवसर पर गाय का घी, सरसों, निम्ब पत्र इत्यादि से सूतिका के समीप धूप देने का विधान भी मिलता है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार इस अवसर पर सूतिका के घर में अग्नि, जल, यष्टि, दीपक, शस्त्र, दण्ड और सरसों के बीज रखे जाते है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में आता है कि इस अवसर पर माता के घर में तुर्यन्ति का पौधा रखना चाहिये। शांखायन गृह्य सूत्र में आता है कि धान के कणों एवं सरसों के बीजों से आहुति देना चाहिये। ये सभी कार्य सूतिकाग्नि में सम्पन्न किये जाने चाहिये। दशवें दिन माता एवं शिशु की शुद्धि के साथ ही इस अग्नि को शान्त कर देना चाहिये तथा आगे के समस्त कार्य गृह्याग्नि में सम्पन्न होन चाहिये। सूतिकाग्नि का मतलब सूतक की अग्नि से है।

इस प्रकार आप जातकर्म संस्कार के बारे में अच्छी तरह से जान गये होगें। इस ज्ञान को और पुष्ट

करने के लिये नीचे कुछ प्रश्न दिये जा रहे है जो इस प्रकार है-

अभ्यास प्रश्न- 1

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- जातक के जन्म के दश दिन के अन्दर माता के पास रखी जाने वाली अग्नि का नाम है-

क- सूतिकाग्नि, ख- गृह्याग्नि, ग- वेदाग्नि, घ- शाखाग्नि।

प्रश्न 2- आपस्तम्ब गृह्य सूत्र में माता के पास कौन सा पौधा रखने का विधान पाया जाता है?

क- कदम्ब, ख- तुर्यन्ति, ग- शमी, घ- कमल।

प्रश्न 3- आयुष्यवर्द्धन कर्म का मतलब है-

क- आयु को बहा ले जाने वाला, ख- आयु को हटाने वाला,

ग- आयु को बढ़ाने वाला, घ- आयु को घटाने वाला।

प्रश्न 4- शिशु जन्म का सूतक कितने दिनों तक रहता है ?

क- सात दिनों तक, ख- आठ दिनों तक, ग- नौ दिनों तक, घ- दश दिनों तक।

प्रश्न 5- जातकर्म संस्कार से क्या बढ़ता है ?

क- श्री, ख- चक्षु, ग- पिता, घ- माता।

प्रश्न 6- गर्भ में शिशु के ऑखों में क्या जम जाता है?

क- मैगनीशियम, ख- मैकोनियम, ग-मैगनीज, घ- कैल्शियम।

प्रश्न 7- सूतिका का मतलब है-

क- गर्भिणी, ख- नवविवाहिता, ग- सद्यः प्रसूता, घ- बहुपुत्रवती।

प्रश्न 8- मधु एवं घृत किस अंगुलि से चटाने का विधान है?

क- अगूंठे से, ख- तर्जनी से, ग- मध्यमा से, घ- अनामिका से।

प्रश्न 9- मॉ के पहले दूध में क्या पाया जाता है?

क- सोडियम, ख- पोटैशियम, ग- मैंगनीशियम घ- कोलोस्ट्रम।

प्रश्न 10- आचार्य सुश्रुत ने घी एवं मधु के साथ क्या खाने को कहा है?

क- सुवर्ण भस्म, ख- लौह भस्म, ग- लवण भस्म, घ- चूर्णभस्म।

3.3.2 नामकरण संस्कार का परिचय एवं महत्त्व-

नामकरण संस्कार एक ऐसा संस्कार है जिसमें दिया गया नाम न केवल उस व्यक्ति के जीवन पर्यन्त

अपितु अनेक पीढ़ियों तक व्याप्त रहता है। इस उक्ति में उसका महत्त्व इस प्रकार दर्शाया गया है-

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यः ततः प्रशस्तं खलु नाम कर्म।

यह उक्ति यह बतलाती है कि नाम अखिल व्यवहार का हेतु है। वह शुभावह कर्मों में भाग्य का हेतु है। नाम से ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है। अतः नामकरण अत्यन्त प्रशस्त कर्म है। नामकरण की परम्परा अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार दो नाम ग्रहण करने की परम्परा थी जिसमें एक नाम प्रचलित तथा दूसरा नाम मातृक तथा पैतृक होता था। पारस्करगृह्यसूत्र में नाम का स्पष्ट संकेत मिलता है लेकिन इसमें नामाक्षरों को लेकर प्रतिबन्ध लगाया गया है। आचार्य वसिष्ठ नामाक्षर संख्या को दो अथवा चार में सीमित कर देते हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र में नामकरण के सन्दर्भ में अक्षरों की संख्या का निर्धारण गुणों के आधार पर बतलाया गया है। जैसे प्रतिष्ठा एवं कीर्ति के लिये इच्छुक व्यक्ति के लिये दो अक्षरों का नाम, ब्रह्म वर्चस् की कामना के लिये चार अक्षरों वाले नाम या बालकों के लिये सम अक्षरों वाले नाम रखने चाहिये। मनु के अनुसार ब्राह्मण का नाम मंगल सूचक, क्षत्रिय के लिये बल सूचक, वैश्य के लिये धन सूचक तथा अन्य के लिये जुगुप्सित सूचक नाम रखने का विधान है। नाम को चार प्रकारों में बॉटा गया है-

इनको 1-कुलदेवताभक्त नाम, 2-मास नाम, 3- नक्षत्र नाम, 4-व्यवहार नाम के रूप में जाना जाता है। कुल देवता के अनुसार नाम रखना कुल देवता भक्त नाम कहलाता है। वीरमित्रोदय में कुल देवता का अर्थ कुल के पूज्य देवता या उनसे संबंधित देवता के रूप में किया है। दूसरा नाम मास देवता का है। इसमें प्रत्येक महीने के देवता बतलाये गये है। उन्ही के नाम पर जातक का नाम निर्धारित किया जाता है। गार्ग्य के अनुसार मार्गशीर्ष मास से क्रमशः इन नामों को जानना चाहिये। जैसे मार्गशीर्ष में मास नाम कृष्ण दिया गया है। पौष में मास नाम अनन्त दिया गया है। माघ में मास नाम अच्युत दिया गया है। फाल्गुन में मास नाम चक्री दिया गया है। चैत्र में मास नाम वैकुण्ठ दिया गया है। वैशाख में मास नाम जनार्दन दिया गया है। ज्येष्ठ में मास नाम उपेन्द्र दिया गया है। आषाढ़ में मास नाम यज्ञपुरुष दिया गया है। श्रावण में मास नाम वासुदेव दिया गया है। भाद्रपद में मास नाम हरि दिया गया है। आश्विन में मास नाम योगीश दिया गया है। कार्तिक में मास नाम पुण्डरीकाक्ष दिया गया है।

तीसरा नाम नक्षत्र देवता का है। अश्विनी नक्षत्र के देवता नाम आश्विन है। भरणी नक्षत्र के देवता नाम यम है। कृत्तिका नक्षत्र के देवता नाम अग्नि है। रोहिणी नक्षत्र के देवता नाम प्रजापति है। मृगशिरा नक्षत्र के देवता नाम सोम है। आर्द्रा नक्षत्र के देवता नाम रुद्र है। पुनर्वसु नक्षत्र के देवता नाम अदिति है। पुष्य नक्षत्र के देवता नाम वृहस्पति है। आश्लेषा नक्षत्र के देवता नाम सर्प है। मघा नक्षत्र के देवता नाम पितृ है। पूर्वा फाल्गुनि नक्षत्र के देवता नाम भग है। उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र के देवता नाम अर्यमा है।

हस्त नक्षत्र के देवता नाम सवितृ है। चित्रा नक्षत्र के देवता नाम त्वष्टा है। स्वाती नक्षत्र के देवता नाम वायु है। विशाखा नक्षत्र के देवता नाम इन्द्राग्नि है। अनुराधा नक्षत्र के देवता नाम मित्र है। ज्येष्ठा नक्षत्र के देवता नाम इन्द्र है। मूल नक्षत्र के देवता नाम निर्ऋति है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के देवता नाम आप है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के देवता नाम विश्वेदेव है। श्रवण नक्षत्र के देवता नाम विष्णु है। धनिष्ठा नक्षत्र के देवता नाम वसु है। शतभिषा नक्षत्र के देवता नाम वरुण है। पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र के देवता नाम अजैकपाद है। उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र के देवता नाम अहिर्बुध्न्य है। रेवती नक्षत्र के देवता नाम पूषन् है।

चौथा नाम व्यवहार नाम होता है। जो लोक परम्परा में रख दिया जाता है। पुकारने की सुविधा की दृष्टि से लोग इस नाम का व्यवहार प्रारम्भ कर देते है। विशेष कर दुलार पूर्वक भी यह नाम रख दिया जाता है।

अतः आप नामकरण संस्कार के बारे में जान गये होगें और इसके महत्त्व के बारे में भी अनुभव हो गया होगा। आपके ज्ञान को और प्रगाढ़ करने के लिये नीचे कुछ प्रश्न दिये जा रहे है जो इस प्रकार है।

अभ्यास प्रश्न- 2

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-अश्विनी नक्षत्र के देवता का नाम है-

क- आश्विन, ख-यम, ग- अग्नि, घ- प्रजापति।

प्रश्न 2-भरणी नक्षत्र के देवता का नाम है-

क- आश्विन, ख-यम, ग- अग्नि, घ- प्रजापति।

प्रश्न 3-कृत्तिका नक्षत्र के देवता का नाम है-

क- आश्विन, ख-यम, ग- अग्नि, घ- प्रजापति।

प्रश्न 4-रोहिणी नक्षत्र के देवता का नाम है-

क- आश्विन, ख-यम, ग-अग्नि, घ- प्रजापति।

प्रश्न 5-मृगशिरा नक्षत्र के देवता का नाम है-

क- सोम, ख-रुद्र, ग-अदिति, घ- प्रजापति।

प्रश्न 6-आर्द्रा नक्षत्र के देवता का नाम है-

क- सोम, ख-रुद्र, ग-अदिति, घ- प्रजापति।

प्रश्न 7-पुनर्वसु नक्षत्र के देवता का नाम है-

क- सोम, ख-रुद्र, ग-अदिति, घ- प्रजापति।

प्रश्न 8-पुष्य नक्षत्र के देवता का नाम है-

क- सोम, ख-रुद्र, ग-अदिति, घ- बृहस्पति।

प्रश्न 9- ब्रह्मवर्चस् की कामना के लिये कितने अक्षरों वाला नाम रखना चाहिये ?
क- दो , ख- चार, ग- छ, घ- सात।
प्रश्न 10- शतपथ ब्राह्मण के अनुसार कितने नाम ग्रहण करने की परम्परा है?
क- आठ, ख- छ, ग-चार, घ- दो।

3.3.3 अन्नप्राशन संस्कार का परिचय एवं महत्त्व-

पारस्कर गृह्यसूत्र में कहा गया है कि षष्ठे मासि अन्नप्राशनम्। यानी अन्नप्राशन संस्कार शिशु के जन्म के छठवें महीने कराना चाहिये। अन्नप्राशन का सामान्य अर्थ है अन्न का प्राशन यानी ग्रहण। प्रथम बार जब शिशु अन्न भक्षण करता है तो उसी को अन्न प्राशन का नाम दिया गया है। वास्तविकता यह है कि जब शिशु का जन्म होता है तो उसके पास दांत नही होते हैं। उसका शरीर छोटा होने के कारण उसकी आतें भी कमजोर होती है। उसे पुष्ट होने के लिये इस प्रकार के आहार की आवश्यकता होती है जिसका पाचन आसानी से हो सके। इसकी व्यवस्था प्रकृति ने मां के स्तन से दुग्ध पान के द्वारा की है। शिशु के लिये माता का दुग्ध अत्यन्त आवश्यक होता है।

दुग्ध पान तब तक अनिवार्य है जब तक शिशु का दन्त जनन नही हुआ है। दन्त जनन होने पर अन्य स्रोतों से भी शिशु आहार ग्रहण करने लग जाता है। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार भी पांच से छ महीने के बाद शिशु के शरीर को ठोस आहार की आवश्यकता होती है। उसके शरीर की आवश्यकता की पूर्ति अब मां के दूध से केवल नही हो पाती है। इसलिये छठें महीने में अन्नप्राशन संस्कार कराने की आवश्यकता बतलायी गयी है।

मुहूर्त्त चिन्तामणि के संस्कार प्रकरण के तेरहवें श्लोक के अनुसार लिखा गया है कि-

मासे चेत्प्रथमे भवेत्सदशनो बालो विनश्येत् स्वयम्।
हन्यात्स क्रमतोनुजातभगिनीमात्रग्रजान् द्वयादिके।
षष्ठादौ लभते हि भोगमतुलं तातात्सुखं पुष्टतां,
लक्ष्मीं सौख्यमथो जनौ सदशनो वोर्ध्वं स्वपित्रादिहा।।

अर्थात् जन्म के प्रथम मास में जन्म हो तो बालक का स्वयं विनाश होता है। दूसरे मास में दांत निकलने से उसके छोटे भाई का नाश होता है। जन्म से तीसरे महीने में दन्त जनन हो तो बहन के लिये अशुभकारी होता है। जन्म से चौथे महीने में यदि दन्त जनन होता है तो माता का नाश होता है। जन्म से पांचवें महीने में यदि दन्त जनन होता है तो बड़े भाई का नाश होता है। छठवें महीने में दन्त जनन होने से बालक अत्यन्त सुखी रहता है। सातवें महीने दन्त जनन होने से पिता से सुख प्राप्त करता है। आंठवे मास में दन्त जनन से पुष्टता की प्राप्ति होती है। नवें मास में दन्त जनन से व्यक्ति धनवान होता है। दांत सहित शिशु का जन्म हो या ऊपर की पंक्ति में दन्त जनन हो तो माता, पिता, भाई एवं स्वयं

अपना नाश करता है। अशुभ फलद दांत निकलने पर शान्ति करानी चाहिये।

पारस्कर गृह्यसूत्र में आया है कि प्राशनान्ते सर्वान् रसान् रसान्त्सर्वमन्नमेकत उद्धृत्य अथैनं प्राशयेत्। अर्थात् संस्रव प्राशन के बाद मधुर आदि सभी रसों का भक्ष्य भोज्यादि सभी अन्नों को एक पात्र में उठाकर चटाना चाहिये। यहां मार्कण्डेय ऋषि का वचन है कि-

देवता पुरतस्तस्य धात्र्युत्संगतस्य च।

अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे सकांचनम्।

मध्वाज्यदधिसंयुक्तं प्राशयेत्पायसं तु वा।

अर्थात् देवता के समक्ष अलंकृत बालक को माता की गोंद में रखकर स्वर्ण पात्र में मधु, आज्य, दधि मिश्रित कर खीर सहित चटाना चाहिये।

इस प्रकार अन्नप्राशन संस्कार क्या है तथा उसका महत्त्व क्या है इसको आपने जाना। अब हम आपके ज्ञान को और प्रौढ़ करने के लिये कुछ प्रश्न प्रस्तुत करेंगे जिसके हल करने आपकी बुद्धि में विषय परिपक्व होगा। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 3

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- जन्म के प्रथम मास में दन्त जनन का फल क्या होता है?

क- स्वयं शिशु का विनाश ख- अनुज का विनाश, ग- भगिनी का विनाश, घ- माता का विनाश।

प्रश्न 2- जन्म के द्वितीय मास में दन्त जनन का फल क्या होता है?

क- स्वयं शिशु का विनाश ख- अनुज का विनाश, ग- भगिनी का विनाश, घ- माता का विनाश।

प्रश्न 3- जन्म के तृतीय मास में दन्त जनन का फल क्या होता है?

क- स्वयं शिशु का विनाश ख- अनुज का विनाश, ग- भगिनी का विनाश, घ- माता का विनाश।

प्रश्न 4- जन्म के चतुर्थ मास में दन्त जनन का फल क्या होता है?

क- स्वयं शिशु का विनाश ख- अनुज का विनाश, ग- भगिनी का विनाश, घ- माता का विनाश।

प्रश्न 5- जन्म के पंचम मास में दन्त जनन का फल क्या होता है?

क- अग्रज का विनाश ख- सुख की प्राप्ति , ग- पिता से सुख, घ- पुष्टता।

प्रश्न 6- जन्म के षष्ठ मास में दन्त जनन का फल क्या होता है?

क- अग्रज का विनाश ख- सुख की प्राप्ति , ग- पिता से सुख, घ- पुष्टता।

प्रश्न 7- जन्म के सप्तम मास में दन्त जनन का फल क्या होता है?

क- अग्रज का विनाश ख- सुख की प्राप्ति , ग- पिता से सुख, घ- पुष्टता।

प्रश्न 8- जन्म के अष्टम मास में दन्त जनन का फल क्या होता है?

क- अग्रज का विनाश ख- सुख की प्राप्ति , ग- पिता से सुख, घ- पुष्टता।

प्रश्न 9 - प्राशनान्ते सर्वान् रसान् का क्या मतलब है ?

क- संस्रव प्राशन के बाद, ख- संस्रव प्राशन से पहले , ग- अन्नप्राशन के बाद, घ- अन्नप्राशन से पहले।

प्रश्न 10- पारस्कर जी ने अन्नप्राशन किस महीने में बताया है?

क- दूसरे महीने में, ख- तीसरे महीने में, ग- चौथे महीने में, घ- छठवें महीने में।

3.4 जातकर्म, नामकरण एवं अन्नप्राशन का मुहूर्त्त-

इससे पूर्व के प्रकरण में आपने जातकर्म संस्कार, नामकरण संस्कार एवं अन्नप्राशन संस्कार का परिचय एवं महत्त्व जाना। इस प्रकरण में जातकर्म संस्कार कब कराया जाना चाहिये यानी उसका मुहूर्त्त, नामकरण संस्कार का मुहूर्त्त एवं अन्नप्राशन संस्कार का मुहूर्त्त आप जानेगें। इसके ज्ञान से तत्संबंधी मुहूर्त्त के ज्ञान में आप सक्षम हो जावेगें।

3.4.1 जातकर्म संस्कार का मुहूर्त्त विचार-

मुहूर्त्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में जातकर्म संस्कार के मुहूर्त्त का प्रतिपादन करते हुये बतलाया गया है कि-

तज्जातकर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेन्हि।

एकादशे द्वादशके अपि घस्रे मृदुध्रुवक्षिप्रचरोडुषु स्यात्।

शिशु का जातकर्मादि संस्कार पर्व तिथियों एवं रिक्ता तिथियों को छोड़कर किया जाता है। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा एवं रवि की संक्रान्ति को पर्व तिथियां कहा गया है। रवि की संक्रान्ति का तात्पर्य है सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि पर जाना। उस दिन जो तिथि हो उस तिथि को पर्व तिथि की संज्ञा दी गयी है। चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी को रिक्ता तिथि कहा जाता है। इन तिथियों को छोड़कर अन्य तिथियों में यानी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी एवं त्रयोदशी तिथियों में जातकर्म संस्कार कराया जाना चाहिये। आगे शुभेन्हि कहते हुये समझाया है कि शुभ दिवसों में। शुभ दिवसों के सन्दर्भ में जब हम विचार करते है तो पाते हैं कि सोमवार, बुधवार, गुरुवार एवं शुक्रवार को शुभ दिन कहा गया है। जन्म दिन से ग्यारहवे या बारहवें घस्र यानी दिन, मृदुसंज्ञक यानी मृगशिरा, रेवती, चित्रा एवं अनुराधा, ध्रुव संज्ञक यानी तीनों उत्तरा एवं रोहिणी, क्षिप्र संज्ञक यानी हस्त, अश्विनी एवं पुष्य एवं चर संज्ञक यानी स्वाती, पुनर्वसु श्रवण , धनिष्ठा तथा शतभिषा इन सोलह नक्षत्रों में शिशु का जातकर्म संस्कार शुभ होता है।

आचार्य वसिष्ठ जी इस विषय में कहते है कि-

यस्मिन् मुहूर्त्ते जनितः कुमारः तस्मिन् विधेयं खलु जातकर्म।
सन्तर्प्य देवान् सपितृन्द्विजांश्च सुवर्णगोभूतिलकांस्यवस्त्रैः।।

अर्थात् जिस मुहूर्त्त में कुमार का जन्म हुआ है उसी मुहूर्त्त में जातकर्म करना चाहिये। उसमें देवताओं का तर्पण करें, पितरो एवं द्विजों का तर्पण सुवर्ण, गौ, भूमि , तिल एवं कांस्य वस्त्र से करे।
आचार्य विष्णु जी भी कहते है-

जातकर्म ततः कुर्यात् पुत्रे जाते यथोदितम्। यथोदितम् शब्द का अर्थ स्वगृहसूत्र में उक्त विधान के अनुसार करना चाहिये किया गया है। उसमें लिखा गया है कि पुत्र का जन्म सुनकर पिता को सचैल स्नान करके विधान करना चाहिये। ज्यौतिष सागर में वसिष्ठ जी लिखते हैं-

श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत्।
उत्तराभिमुखो भूत्वा नद्यां वा देवखातके।।

अर्थात् पिता पुत्र का जन्म सुनकर उत्तराभिमुख होकर नदी अथवा देव खात में सचैल यानी वस्त्र सहित स्नान का आचरण करें। यह कार्य नालच्छेदन से पूर्व ही करना चाहिये। मनु महाराज कहते हैं- प्रांक्नाभिवर्द्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते। अर्थात् नाभि वर्द्धन से पूर्व जातकर्म करना चाहिये। नाभि वर्द्धन का अर्थ मुहूर्त्तचिन्तामणि के मणिप्रदीपटीकाकार ने वर्द्धनं छेदनम् कहते हुये नाभि छेदन से किया है। आचार्य जैमिनी इस सन्दर्भ में अपना विचार प्रसतुत करते हुये कहते है कि-

यावन्नोच्छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्। छिन्ने नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते।।

अर्थात् जबतक शिशु का नाल छेदन नही हो जाता तब तक सूतक नही लगता है। नालच्छेदन हो जाने पर सूतक लग जाता है। इसलिये नाल छेदन के अनन्तर जन्म से दश दिन तक सूतक के समाप्ति के अनन्तर ही पूजन होना चाहिये।

अतिक्रान्त काल में भी जातकर्म संस्कार करने का विधान किया गया है। पिता देशान्तर में गया हो या राजगृहादि में निबद्ध हो तो उसके आने के बाद जातकर्म संस्कार किया जायेगा। आचार्य बैजवाप इस सन्दर्भ में लिखते हैं-

जन्मतो अनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि। दैवादतीतः कालश्चेदतीते सूतकं भवेत्।।

अर्थात् जन्म के अनन्तर जातकर्म यथाविधि से करना चाहिये। जातकर्म संस्कार के बारे में आचार्य नारद ने कहा है कि जातकर्म पितृपूजन पूर्वक होना चाहिये।

आचार्यों का मानना है कि जातकर्म संस्कार शिशु के मेधा को विकसित करने के लिये किया जाता है। इसमें विषम मात्रा में मधु एवं धी को पिता चार बार चटाता है। सुश्रुत के अनुसार घी सौन्दर्य का जनक, मेधावर्धक एवं मधुरता देने वाला, शिरोवेदना, मृगी, ज्वर, अपच एवं तिल्ली का निवारक

होता है। पाचन शक्ति, स्मृति, बुद्धि, प्रज्ञा, तेज, मधुर ध्वनि, वीर्य एवं आयु को बढ़ाने वाला है। मधु जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला, रंग रूप सुधारने वाला, बलकारक, हल्का कोमल, शरीर को मोटा न होने देने वाला, जोड़ों को जोड़ने वाला, घावों को भरने वाला एवं पित्तादि दोषों को शान्त करने वाला होता है। सुवर्ण का प्रयोग विष का विनाशक होता है।

इस प्रकार जातकर्म संस्कार के मुहूर्त्त प्रतिपादन विषय को आपने जाना। अब हम आपके ज्ञान को और प्रौढ़ करने के लिये कुछ प्रश्न प्रस्तुत करेंगे जिसके हल करने आपकी बुद्धि में विषय परिपक्व होगा। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 4

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- इनमें रिक्ता तिथि क्या है?

क- प्रतिपदा, ख- द्वितीया, ग- तृतीया, घ- चतुर्थी।

प्रश्न 2- इनमें पर्व तिथि क्या है?

क- प्रतिपदा, ख- द्वितीया, ग- अष्टमी, घ- चतुर्थी।

प्रश्न 3- इनमें कौन शुभ दिन नही है?

क- सोमवार, ख- कुजवार, ग- गुरुवार, घ-शुक्रवार।

प्रश्न 4- इनमें धु्रव संज्ञक नक्षत्र क्या है?

क- अश्विनी, ख- भरणी, ग- कृत्तिका, घ- रोहिणी।

प्रश्न 5- इनमें छिप्र संज्ञक नक्षत्र क्या है?

क- अश्विनी, ख- भरणी, ग- कृत्तिका, घ- रोहिणी।

प्रश्न 6- इनमें मृदु संज्ञक नक्षत्र क्या है?

क- अश्विनी, ख- रेवती, ग- कृत्तिका, घ- रोहिणी।

प्रश्न 7- इनमें सचैल स्नान क्या है?

क- वस्त्र रहित, ख- वस्त्र सहित, ग- यथेच्छ, घ- समुद्र स्नान।

प्रश्न 8- इनमें नाभिवर्द्धन क्या है?

क- नालच्छेदन, ख-नाभि का वढ़ना, ग-नाभि का मोटा होना, घ- नाभि का छोटा होना।

प्रश्न 9- इनमें जन्म सूतक कितने दिन का होता है?

क- आठ दिन, ख- नौ दिन, ग- दश दिन, घ- ग्यारह दिन।

प्रश्न 10- जातकर्म में पिता मधु एवं घी शिशु को कितने बार चटाता है?

क- तीन बार, ख- चार बार, ग- पांच बार, घ- छ बार।

3.4.2 नामकरण संस्कार का मुहूर्त्त विचार-

नामकरण संस्कार के मुहूर्त्त का प्रतिपादन करते हुये अनेक ऋषियों ने अपने - अपने तरीके से विचार किया है। मदन रत्न में नारदीय वचन है कि-

सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम्।। अर्थात् सूतक के अन्त हो जाने के बाद अपनी कुल परम्परा के अनुसार नामकरण संस्कार करना चाहिये। इस सन्दर्भ में हरिहराचार्य जी कहते है कि जितने दिन का सूतक हो उतना दिन बीत जाने पर ही नामकरण संस्कार होगा। इसका मतलब जननाशौच के बाद कोई मरणाशौच आ जाय तो उस अशौच के बीत जाने पर ही नामकरण किया जायेगा। सूत्रकारों का वचन है कि जन्म से ग्यारहवें दिन नामकरण करना चाहिये। गोभिलगृह्यसूत्र कहता है कि-

दशरात्रे व्युष्टे नामकरणमिति

अर्थात् दश रात्रि बीत जाने पर ही नामकरण करना चाहिये। मदन रत्न में वर्णन मिलता है कि-

द्वादशे दशमे वापि जन्मतो पि त्रयोदशी।
षोडशे विंशतौ चैव द्वाविंशवर्णतः क्रमात्।।

अर्थात् नामकरण जन्म से दशवें , बारहवें, तेरहवें, सोलहवें, बीसवें या बाइसवें दिन किया जा सकता है। कारिका में कहा गया है कि-

एकादशे द्वादशे वा मासे पूर्वो अथवा परे।
अष्टादशे अहनि तथा पदन्त्यन्ये मनीषिणः।
शतरात्रे व्यतीते वा पूर्णे संवत्सरे अथवा।।

अर्थात् ग्यारहवें, बारहवें दिन या महीना पूर्ण होने पर सौवें दिन अथवा एक वर्ष पर नामकरण कराया जा सकता है। ज्योर्तिनिबन्ध में आचार्य गर्ग जी का मत है कि-

अमा संक्रान्ति विष्ट्यादौ प्राप्तकाले पि नाचरेत्।

अर्थात् अमावास्या, संक्रान्ति, भद्रा के होने पर काल प्राप्त होने पर भी नामकरण नही करना चाहिये। सार संग्रह में वर्ण के अनुसार नामकरण करने का विचार दिया गया है।

एकादशे अन्हि विप्राणां क्षत्रियाणां त्रयोदशे।
वैश्यानां षोडशे नाम मासान्ते शूद्रजन्मनाम्।।

अर्थात् ग्यारहवें दिन विप्रों का, तेरहवें दिन क्षत्रियों का, सोलहवें दिन वैश्यों का, एवं एक मास में तदेतरों का नामकरण करना चाहिये। नामकरण के सन्दर्भ में महर्षि कश्यप का विचार निम्नलिखित है-

उक्तकाले प्रकर्त्तव्या द्विजानामखिला क्रिया।
अतीतेषु च कालेषु कर्त्तव्याश्चोत्तरायणे।
सुरेज्ये अप्यसुरेज्ये वा नास्तगे न च वार्द्धके।
शुभलग्ने शुभांशे च शुभे अन्हि शुभवासरे।
चन्द्रताराबलोपेतो नैधनोदये वर्जिते।
पूर्वान्हे क्षिप्रनक्षत्रचरस्थिरमृदूडुषु।
नाममंगलघोषैश्च रहस्य दक्षिणश्रुतौ।

अर्थात् कालातीत हो जाने पर उत्तरायण में, गुरु, शुक्र के बाल, वृद्ध व अस्त न रहते हुये, शुभ लग्न एवं शुभ नवांश में, शुभ दिनों में, चन्द्र व तारा बलवान हो तब पूर्वान्ह में छिप्र, चार, स्थिर एवं मृदु संज्ञक नक्षत्रों में नामकरण बालक के दक्षिण कान में करना चाहिये।

नामकरण संस्कार कब करना चाहिये इस सन्दर्भ में आचार्यों का कथन है कि-

पूर्वान्हे श्रेष्ठ इत्युक्तौ मध्यान्हौ मध्यमः स्मृतः।
अपरान्हं च रात्रिं च वर्जयेन्नामकर्मणि।।

पूर्वान्ह में नामकरण श्रेष्ठ होता है, मध्यान्ह में मध्यम होता है, अपरान्ह एवं रात्रि में नामकरण वर्जित किया है। दिन का विचार करते हुये बतलाया गया है कि रवि, भौम को छोड़कर धन, कर्म, सुत, भ्रातृ एवं नवमस्थ चन्द्रमा हो तो शुभ होता है।

नामकरण संस्कार में जन्म के दश दिन बाद शिशु को सूतिका गृह से बाहर लाये। फिर तीन ब्राह्मणों को भोजन कराने के बाद शिशु का नामकरण संस्कार करे। पारस्काराचार्य जी के अनुसार बच्चे का नाम दो या चार अक्षरों का होना चाहिये। उसका पहला अक्षर घोष हो , मध्य में अन्तस्थ वर्ण और अन्त में दीर्घ या कृदन्त या तद्धितान्त होना चाहिये। कन्या के नामकरण में विषम वर्ण तीन, पांच या सात अक्षर होना चाहिये।

नामकर्म संस्कार के मुहूर्त्त का प्रतिपादन करते हुये बतलाया गया है कि-

तज्जातकर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेन्हि।
एकादशे द्वादशके अपि घस्रे मृदुध्रुवक्षिप्रचरोडुषु स्यात्।

शिशु का नामकरण संस्कार पर्व तिथियों एवं रिक्ता तिथियों को छोड़कर किया जाता है। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा एवं रवि की संक्रान्ति को पर्व तिथियां कहा गया है। रवि की संक्रान्ति का तात्पर्य है सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि पर जाना। उस दिन जो तिथि हो उस तिथि को पर्व

तिथि की संज्ञा दी गयी है। चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी को रिक्ता तिथि कहा जाता है। इन तिथियों को छोड़कर अन्य तिथियों में यानी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी एवं त्रयोदशी तिथियों में नामकरण संस्कार कराया जाना चाहिये। आगे शुभेन्हि कहते हुये समझाया है कि शुभ दिवसों में। शुभ दिवसों के सन्दर्भ में जब हम विचार करते है तो पाते हैं कि सोमवार, बुधवार, गुरुवार एवं शुक्रवार को शुभ दिन कहा गया है। जन्म दिन से ग्यारहवे या बारहवें घस्र यानी दिन, मृदुसंज्ञक यानी मृगशिरा, रेवती, चित्रा एवं अनुराधा, ध्रुव संज्ञक यानी तीनो उत्तरा एवं रोहिणी, क्षिप्र संज्ञक यानी हस्त, अश्विनी एवं पुष्य एवं चर संज्ञक यानी स्वाती, पुनर्वसु , श्रवण, धनिष्ठा तथा शतभिषा इन सोलह नक्षत्रों में शिशु का नामकर्म संस्कार शुभ होता है।

इस प्रकार नामकरण संस्कार के मुहूर्त्त प्रतिपादन विषय को आपने जाना। अब हम आपके ज्ञान को और प्रौढ़ करने के लिये कुछ प्रश्न प्रस्तुत करेंगे जिसके हल करने आपकी बुद्धि में विषय परिपक्व होगा। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 5

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- इनमें नामकरण किस कर्ण में करना चाहिये?

क- दक्षिण कर्ण, ख- वाम कर्ण, ग- यथेच्छ, घ- निश्चित नियम नही।

प्रश्न 2- इनमें नामकरण कब श्रेष्ठ है?

क- पूर्वान्ह, ख- मध्यान्ह, ग- अपरान्ह, घ- सायान्ह।

प्रश्न 3- इनमें नामकरण में पहला वर्ण क्या होना चाहिये है?

क- कृदन्त, ख- अन्तस्थ, ग- घोष, घ- तद्धितान्त।

प्रश्न 4- इनमें नामकरण में मध्य वर्ण क्या होना चाहिये है?

क- कृदन्त, ख- अन्तस्थ, ग- घोष, घ- तद्धितान्त।

प्रश्न 5- इनमें नामकरण में अन्त्य वर्ण क्या होना चाहिये है?

क- कृदन्त, ख- अन्तस्थ, ग- घोष, घ- कुछ भी।

प्रश्न 6- इनमें कन्या के नामकरण में कितने वर्ण होने चाहिये ?

क- तीन, ख- चार, ग- छः, घ-आठ।

प्रश्न 7- इनमें पुरुष के नामकरण में कितने वर्ण होने चाहिये ?

क- तीन, ख- चार, ग- पांच, घ-सात।

प्रश्न 8- इनमें नामकरण में चन्द्रमा कहां होना चाहिये ?

क- दूसरे स्थान में, ख- छठे स्थान में, ग- बारहवें सथान में , घ-आठवें स्थान में।

प्रश्न 9- क्या कन्या का नामकरण अमावास्या को कराना चाहिये ?

क- हां, ख- नही, ग- पता नही, घ- सम्भव है।

प्रश्न 10- इनमें संक्रान्ति का मतलब सूर्य का कहां जाना है ?

क- दूसरे लग्न में जाना, ख- दूसरे योग में जाना, ग- दूसरे नक्षत्र में जाना, घ- दूसरे राशि में जाना।

3.4.3 अन्नप्राशन मुहूर्त्त का विचार-

अन्नप्राशन संस्कार के मुहूर्त्त का विचार करते हुये मूहुर्त्तचिन्तामणि में कहा गया है कि-

रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारान्,
ल्लग्नं जन्माष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च।
हत्वा षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पंचमादोजमासे।
नक्षत्रैः स्यात्स्थिराख्यैः समृदुलघुचरैर्बालकान्नाशनं सत्।

अर्थात् रिक्ता तिथि यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी, नन्दा तिथि यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी, अष्टमी, दर्श यानी अमावास्या, हरि दिवस यानी द्वादशी, तिथियों को छोड़कर, सौरि यानी शनिवार, भौमवार एवं सूर्यवारों को छोड़कर, जन्मराशि एवं जन्मलग्न से आठवीं राशि के लग्न एवं नवमांश तथा मीन, मेष एवं वृश्चिक लग्न को छोड़कर, छठवें महीने से सम मासों में एवं कन्याओं को विषम मासों में, स्थिर संज्ञक, मृदुसंज्ञक, लघु संज्ञक एवं चर संज्ञक इन सोलह नक्षत्रों में अन्नप्राशन उत्तम है। स्थिर संज्ञक नक्षत्र में तीनों उत्तरा एवं रोहिणी लिया गया है। मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में मृगशिरा, रेवती, चित्रा एवं अनुराधा को स्वीकार किया गया है। लघु संज्ञक में हस्त, अश्विनी एवं पुष्य को स्वीकार किया गया है। चर संज्ञक में स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा इन सोलह नक्षत्रों में अन्नप्राशन उत्तम माना गया है।

विशेष विचार करते हुये बतलाया गया है कि-

गर्भाधानान्नप्राशेषु न गुरुसितयोर्बाल्यवार्धेन मौढ्यम्।
जह्यात् कालस्य रोधाद्धरिगुरुमयनं याम्यमूनाधिमासौ।।

अर्थात् गर्भाधान से अन्नप्राशन का समय निश्चित होने के कारण गुरु- शुक्र का अस्त, बाल्य और वृद्धत्व, सिंह के बृहस्पति, याम्यायन, न्यूनमास , अधिकमास का त्याग नही करना चाहिये।

मुहूर्त्त के ग्रन्थों के अनुसार क्षीण चन्द्रमा, पूर्ण चन्द्रमा, गुरु, बुध, भौम, सूर्य, शनि, शुक्र ये यदि अन्नप्राशनकालिक लग्न से 9, 5, 12, 1, 4, 7, 10, 8 स्थानों में से किसी स्थान में हो तो शिशु क्रम

से भिक्षा का अन्न खानेवाला, यज्ञ करने वाला, दीर्घजीवी, ज्ञानी, पित्तरोगी, कुष्ठी, अन्न के क्लेश युक्त, वातरोगी एवं भोगों को भोगनेवाला होता है। अर्थात् उक्त स्थानों में से किसी स्थान में क्षीण चन्द्रमा हो तो भिक्षा मांगकर खाने वाला होता है। पूर्ण चन्द्रमा हो तो यज्ञ करने वाला होता है। इसी प्रकार से अन्य ग्रहों के लिये भी समझना चाहिये। लग्नशुद्धि का विचार करते हुये कहा गया है कि-

केन्द्रत्रिकोणसहजेषु शुभैः खशुद्धे लग्ने त्रिलाभरिपुगैश्च वदन्ति पापैः।

लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं मैत्राम्बुपानिलजनुर्भमसच्च केचित्॥

अन्नप्राशन लग्न से केन्द्र त्रिकोण तृतीय स्थानों में शुभग्रह हो, तीन , छ, ग्यारह स्थानों में पाप ग्रह हो, ख यानी दशम स्थान शुद्ध हो, चन्द्रमा लग्न में, अष्टम में, षष्ठ में न हो तो अन्नप्राशन करना चाहिये। कुछ आचार्य गण कहते है कि मैत्र यानी अनुराधा, अम्बुप यानी शतभिषा तथा अनिल यानी स्वाती नक्षत्र अशुभ है।

आचार्य कश्यप के अनुसार अन्नप्राशन संस्कार में इस प्रकार लग्नों का विचार किया है-

गो अश्वकुम्भतुलाकन्यासिंहकर्कनृयुग्मगाः।

शुभदा राशयः चैते न मेष झष वृश्चिकाः॥

अर्थात् वृष, धनु, कुम्भ, तुला, कन्या, सिंह, कर्क एवं मिथुन लग्न अन्नप्राशन हेतु शुभ माना गया है। मेष, मीन एवं वृश्चिक का निषेध किया गया है।

वसिष्ठ जी ने कहा है-

युग्मेषु मासेषु च षष्ठमासात् संवत्सरे वा नियतं शिशूनाम्।

अयुग्ममासेषु च कन्यकानां नवान्नसम्प्राशनमिष्टमेतत्॥

बालकों कां छठवे मास से युग्म मासों में तथा कन्याओं का पांचवे से विषम मासों में अन्नप्राशन करना चाहिये। शुक्लपक्षे च पूर्वान्हे कहते हुये नारद जी ने इसे शुक्ल पक्ष में एवं पूर्वान्ह के समय करने का विधान बतलाया है। जन्म नक्षत्र के सन्दर्भ में नारद जी का वचन इस प्रकार है-

पट्टबन्धनचौलान्नप्राशने चोपनायने। शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि॥

अर्थात् पट्टबन्धन में, चौल यानी मुण्डन में, अन्नप्राशन में एवं उपनयन में जन्म नक्षत्र शुभ मानी जाती है। अन्य कर्मो में अशुभ मानी गयी है।

अन्नप्राशन में विद्धनक्षत्र को वर्जित किया गया है। दीपिका में कहा गया है कि-

कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा। प्राशने चाद्यचूडायां विद्धमृक्षं परित्यजेत्॥

आचार्य वसिष्ठ जी कहते है-

कुष्ठी लग्नगते सूर्ये क्षीणचन्द्रे च भिक्षुकः।

सत्रदः पूर्णचन्द्रे स्यात् कुजे पित्तरुजार्दितः।

बुधे ज्ञानी गुरौ भोगी दीर्घायुर्भाग्यवान्सिते।
वातरोगी शनौ राहौ केतौ चान्नविवर्जितः।।

अर्थात् जिस समय अन्नप्राशन किया जा रहा हो उस समय लग्न में सूर्य हो तो कुष्ठी, क्षीण चन्द्रमा हो तो भिक्षुक, पूर्ण चन्द्रमा हो तो शुभ, मंगल हो तो पित्त रोगी, बुध हो तो ज्ञानी, गुरु हो तो भोगी, शुक्र हो तो दीर्घायु एवं भाग्यवान् तथा शनि, राहु या केतु हो तो वात रोगी होता है।

इस प्रकार अन्नप्राशन संस्कार के मुहूर्त्त प्रतिपादन विषय को आपने जाना। अब हम आपके ज्ञान को और प्रौढ़ करने के लिये कुछ प्रश्न प्रस्तुत करेंगे जिसके हल करने आपकी बुद्धि में विषय परिपक्व होगा। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 6

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- अन्नप्राशन में लग्न में सूर्य हो तो फल क्या होता है?

क- कुष्ठी, ख- भिक्षुक, ग- शुभ, घ- पित्त रोगी।

प्रश्न 2- अन्नप्राशन में क्षीण चन्द्रमा हो तो फल क्या होता है?

क- कुष्ठी, ख- भिक्षुक, ग- शुभ, घ- पित्त रोगी।

प्रश्न 3- अन्नप्राशन में लग्न में पूर्ण चन्द्रमा हो तो फल क्या होता है?

क- कुष्ठी, ख- भिक्षुक, ग- शुभ, घ- पित्त रोगी।

प्रश्न 4- अन्नप्राशन में लग्न में मंगल हो तो फल क्या होता है?

क- कुष्ठी, ख- भिक्षुक, ग- शुभ, घ- पित्त रोगी।

प्रश्न 5- अन्नप्राशन में लग्न में बुध हो तो फल क्या होता है?

क- ज्ञानी, ख- भिक्षुक, ग- शुभ, घ- पित्त रोगी।

प्रश्न 6- अन्नप्राशन में लग्न में गुरु हो तो फल क्या होता है?

क- कुष्ठी, ख- भोगी, ग- शुभ, घ- पित्त रोगी।

प्रश्न 7- मैत्र नक्षत्र क्या है?

क- अनुराधा, ख- शतभिषा, ग- स्वाती, घ- विशाखा।

प्रश्न 8- अम्बुप नक्षत्र क्या है?

क- अनुराधा, ख- शतभिषा, ग- स्वाती, घ- विशाखा।

प्रश्न 9- अनिल नक्षत्र क्या है?

क- अनुराधा, ख- शतभिषा, ग- स्वाती, घ- विशाखा।

प्रश्न 10- द्वीश नक्षत्र क्या है?

क- अनुराधा, ख- शतभिषा, ग- स्वाती, घ- विशाखा।

3.5 सारांश-

इस ईकाई में आपने जातकर्म, नामकरण एवं अन्नप्राशन के मुहूर्त्तों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया। इस ज्ञान के बिना लोग इन संस्कारों का सम्पादन नही कर सकते। क्योंकि प्रत्येक कार्य का आरम्भ करने वाला व्यक्ति यह भली भंति सोचता है कि कार्य निर्विघ्नता पूर्वक सम्पन्न होना चाहिये। सम्पन्नता के साथ - साथ निश्चित उद्देश्य को भी प्राप्त करने में वह कार्य सफलता प्रदान करे। और वह तभी सम्भव हो सकता जब उचित मुहूर्त्त से संस्कार करायें जाय।

शिशु का जातकर्मादि संस्कार पर्व तिथियों एवं रिक्ता तिथियों को छोड़कर किया जाता है। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा एवं रवि की संक्रान्ति को पर्व तिथियां कहा गया है। रवि की संक्रान्ति का तात्पर्य है सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि पर जाना। उस दिन जो तिथि हो उस तिथि को पर्व तिथि की संज्ञा दी गयी है। चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी को रिक्ता तिथि कहा जाता है। इन तिथियों को छोड़कर अन्य तिथियों में यानी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी एवं त्रयोदशी तिथियों में जातकर्म संस्कार कराया जाना चाहिये। आगे शुभेन्हि कहते हुये समझाया है कि शुभ दिवसों में। शुभ दिवसों के सन्दर्भ में जब हम विचार करते है तो पाते हैं कि सोमवार, बुधवार, गुरुवार एवं शुक्रवार को शुभ दिन कहा गया है। जन्म दिन से ग्यारहवें या बारहवें घस्र यानी दिन, मृदुसंज्ञक यानी मृगशिरा, रेवती, चित्रा एवं अनुराधा, ध्रुव संज्ञक यानी तीनों उत्तरा एवं रोहिणी, क्षिप्र संज्ञक यानी हस्त, अश्विनी एवं पुष्य एवं चर संज्ञक यानी स्वाती, पुनर्वसु श्रवण ,धनिष्ठा तथा शतभिषा इन सोलह नक्षत्रों में शिशु का जातकर्म संस्कार शुभ होता है।

नामकरण संस्कार के मुहूर्त्त का प्रतिपादन करते हुये अनेक ऋषियों ने अपने - अपने तरीके से विचार किया है। मदन रत्न में नारदीय वचन है कि-

सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम्।। अर्थात् सूतक के अन्त हो जाने के बाद अपनी कुल परम्परा के अनुसार नामकरण संस्कार करना चाहिये। इस सन्दर्भ में हरिहराचार्य जी कहते है कि जितने दिन का सूतक हो उतना दिन बीत जाने पर ही नामकरण संस्कार होगा। इसका मतलब जननाशौच के बाद कोई मरणाशौच आ जाय तो उस अशौच के बीत जाने पर ही नामकरण किया जायेगा। सूत्रकारों का वचन है कि ज्नम से ग्यारहवें दिन नामकरण करना चाहिये। गोभिलगृह्यसूत्र कहता है कि-

दशरात्रे व्युष्टे नामकरणमिति

अन्नप्राशन संस्कार के मुहूर्त्त का विचार करते हुये मूहुर्त्तचिन्तामणि में कहा गया है कि-

रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारान्,
ल्लग्नं जन्माष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च।
हत्वा षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पंचमादोजमासे।
नक्षत्रैः स्यात्स्थिराख्यैः समृदुलघुचरैर्बालकान्नाशनं सत्।

अर्थात् रिक्ता तिथि यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी, नन्दा तिथि यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी, अष्टमी, दर्श यानी अमावास्या, हरि दिवस यानी द्वादशी, तिथियों को छोड़कर, सौरि यानी शनिवार, भौमवार एवं सूर्यवारों को छोड़कर, जन्मराशि एवं जन्मलग्न से आठवी राशि के लग्न एवं नवमांश तथा मीन, मेष एवं वृश्चिक लग्न को छोड़कर, छठवें महीने से सम मासों में एवं कन्याओं को विषम मासों में, स्थिर संज्ञक, मृदुसंज्ञक, लघु संज्ञक एवं चर संज्ञक इन सोलह नक्षत्रों में अन्नप्राशन उत्तम है। स्थिर संज्ञक नक्षत्र में तीनो उत्तरा एवं रोहिणी लिया गया है। मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में मृगशिरा, रेवती, चित्रा एवं अनुराधा को स्वीकार किया गया है। लघु संज्ञक में हस्त, अश्विनी एवं पुष्य को स्वीकार किया गया है। चर संज्ञक में स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा इन सोलह नक्षत्रों में अन्नप्राशन उत्तम माना गया है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

ख- दशम, हरिदिवस- द्वादशी, सौरि-शनिवार ज्ञवार- बुधवार, अर्किवार- शनिवार, अलि- वृश्चिक, विश्वतिथि- त्रयोदशी तिथि, दश तिथि- दशमी तिथि, द्वि तिथि- द्वितीया तिथि , धात्री फल- ऑवला, अमा- अमावास्या, नाग तिथि- अष्टमी तिथि, मधु मास- चैत्र मास, उर्ज्जा मास- कार्तिक मास, शुक्र मास- ज्येष्ठ मास, तपस्य- फाल्गुन मास, तपस मास- माघ मास, अब्धि तिथि- चतुर्थी तिथि, सार्प नक्षत्र- आश्लेषा नक्षत्र, पितृभं- मघा नक्षत्र, राक्षस नक्षत्र- मूल नक्षत्र, कदा नक्षत्र- रोहिणी, स्रभ नक्षत्र- अश्विनी, वायू नक्षत्र- स्वाती नक्षत्र, इज्य नक्षत्र- पुष्य नक्षत्र, भग नक्षत्र- पूर्वा फाल्गुनि, वासव नक्षत्र- धनिष्ठा, श्रुति नक्षत्र- श्रवण नक्षत्र, पाशी नक्षत्र- शतभिषा, पौष्ण नक्षत्र- रेवती नक्षत्र, अजपाद् नक्षत्र- पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र, द्वीश नक्षत्र- विशाखा नक्षत्र, यम नक्षत्र- भरणी नक्षत्र, इन्द्रभ-ज्येष्ठा, घट लग्न- कुम्भ लग्न, झष लग्न- मीन लग्न, अलि लग्न- वृश्चिक लग्न, मृगेन्द्र लग्न- सिंह लग्न, नक्र लग्न- मकर लग्न, अंगना लग्न- कन्या लग्न , कवि- शुक्र, इज्य- गुरु, इन्दुवार- चन्द्रवार, लाभ स्थान- ग्यारहवां स्थान, रिपु स्थान- शत्रु स्थान, मैत्र नक्षत्र- अनुराधा, अम्बुप नक्षत्र- शतभिषा, अनिल नक्षत्र- स्वाती, अनल नक्षत्र- कृत्तिका, उडु- नक्षत्र, घस्र- दिन, ईश- स्वामी, वन्हि- अग्नि, कौ- ब्रह्मा,

गुह- स्कन्द, अन्तक- यमराज, युग्म- सम, संवत्सर- वर्ष, नियत- निश्चित, झष- मीन, उत्संग- गोद, धात्रि- आंवला, सौख्य- सुख, दिगीश- दिशाओं के अधिपति, गगन- आकाश, गव्य- गौ के द्वारा निकला पदार्थ, धन भाव- दूसरा स्थान, मातृ स्थान- चतुर्थ भाव, व्युष्ट- व्यतीत होने पर, उत्तरायण- मकर संक्रान्ति से मिथुन संक्रान्ति तक, सर्प- आश्लेषा।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 1

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-घ, 10-क।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 2

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-ख, 10-घ।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 3

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-घ।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 4

1-घ, 2-ग, 3-ख, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ख, 8-क, 9-ग, 10-ख।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 5

1-क, 2-क, 3-ग, 4-ख, 5-क, 6-क, 7-ख, 8-क, 9-ख, 10-घ।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 6

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-क, 8-ख, 9-ग, 10-घ।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-मुहूर्त्त चिन्तामणिः।

2-भारतीय कुण्डली विज्ञान भग-1

3-शीघ्रबोध।

4-शान्ति- विधानम्।

5-आह्निक सूत्रावलिः।

6-उत्सर्ग मयूख।

7-विद्यापीठ पंचांग।

3.9- सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री-

1- स्मृति कौस्तुभः।

2- श्री काशी विश्वनाथ पंचांग।

3- जातकालंकार।

4- याज्ञवल्क्य स्मृतिः।

5- संस्कार- विधानम्।

3.10 निबंधात्मक प्रश्न-

1-जातकर्म संस्कार का परिचय बतलाइये।

2- नामकरण संस्कार का परिचय बतलाइये।

3- अन्नप्राशन संस्कार का परिचय दीजिये।

4- जातकर्म संस्कार का मुहूर्त दीजिये।

5- नामकरण संस्कार का मुहूर्त्त दीजिये।

6- अन्नप्राशन संस्कार का मुहूर्त्त लिखिये।

7- जातकर्म संस्कार का महत्त्व लिखिये।

8- नामकरण संस्कार का महत्त्व लिखिये।

9- अन्नप्राशन संस्कार का महत्त्व लिखिये।

10- अन्न प्राशन संस्कार हेतु लग्नों का विचार का वर्णन कीजिये।

इकाई- 4 कर्णबेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 कर्णबेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त का परिचय एवं महत्त्व-

4.3.1 कर्णवेध संस्कार का परिचय एवं महत्त्व

4.3.2 चूड़ाकरण संस्कार का परिचय एवं महत्त्व

4.3.3 उपनयन संस्कार का परिचय एवं महत्त्व

4.4 कणवेध, चूड़ाकरण, उपयनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त

4.4.1 कर्णवेध संस्कार का मुहूर्त्त विचार

4.4.2 चूड़ाकरण संस्कार का मुहूर्त्त

4.4.3 उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावलियॉ

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में कर्णबेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त संबंधी प्रविधियों का अध्ययन आप करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। जन्मोत्तर संस्कारों में कर्णबेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त इत्यादि संस्कार महत्त्वपूर्ण संस्कार है। ये संस्कार जातक के उत्पन्न होने के बाद संपन्न किया जाता है। इन संस्कारों का ज्ञान आपको इस इकाई के अध्ययन से हो जायेगा।

प्राचीन काल में ऋषियों एवं महर्षियों द्वारा यह ऐसा अनूठा प्रयोग किया गया जिसमें मानव को मानव बनाने की प्रक्रिया का चिन्तन एवं मनन किया गया। मानवता से व्यक्ति जब-जब जितना दूर होता है समाज में अत्याचार, अनाचार, पापाचार आदि कृत्य बढ़ते है जिससे समाज एवं राष्ट्र का ह्रास होने लगता है। इसलिये आवश्यक है कि समाज में सांस्कारिक लोगों की अभिवृद्धि हो। यह आवश्यक नही कि पढ़ा लिखा सुशिक्षित व्यक्ति गलत नही करेगा लेकिन यह जरूर आवश्यक है कि एक सुसंस्कारित व्यक्ति असदाचरण नही करेगा। आज लोगों का चारित्रिक पतन हो रहा है। इसके कारण नैतिकता निर्बल होती जा रही है। व्यक्ति के चारित्रिक बल को जीवन्त कर नैतिकता को विकसित करने का काम संस्कार करते है। इन संस्कारों की नीव जो गर्भाधान से रखी जाती है का पल्लवन कर्णवेधादि संस्कारों से हो जाता है इसलिये इनका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

इस इकाई के अध्ययन से आप कर्णबेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे विषय के अज्ञान संबंधी दोषों का निवारण हो सकेगा जिससे सामान्य जन भी अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगें। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों एवं महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायक होना, सामाजिक सहभागिता का विकास, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी बनाना आदि।

4.2 उद्देश्य-

आप कर्णबेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त के सम्पादन की आवश्यकता को समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते है।

- सांस्कारिक ज्ञान को लोकोपकारक बनाना।
- कर्णबेध संस्कार का शास्त्रीय विधि से प्रतिपादन।

- चूड़ाकरण संस्कार का शास्त्रीय विधि से सम्पादन।

-उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त के वर्णन सहित संस्कार सम्पादन में भ्रान्तियों को दूर करना।

-प्राच्य विद्या की रक्षा करना।

-लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।

-समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

4.3 कर्णबेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त का परिचय एवं महत्त्व-

महर्षि पारस्कर ने विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, केशान्त , समावर्तन एवं अन्त्येष्टि इन तेरह संस्कारों की बात स्वीकार की है। बौधायन गृह्यसूत्र में विवाह, गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, अन्नप्राश्न, चूड़ाकरण, कर्णवेध, उपनयन, समावर्तन, पितृमेध इन तेरह संस्कारों का वर्णन किया है। इसी प्रकार अन्य आचार्यों ने अपने-अपने मतों के अनुसार संस्कारों एवं उसकी प्रविधियों का वर्णन किया है। प्रत्येक आचार्य का विचार एवं उसके प्रदत्त ज्ञान हम सभी के लिये अनुकरणीय है।यहां हम कर्णवेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त इनके परिचय एवं महत्व के पृथक्-पृथक् स्वरूपों की चर्चा करेगें जिससे संबंधित विषय का ज्ञान प्रगाढ़ हो सकेगा।

4.3.1 कर्णवेध संस्कार का परिचय एवं महत्त्व-

कर्णबेध शब्द के शब्दिक अर्थ को समझने का जब हम प्रयास करते हैं तो उसे दो भागों में बांटते है। पहला कर्ण एवं दूसरा बेध। कर्ण का अर्थ होता है कान, बेध शब्द का अर्थ है बेधन करना। कान के बेधन कर्म को सम्पन्न करने वाले संस्कार को कर्णबेध संस्कार का नाम दिया गया है। अब यहॉं प्रश्न खड़ा होता है कि कान का छेदन या बेधन क्यों करना चाहिये? क्या उससे कुछ लाभ होता है? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य सुश्रुत का एक बचन मिलता है जिसका वर्णन यहॉ उचित प्रतीत होता है। आचार्य सुश्रुत कहते हैं रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ बिध्येते अर्थात् रक्षा एवं आभूषण के निमित्त शिशु का कर्णवेध करना चाहिये। कर्ण वेध के कारणों में प्रथम कारण रक्षा एवं द्वितीय कारण आभूषण बतलाया गया है। रक्षा के आशय के सन्दर्भ को और स्पष्ट करते हुये आचार्य जी लिखते हैं

शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीयम्।
व्यत्यासात् वा शिरो विध्येत् आन्त्रवृद्धिनिवृत्तये।।

अर्थात् कर्णान्त में पायी जाने वाली शिराओं को वेधन कराने से आन्त्र वृद्धि पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। अगर ऑतों की वृद्धि हो रही हो तो उसके नियन्त्रण हेतु भी शिरा भेदन का कार्य उत्तम होगा। दूसरा कारण बताते हुये स्पष्ट किया गया है कि आभूषण धारण करने के निमित्त भी कर्ण वेध

उत्तम माना गया है। कारण देते हुये कहा गया है कि उससे सौभाग्य की वृद्धि होती है। सौभाग्य से तात्पर्य पति सुख एवं पुत्र सुख से है।

कर्णवेध के विधान का वर्णन करते हुये रत्नमाला नामक ग्रन्थ में लिखा गया है कि-

शिशोरजातदन्तस्य मातुरुत्संगसर्पिणः।
सुताया वेधयेत् कर्णौ सूच्या द्विगुणसूत्रया।।

अर्थात् अजात दन्त शिशु का जो माता के गोद में रहता है विशेष कर कन्या का सूई से दो सूत्र के बराबर का छिद्र करना चाहिये। यहां पर सुता यानी कन्या के लिये वचन मिलता है परन्तु गृह्य सूत्रों में इसका भेद नही किया गया है। ऐसा लगता है वहां सभी के लिये अनिवार्य किया गया है। कर्णरन्ध्र के विषय में आचार्य देवल का कथन है कि कर्ण रन्ध्र इतना होना चाहिये कि सूर्य की छाया उसके छिद्र में प्रवेश न करे।

कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः।
तं दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्चपुरातनाः।।

आचार्य शालंकायन ने भी कर्णवेध के सन्दर्भ में एक नवीन जानकारी देते हुये कहा है कि-

अविद्धकर्णैर्यद्भुक्तं लम्बकर्णैस्तथैव च।
दग्धकर्णैश्चयद्भुक्तं तद्वै रक्षांसि गच्छति।।

अर्थात् अविद्ध कर्ण युक्त होकर जो भोजन करता है या लम्बकर्णयुक्त जो भोजन करता है या दग्धकर्णयुक्त जो भोजन करता है उसका वह भोजन राक्षसों को चला जाता है। यानी वह प्रतिकूलता उत्पन्न करने वाला होता है। भोजन के उपयुक्त तत्वों का शरीर के लिये उपयोग नही हो पाता है।

कर्णछेदन के महत्व को स्वीकार करते हुये चिकित्सक गण कहते है कि कणछेदन से हार्निया नामक रोग नही होता है। इसमें यह शास्त्रीय निर्देश है कि यह संस्कार योग्य एवं निपुण व्यक्ति से कराना चाहिये। छेदन हेतु सुवर्ण की सूई का प्रयोग उचित बतलाया गया है। इसका कारण यह है कि जातकर्म संसकार के सम्पादन में लिखा गया है कि सुवर्ण विष का विनाशक होता है। तो उससे छेदन करने से किसी प्रकार का विष सम्बन्धी दोष जिसे इन्फैक्सन के रूप में जाना जाता है नही होता है।

यह तो कणवेध का दृष्ट फल है। अदृष्ट फल की चर्चा करते हुये आचार्य चक्रपाणि लिखते हैं कर्णब्यधे कृते बालो न ग्रहैरभिभूयते अर्थात् जिस शिशु का कर्णवेध हो जाता है वह ग्रहों से अभिभूत नही होता है यानी प्रभावित नही होता है। और आध्यत्मिक दृष्टि से यह एक प्रकार का संस्कार है इसके सम्पादन से पुण्य जनकता तो होती ही है। लोक में तो शिष्ट जन, जिस स्त्री का कर्णवेध न हुआ हो और जिस पुरुष का उपनयन न हुआ हो उसके हाथ का स्पर्श किया हुआ जल भी नही पीते है।

अतः उपरोक्त अध्ययन से आपको कर्णवेध का परिचय एवं उसका महत्व क्या है ? इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे है जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रोढ़ हो जायेगा। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 1

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- कर्ण वेध में कर्ण क्या होता है?

क- कान, ख- करण यानी से , ग- करण यानी करना, घ- कर्ण महादानी।

प्रश्न 2- कर्ण वेध हेतु पहला कारण आचार्य सुश्रुत ने क्या दिया है?

क- आभूषण, ख- रक्षा, ग- पिपासा, घ- इच्छा।

प्रश्न 3- कर्ण वेध हेतु दूसरा कारण आचार्य सुश्रुत ने क्या दिया है?

क- आभूषण, ख- रक्षा, ग- पिपासा, घ- इच्छा।

प्रश्न 4- कर्ण वेध से आचार्य सुश्रुत क्या नियंत्रित करते है ?

क- हस्तवृद्धि, ख- पादवृद्धि, ग- कर्णवृद्धि, घ- आन्त्रवृद्धि।

प्रश्न 5- कर्ण वेध से कौन सा रोग दूर होता है?

क- हार्निया, ख- पीलिया, ग- फोबिया, घ- एनीमिया।

प्रश्न 6- अजात दन्त क्या है?

क- दॉत होना, ख- दॉत न उगना, ग- दॉत धीरे - धीरे उगना, घ- दॉत उगना एवं गिरना।

प्रश्न 7- कर्ण वेध हेतु किसकी सूई का प्रयोग किया जाना चाहिये ?

क- लोहे की, ख- सीसे की, ग- सोने की, घ- रांगां की।

प्रश्न 8- सुवर्ण के सूई का गुण क्या है?

क- धातु नाश, ख- कफ नाश, ग- पित्त नाश, घ- विष नाश।

प्रश्न 9- कर्ण वेध में कितने कान छिदते है?

क- दोनों, ख- एक, ग- दायां, घ- बायां।

प्रश्न 10- कर्ण वेध में छिद्र कितना करना चाहिये ?

क- एक सूत्र बराबर , ख- दो सूत्र बराबर, ग- तीन सूत्र बराबर, घ- चार सूत्र बराबर।

4.3.2 चूड़ाकरण संस्कार का परिचय एवं महत्त्व-

चूड़ाकरण संस्कार को मुण्डन संस्कार के नाम से भी जाना जाता है ? आयुषे वपामि सुव्रतोकाय स्वस्तये आश्वलायन गृह्यसूत्र के इस वचन के अनुसार बालक के दीर्घायु, सौन्दर्य तथा कल्याण प्राप्ति की कामना के लिये इस संस्कार को कराना चाहिये। सुश्रुत ने कहा है केशों एवं नखों के अपमार्जन एवं छेदन से हर्ष, सौभाग्य एवं उत्साह की वृद्धि एवं पापों का उपशमन होता है।

पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम्।
हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहबर्द्धनम्।। चिकित्सा स्थान 24.72

आचार्य चरक लिखते है कि केश, श्मश्रु, तथा नखों के काटने तथा प्रसाधन से पौष्अिकता, बल, आयुष्य, सुचिता और सौन्दर्य की प्राप्ति होती है।

पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचिरूपं विराजनम्।
केशश्मश्रुनखादीनां कर्तनं सम्प्रसाधनम्।।

चूड़ाकरण संस्कार के सन्दर्भ में नियमों का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि यदि शिशु की माता को पॉच वर्ष से अधिक का गर्भ हो तो शिशु का मुण्डन शुभ नही होता है। यदि शिशु पांच वर्ष से अधिक का हो तो माता के गर्भिणी होन पर भी मुण्डन करा देना चाहिये। मुण्डन में तारा अशुभ होने पर यदि चन्द्रमा अपने मूल त्रिकोण में हो अथवा उच्च में हो अथवा शुभ ग्रह या अपने मित्र के षड्वर्ग में हो तो मुण्डन शुभ होता है। यदि चन्द्रमा शुभ हो और शुभ ग्रह की राशि का हो तो अशुभ तारा भी क्षौर यात्रा आदि कार्यों में शुभ होती है।

ऋतुमत्याः सूतिकायाः सूनोश्चौलादि नाचरेत्।
ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेपि नेष्यते।।

रजस्वला स्त्री और सूतिका स्त्री के पुत्र का मुण्डन या उपनयन नही करना चाहिये। ज्येष्ठ लड़के का ज्येष्ठ मास में मुण्डन नही कराना चाहिये। कोई कोई आचार्य गण मार्गशीर्ष मास में ज्येष्ठ लड़के का मुण्डन आदि करने का निषेध करते है। शनि, भौम, रवि वारों को और जिस दिन क्षौर बनवायें हो उस दिन से नवॉ दिन, सन्ध्या समय, रिक्ता तिथि, पर्व तिथि, इन सबको त्याग कर मुण्डन में कहे नक्षत्रादिकों में दन्त क्रिया, क्षौर और नख क्रिया करना शुभ होता है।

मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम्।
आद्य पुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत्।।

क्षौर कर्म का प्रतिपादन करते हुये बतलाया गया है कि बिना आसन के, रण तथा ग्राम में जाने के दिन, स्नान करने के बाद, शरीर में उबटन लगा लेने के बाद और भोजन कर लेने के बाद अपना कल्याण चाहने वाले को क्षौर कर्म नही कराना चाहिये। यज्ञ में, विवाह में, मृतक कर्म में, कारागार से छूटने पर, ब्राह्मण और राजा की आज्ञा से क्षौर कर्म निन्दित वार आदि में भी करा लेना शुभ होता है।

जिसकी स्त्री गर्भिणी हो उसको मुर्दा नही ठोना चाहिये, तीर्थ यात्रा नही करना चाहिये, समुद्र में स्नान नही करना चाहिये और क्षौर कर्म नही कराना चाहिये।

क्रतुपाणिपीडमृतिबन्धमोक्षणे क्षुरकर्म च द्विजनृपाज्ञया आचरेत्।
शववाहतीर्थगमसिन्धुमज्जनक्षुरमाचरेन्न खलु गर्भिणीपतिः।।

आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण रविवार को, क्षत्रिय भोमवार को और वैश्य तथा शूद्र शनिवार को क्षौर कर्म करा सकते है।

पापग्रहाणां वारेषु विप्राणां तु शुभो रविः।
क्षत्रियाणां क्षमासूनुर्विट्शूद्राणां शनिः शुभः।।

अतः उपरोक्त अध्ययन से आपको चूड़ाकरण संस्कार का परिचय एवं उसका महत्व क्या है ? इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे है जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रोढ़ हो जायेगा। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 2

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- केश कर्तन से क्या नही मिलता है?

क- दुख, ख- हर्ष , ग- सौभाग्य, घ- उत्साह।

प्रश्न 2- बालक की माता को पांच मास का गर्भ हो तो मुण्डन कराया जा सकता है?

क- हां, ख- नही, ग- माता से पूछें, घ- इच्छानुसार।

प्रश्न 3- बालक पांच वर्ष से अधिक की आयु का हो और माता को गर्भ हो तो मुण्डन कराया जा सकता है?

क- हां, ख- नही, ग- माता से पूछें, घ- इच्छानुसार।

प्रश्न 4 - मुण्डन में तारा अशुभ होने पर तथा चनद्रमा के मूल त्रिकोण में होने पर मुण्डन कराया जा सकता है?

क- हां, ख- नही, ग- माता से पूछें, घ- इच्छानुसार।

प्रश्न 5- ज्येष्ठ बालक का ज्येष्ठ मास में मुण्डन कराया जा सकता है?

क- हां, ख- नही, ग- भ्राता से पूछें, घ- इच्छानुसार।

प्रश्न 6- पर्व तिथि में मुण्डन कराया जा सकता है?

क- हां, ख- नही, ग- माता से पूछें, घ- इच्छानुसार।

प्रश्न 7 - बिना आसन के मुण्डन कराया जा सकता है?

क- हां, ख- नही, ग- माता से पूछें, घ- इच्छानुसार।

प्रश्न 8- यज्ञ में ब्राह्मण से पूछकर मुण्डन कराया जा सकता है?

क- हां, ख- नही, ग- माता से पूछें, घ- इच्छानुसार।

प्रश्न 9- आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण रविवार को क्षौर कर्म करा सकते है?

क- हां, ख- नही, ग- माता से पूछें, घ- इच्छानुसार।

प्रश्न 10- आवश्यकता पड़ने पर क्षत्रिय रविवार को क्षौर कर्म करा सकते है?

क- हां, ख- नही, ग- माता से पूछें, घ- इच्छानुसार।

4.3.3 उपनयन संस्कार का परिचय एवं महत्त्व-

उपनयन शब्द का अर्थ है गुरू के समीप ब्रह्मचारी को जो वटु है उसको ले जाना। ब्राह्मण वटु का उपनयन जन्म से या गर्भ से आठवें वर्ष में करना चाहिये। क्षत्रिय कुमार का उपनयन जन्म से या गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में होना चाहिये। जन्म से या गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य कुमार का उपनयन संस्कार करना चाहिये। इसका कारण देते हुये बतलाया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सावित्री क्रमशः आठ, ग्यारह एवं बारह अक्षरों की होती है। यानी ब्राह्मण की सावित्री आठ अक्षर की, क्षत्रिय की सावित्री ग्यारह अक्षरों की एवं वैश्यों की सावित्री बारह अक्षरों की होती है। कतिपय विद्वानों के अनुसार यह वय भेद प्रतिभा की प्रौढ़ता को देखते हुये किया गया है। कुछ आचार्यों के अनुसार ब्राह्मणों को वेद ज्ञान की शिक्षा दी जाती थी तथा अन्य वर्णो को अन्य प्रकार की शिक्षा का विधान था इसलिये भी वय भेद हुआ। पारस्कर के अनुसार सभी की अपनी कुल परम्परा के अनुसार उपनयन संस्कार का विधान है।

ब्राह्मण बालक के उपनयन संस्कार की अवधि सोलह वर्ष तक की बतलायी गयी है। क्षत्रिय कुमार के उपनयन की अवधि 22 वर्ष तक की बतलायी गयी है। वैश्य कुमार के उपनयन की अवधि चौबीस वर्ष की बतलायी गयी है। अर्थात् इन समयों के व्यतीत हो जाने उपनयन संस्कार किया जाता है तो फलदायी नही होता है। लेकिन इस विषय में काफी मत मतान्तर देखने को मिलता है। सत्रहवीं शताब्दी के निबंधकार मित्र मिश्र ब्राह्मण का चौबीस, क्षत्रिय का तैंतीस और वैश्य का छत्तीस वर्ष की अवस्था तक अनुमति देते है। वहीं बौधायन विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विभिन्न वर्षो में उपनयन कराने का संकेत देते है। जैसे-

ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति के लिये सांतवें वर्ष में उपनयन संस्कार कराना चाहिये। दीर्घायुष्य की प्राप्ति के लिये आंठवें वर्ष में उपनयन संस्कार कराना चाहिये। ऐश्वर्य के लिये नवें वर्ष में उपनयन संस्कार

कराना चाहिये। भोजन के लिये दसवें, पशुओं के लिये बारहवें, शिल्प कौशल के लिये तेरहवें, तेजस्विता के लिये चौदहवें, बन्धु बान्धवों के लिये पन्द्रहवें एवं सभी गुणों की प्राप्ति के लिये तेरहवें वर्ष में उपनयन कराना चाहिये। इसी सन्दर्भ में मनु जी कहते है-

ब्रह्मवर्चस कामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैद्यस्यप्यर्थितोष्टमे।। मनुस्मृति 2.37

अर्थात् ब्रह्मवर्चस् कामना के लिये पांचवे वर्ष में, बल के इच्छुक क्षत्रिय को छठवें वर्ष में एवं ऐश्वर्य के इच्छुक वैश्य का उपनयन संस्कार आंठवें वर्ष में किये जाने चाहिये।

मनु जी का वचन एक जगह और इस प्रकार प्राप्त होता है-

आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशे क्षत्रबन्धो आचतुर्विंशतेर्विशः।।

उपरोक्त अवधि के व्यतीत हो जाने पर ये व्यक्ति पतित सावित्रिक् हो जाते है। इस पतिति सावित्री वाले व्यक्तियों का किसी भी आचार्य को उपनयन नही कराना चाहिये। इन्हे वेदादि पढ़ाने, यज्ञादि कराने एवं इनसे किसी तरह का सामान्य व्यवहार करने का समाज में निषेध पाया जाता है। गर्भाधान से उपनयन तक के सभी संस्कारों के लिये समय निश्चित है। किसी कारण वश उसका उल्लंघन होने पर श्रौत सूत्र की विधि से प्रयश्चित्त की विधि सम्पादित करना चाहिये।

तीन पीढ़ी तक यदि सावित्री का पतन हो, नियत काल में उपदेश न हो तो ऐसे व्यक्ति की सन्तान का न तो कोई संस्कार होगा न ही वेदादि का अध्यापन ही होगा। यदि कोई प्रायश्चित्त करना चाहे तो वह व्रात्य स्तोम यज्ञ करके शुद्ध हो सकता है। उसके सभी संस्कार फिर से होगें।

व्रात्य स्तोम के सन्दर्भ में मिलता है कि व्रात्य चार प्रकार के होते है- निन्दित, कनिष्ठ, ज्येठ, हीनाचार। निन्दित - पापाचारी, जातिवहिष्कृत्, नृशंस तथा व्रात्य। कनिष्ठ- संस्कार हीन, जातिबहिष्कृत् युवक। ज्येष्ठ - पुस्त्वहीन शुद्ध व्रात्य, हीनाचार- नृत्योपजीवी इत्यादि। व्रात्या स्तोम में निम्नलिखित वस्तुओं का दान होता है- तिरछी बधी हुयी पगडी, चाबुक, ज्या हीन धनुष, काला वस्त्र, अमार्गगामी रथ, चांदी का कण्ठाभरण, कम्बल, रस्सी व काले जूते। ये सभी वस्तुये मागध ब्राह्मण को अथवा व्रात्य कर्म तत्पर ब्राह्मण को दे और तैंतीस गोदान करें। तब वह व्यक्ति संस्कार्य होता है।

वीरमित्रोदय में उद्धृत करते हुये बतलाया गया है कि वह कृत्य जिसके द्वारा व्यक्ति, गुरु, वेद, यम, नियम का व्रत और देवता के सामिप्य के लिये दीक्षित किया जाय उपनयन के अन्तर्गत आता है। उपनयन एक ऐसा संस्कार है जो द्विजत्व पद की प्राप्ति कराता है। आपस्तम्ब और भरद्वाज उपनयन

का उद्देश्य विद्या की प्राप्ति बताते है। याज्ञवल्क्य के अनुसार उपनयन का सर्वोच्च प्रयोजन वेदों का अध्ययन करना है। साधारण दृष्टि से यदि देखा जाय तो उपनयन संस्कार से संस्कारित बालक का जीवन एक प्रकार के विशिष्ट नियमों से आबद्ध हो जाता है।

ब्रह्मचर्य जीवन को पूर्ण करने पर उसकी स्नातक संज्ञा होती है। स्नातक तीन प्रकार के शास्त्रों में बतलाये गये है जिन्हें विद्या स्नातक, व्रत स्नातक और विद्याव्रतस्नातक जाना जाता है। जो कुमार वेद का अध्ययन तो करता है परन्तु व्रत का पूरी तरह निर्वाह नही करता उसे विद्या स्नातक कहा गया है। जो स्नातक व्रत पालन करने पर भी वेद का अन्त नही कर पाता उसे व्रत स्नातक कहते है। वेद एवं व्रत दोनों को पूरा करने वाले स्नातक को विद्याव्रतस्नातक कहा गया है। आचार्य के बुलाने पर यदि कुमार सोया हो तो बैठकर, बैठा हो तो खड़ा होकर, खड़ा हो तो दौड़कर बोले उस ब्रह्मचारी को धरती पर अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। ऐसे स्नातक अपने ब्रह्मचर्य व्रत को पूरा करके संसार में एक नया कीर्तिमान स्थापित करते है।

अतः उपरोक्त अध्ययन से आपको उपकरण संस्कार का परिचय एवं उसका महत्व क्या है ? इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे है जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रोढ़ हो जायेगा। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 3

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- ब्राह्मण वटु का उपनयन संस्कार कराना चाहिये-

क- आंठवें वर्ष में , ख- ग्यारहवें वर्ष में , ग- बारहवें वर्ष में, घ- चौदहवें वर्ष में।

प्रश्न 2- क्षत्रिय कुमार का उपनयन संस्कार कराना चाहिये-

क- आंठवें वर्ष में , ख- ग्यारहवें वर्ष में , ग- बारहवें वर्ष में, घ- चौदहवें वर्ष में।

प्रश्न 3- वैश्य कुमार का उपनयन संस्कार कराना चाहिये-

क- आंठवें वर्ष में , ख- ग्यारहवें वर्ष में , ग- बारहवें वर्ष में, घ- चौदहवें वर्ष में।

प्रश्न 4- ब्रह्मवर्चस् कामना हेतु उपनयन संस्कार कराना चाहिये-

क- पाचवें वर्ष में , ख- ग्यारहवें वर्ष में , ग- बारहवें वर्ष में, घ- सांतवें वर्ष में।

प्रश्न 5- दीर्घायुष्य हेतु उपनयन संस्कार कराना चाहिये-

क- आंठवें वर्ष में , ख- ग्यारहवें वर्ष में , ग- बारहवें वर्ष में, घ- चौदहवें वर्ष में।

प्रश्न 6- ऐश्वर्य हेतु उपनयन संस्कार कराना चाहिये-

क- आंठवें वर्ष में , ख- नवें वर्ष में , ग- बारहवें वर्ष में, घ- चौदहवें वर्ष में।

प्रश्न 7- पशुओं के लिये उपनयन संस्कार कराना चाहिये-

क- आंठवें वर्ष में , ख- ग्यारहवें वर्ष में , ग- बारहवें वर्ष में, घ- चौदहवें वर्ष में।

प्रश्न 8- तेजस्विता हेतु उपनयन संसकार कराना चाहिये-

क- आंठवें वर्ष में , ख- ग्यारहवें वर्ष में , ग- बारहवें वर्ष में, घ- चौदहवें वर्ष में।

प्रश्न 9- स्नातक कितने प्रकार के होते हैं?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

प्रश्न 10- व्रात्य कितने प्रकार के होते हैं?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

4.4 कर्णवेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा का मुहूर्त्त-

इससे पूर्व के प्रकरण में आपने कर्णवेध, चूड़ाकरण, उपनयन संस्कार का परिचय एवं महत्त्व जाना। इस प्रकरण में कर्णवेध, चूड़ाकरण, उपनयन एवं दीक्षा के मुहूर्त्त के बारे में आप जानेगें। इसके ज्ञान से तत्संबंधी मुहूर्त्त के ज्ञान में आप सक्षम हो जावेगें।

4.4.1 कर्णवेध संस्कार का मुहूर्त्त विचार-

मुहूर्त्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में कर्णवेध संस्कार के मुहूर्त्त का प्रतिपादन करते हुये बतलाया गया है कि-

हित्वैतांश्चैत्रपौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्ता।
युग्माब्दं जन्मतारामृतुमुनिवसुभिः सम्मिते मास्यथो वा।
जन्माहात्सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारे।
अथौजाब्दे विष्णु युग्मादितिलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः।।

अर्थात् कर्णवेध संस्कार हेतु चैत्र एवं पौष मास को छोड़ देना चाहिये। चैत्र मास का निषेध मीनार्क के कारण किया गया है। मीनार्क का मतलब मीन राशि के सूर्य से है। उसी प्रकार पौष मास का निषेध धन्वर्क यानी धनु राशि के सूर्य से है जिसे खर मास की संज्ञा दी गयी है। अवम तिथि यानी क्षय तिथि को छोड़ देना चाहिये।

व्यवहारोच्चय में कहा गया है कि-

न जन्ममासे न च चैत्रपौषे न जन्मतारासु हरौ प्रसुप्ते।

तिथावरिक्ते न च विष्टिदुष्टे कर्णस्य वेधो न समानवर्षे।।

इसमें हरिशयन काल को भी त्यागने के लिये कहा गया है। हरिशयनी एकादशी से देवोत्थनी एकादशी तक के काल को हरिशयन का काल कहा गया है। अर्थात् आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्त्तिक शुक्ल दशमी तक के काल को हरिशन काल कहा जाता है। जन्म मास यानी जन्म का महीना और रिक्ता तिथि यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथि को त्याग देना चाहिये। इस सन्दर्भ में प्रयोग पारिजात में लिखा गया है कि-

यो जन्ममासे क्षुरकर्म यात्रां कर्णस्य वेधं कुरुते हि मोहात्।
मूढः स रोगी धनपुत्रनाशं प्राप्नोति गूढ़ं निधनं तदाशु।।

अर्थात् जो जन्म मास में क्षौर कर्म, यात्रा एवं कर्णवेध संस्कार करते हैं वे रोगी होते हैं तथा उनके धन एवं पुत्र का नाश होता है। युग्माब्द यानी सम वर्ष को छोड़कर विषम वर्षों में कर्णवेध संस्कार करा सकते है। जन्म तारा यानी जन्म नक्षत्र से पहली, दसवीं और उन्नीसवीं नक्षत्र को छोड़कर जन्म से छठवें, सातवें एवं आठवें महीने में अथवा जन्म दिन से बारहवें या सोलहवें दिन, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा सोम वारों में, विषम वर्षों में, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक यानी मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा एवं लघु संज्ञक यानी हस्त, अश्विनी, पुष्य इन दश नक्षत्रों में बालकों का कर्णवेध उत्तम होता है।

कर्ण वेध मुहूर्त्त में लग्न शुद्धि का विचार अवश्य करना चाहिये। इसका विचार करते हुये कहा गया है कि-

संशुद्धे मृतिभवने त्रिकोणकेन्द्रत्र्यायस्थैः शुभखचरैः कविज्यलग्ने।
पापाख्यैररिसहजायगेहसंस्थैर्लग्नस्थे त्रिदशगुरौ शुभावहः स्यात्।।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि कर्णवेध लग्न से अष्टम स्थान शुद्ध होना चाहिये। यानी अष्टम स्थान में कोई भी ग्रह न हो। शुभ ग्रह त्रिकोण में, केन्द्र में, आय भाव में, तीसरे स्थान में स्थित हों, शुक्र एवं गुरु लग्न में हों, पापग्रह यानी क्षीण चन्द्र, सूर्य, मंगल, शनि, राहु एवं केतु तृतीय, षष्ठ एवं एकादश स्थान में हो तो कर्णवेध करना चाहिये। बालकों का पहले दायां फिर बायां तथा बालिकाओं का पहले बायां फिर दायां कान का छेदन करना चाहिये।

अतः उपरोक्त अध्ययन से आपको कर्णवेध संस्कार के मुहूर्त्त क्या है ? इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे है जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 4

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- चैत्र मास को क्यों छोड़ना चाहिये-

क- मीनार्क के कारण , ख- मेषार्क के कारण , ग- वृषार्क के कारण, घ- मिथुनार्क के कारण।

प्रश्न 2- पौष मास को क्यों छोड़ना चाहिये-

क- मीनार्क के कारण , ख- धन्वर्क के कारण , ग- वृषार्क के कारण, घ- मिथुनार्क के कारण।

प्रश्न 3- अवम तिथि क्या है-

क- वृद्धि तिथि , ख- तिथि , ग- क्षय तिथि, घ- गत तिथि।

प्रश्न 4- रिक्ता तिथि क्या है-

क- प्रतिपदा तिथि , ख- द्वितीया तिथि , ग- तृतीया तिथि, घ- चतुर्थी तिथि।

प्रश्न 5- युग्माब्द क्या है?

क- सम वर्ष, ख- विषम वर्ष, ग- अधिक वर्ष, घ- क्षय वर्ष।

प्रश्न 6- अष्टम स्थान शुद्ध कब होता है?

क- पूर्ण रिक्त रहता है, ख- अर्धरिक्त रहता है, ग- पापग्रह युक्त होता है, घ- शुभग्रह युक्त होता है?

प्रश्न 7- सप्तम स्थान क्या है?

क- त्रिकोण, ख- केन्द्र, ग- अरि स्थान, घ- आय स्थान।

प्रश्न 8- जन्म तारा यानी जन्म नक्षत्र से कौन नक्षत्र त्याज्य है?

क-दसवीं, ख- ग्यारहवीं, ग- बारहवीं, घ- तेरहवीं।

प्रश्न 9- हरिशयनी एकादशी कब होती है?

क- वैशाख में, ख- ज्येष्ठ में, ग- आषाढ़ में, घ- श्रावण में।

प्रश्न 10- देवोत्थनी एकादशी कब होती है?

क-भाद्रपद में, ख- आश्विन में, ग-कार्त्तिक में, घ- मार्गशीर्ष में।

4.4.2 चूड़ाकरण संस्कार का मुहूर्त्त-

इससे पूर्व के प्रकरण में आपने कर्णवेध संस्कार के बारे में जाना। अब हम चूड़ाकरण संस्कार के विषय में चर्चा करने जा रहे है। चूड़ाकरण संस्कार के बारे में बतलाते हुये कहा गया है कि-

चूडावर्षात्तृतीयात् प्रभवति विषमे अष्टार्करिक्त्याद्यषष्ठी।

पर्वोनाहे विचैत्रोदगयनसमये ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानाम्।
वारे लग्नांशयोश्चास्वभनिधनतनौ नैधने शुद्धियुक्ते।
शाक्रोपेतैर्विमैत्रैर्मृदुलघुचरभैरायषट्त्रिस्थपापैः।।

अर्थात् चूड़ाकरण संस्कार जन्म समय से अथवा गर्भाधान से तीसरे आदि विषम वर्ष में करना चाहिये। अष्ट अर्थात् अष्टमी, अर्क अर्थात् द्वादशी, रिक्ता यानी चतुर्थी, नवमी व चतुर्दशी, आद्य यानी प्रतिपदा, षष्ठी तिथियों और पर्वों को छोड़कर अन्य द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं त्रयोदशी तिथियों में चैत्रमास को छोड़कर, उदगयन समय यानी उत्तरायन यानी माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ मासों में, ज्ञ यानी बुध, इन्दु यानी सोम, शुक्र एवं इज्य यानी गुरु वारों में, और इन्ही की राशियों यानी वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु व मीन में और इन्ही के नवांश यानी नवें अंश में, जिस बालक का मुण्डन संस्कार करना हो उसकी जन्म राशि ओर जन्म लग्न से आठवीं राशि के लग्न को छोड़कर अन्य लग्नों में, लग्न से आंठवें स्थान में कोई शुभ या पापग्रह न हो, ज्येष्ठा से युक्त अनुराधा सहित मृदुसंज्ञक यानी मृगशिरा, रेवती, चित्रा नक्षत्रों में, चर संज्ञक यानी स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा, लघु संज्ञक यानी हस्त, अश्विनी, पुष्य इन बारह नक्षत्रों में, लग्न से तीन, छ, ग्यारह स्थानों में पापग्रह यानी सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु के रहने पर चूड़ाकर्म यानी मुण्डन संस्कार शुभ होता है। पराशर मुनि के अनुसार अष्टम में शुक्र की स्थिति अशुभ नही होती है।

चूड़ाकरण लग्न या केन्द्र में ग्रहों की स्थिति के अनुसार फलों का वर्णन किया गया है जो अधोलिखित है-

क्षीणचन्द्रकुजसौरिभास्करैर्मत्युशस्त्रमृतिपंगुता ज्वराः।
स्यु क्रमेण बुधजीवभार्गवैः केन्द्रगैश्चशुभमिष्टतारया।।

अर्थात् चूड़ाकरणकालिक लग्न से केन्द्र में क्षीड़ चन्द्रमा हो तो बालक की मृत्यु, मंगल हो तो शस्त्र से मृत्यु, शनि हो तो पंगुता, सूर्य हो तो ज्वर होता है और बुध , गुरु, शुक्र केन्द्र में हो तथा तारा दो, चार, छ, सात, नव हो तो चूड़ाकर्म शुभ होता है।

चौल कर्म में तारा बल को आवश्यक बतलाया गया है। मुहूर्त्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि -

तारादौष्ट्ये अब्जे त्रिकोणोच्चगे वा क्षौरं सत्स्यात्सौम्यमित्रस्ववर्गे।
सौम्ये भेब्जे शोभने दुष्टतारा शस्ता ज्ञेया क्षौरयात्रादिकृत्ये।।

अर्थात् तारा के दुष्ट यानी एक, तीन, पांच, सात होने पर भी यदि चन्द्रमा मुण्डन लग्न से त्रिकोण में हो, अपनी उच्च राशि हो, या शुभग्रह के धर में हो, या अपने मित्र के वर्ग में हो या अपने ही वर्ग में हो तो क्षौर कर्म शुभ होता है। यदि चन्द्रमा गोचर में शुभ स्थान पर हो और शुभ ग्रह की राशि में भी हो तो क्षौर कर्म यात्रा आदि में दुष्ट तारा को दोष नष्ट हो जाता है।

अतः उपरोक्त अध्ययन से आपको चूड़ाकरण संस्कार के मुहूर्त्त क्या है ? इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे है जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 5 उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- विचैत्रो शब्द का क्या होगा ?

क- चैत्र मास को छोड़कर, ख- चित्त को छोड़कर,

ग- चैत्र मास को लेकर, घ- चित्रा नक्षत्र को छोड़कर।

प्रश्न 2- उदगयनसमय क्या है?

क- उत्तरायण, ख- दक्षिणायन, ग- याम्य गोल, घ- लिखित सभी।

प्रश्न 3- ज्ञ शब्द का अर्थ क्या है?

क- सोम, ख- मंगल, ग- बुध, घ- गुरु।

प्रश्न 4- इन्दु शब्द का अर्थ क्या है?

क- सोम, ख- मंगल, ग- बुध, घ- गुरु।

प्रश्न 5- इज्य शब्द का अर्थ क्या है?

क- सोम, ख- मंगल, ग- बुध, घ- गुरु।

प्रश्न 6-चूड़ाकरणकालिक लग्न से केन्द्र में क्षीड़ चन्द्रमा हो तो फल होता है?

क-मृत्यु, ख- शस्त्र से मृत्यु, ग-पंगुता, घ- ज्वर।

प्रश्न 7-चूड़ाकरणकालिक लग्न से केन्द्र में मंगल हो तो फल होता है?

क-मृत्यु, ख- शस्त्र से मृत्यु, ग-पंगुता, घ- ज्वर।

प्रश्न 8-चूड़ाकरणकालिक लग्न से केन्द्र में शनि हो तो फल होता है?

क-मृत्यु, ख- शस्त्र से मृत्यु, ग-पंगुता, घ- ज्वर।

प्रश्न 9-चूड़ाकरणकालिक लग्न से केन्द्र में सूर्य हो तो फल होता है?

क-मृत्यु, ख- शस्त्र से मृत्यु, ग-पंगुता, घ- ज्वर।

प्रश्न 10-चूड़ाकरण में बुध, गुरु, शुक्र केन्द्र में हो तथा तारा दो, चार, छ, सात, नव हो तो चूड़ाकर्म

क- शुभ होता है। ख- अशुभ होता है। ग- माता को कष्ट होता है। घ- पिता को कष्ट होता है।

इस प्रकार आपने चूड़ाकरण संस्कार के मुहूर्त्त के बारे में जाना। अब हम उपनयन एवं दीक्षा के मुहूर्त्तों के बारे में चिन्तन करेगें।

4.4.3 उपनयन एवं दीक्षा मुहूर्त्त

उपनयन संस्कार के परिचय में आपको उपनयन के बारे में बताया जा चुका है। अब हम इस प्रकरण में उपनयन कब कराना चाहिये, दीक्षा के लिये क्या मुहूर्त्त एवं फल होगा इस पर विचार करेगें। इसके अध्ययन से उपनयन का काल निर्धारित करने का ज्ञान आपको हो जायेगा।

उपनयन संस्कार को व्रतबन्ध शब्द से भी प्रायः सम्बोधित किया जाता है। इसमें नक्षत्र इत्यादिकों का चिन्तन करते हुये कहा गया है-

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वा रौद्रेर्कविद्गुरुसितेन्दुदिने व्रतं सत्।

द्वित्रीषुरुद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च कृष्णादिमत्रिलवके पि न चापरान्हे।।

अर्थात् क्षिप्र संज्ञक यानी हस्त, अश्विनी, पुष्य, ध्रुव संज्ञक यानी रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, आश्लेषा, चर संज्ञक यानी स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, मृदु संज्ञक यानी मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों पूर्वा एवं आर्द्रा इन बाईस नक्षत्रों में, रवि, बुध, गुरु, शुक्र तथा सोम इन पांच वारों में, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, एकादशी, द्वादशी व दशमी तिथियों में एवं कृष्णपक्ष के प्रथम त्रिभाग यानी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी तिथियों में उपनयन संस्कार उत्तम होता है। उपनयन दिन के अपरान्ह में नही करना चाहिये। मध्यान्ह में मध्यम श्रेणी का होता है।

इस सन्दर्भ में आचार्य वसिष्ठ, कश्यप एवं नारद के मत में हस्त से तीन, श्रवण से तीन, रोहिणी से दो, पुनर्वसु से दो, रेवती से दो, तीनों उत्तरा और अनुराधा ये सोलह नक्षत्र ही उपनयन में लिये गये हैं। ब्राह्मण को पुनर्वसु नक्षत्र में उपनयन निषिद्ध माना गया है। अतः उपनयन में यही नक्षत्र उत्तम है। आर्द्रा, आश्लेषा, तीनों पूर्वा, तथा मूल ये छ नक्षत्र, ब्राह्मण के लिये पुनर्वसु सहित सात नक्षत्र वसिष्ठ आदि के मत से निषिद्ध होते हुये भी आचार्य के मत में विहित है। अतः इनको मध्यम श्रेणी का समझना चाहिये। चैत्र का महीना और मीन राशि के सूर्य में उपनयन अतिप्रशस्त होता है। ज्येतिर्निबन्ध नामक ग्रन्थ में लिखा गया है कि-

जन्मभाद् दुष्टगे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ।

मौंजीबन्धः शुभः प्रोक्तं चैत्रे मीनगते रवौ।।

अन्यत्र लिखा गया है कि-

गोचराष्टकवर्गाभ्यां यदि शुद्धिर्न जायते।

तदोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते गुरौ।।

तथा-

जीवभार्गवयोरस्ते सिंहस्थे देवतागुरौ।

मेखलाबन्धनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ।।

व्रतबन्ध में लग्न भंग योग की चर्चा करते हुये बतलाया गया है कि-

कवीज्यचन्द्रलग्नपा रिपौ मृतौ व्रते अधमाः।

व्यये अब्जभार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खलाः।।

बालक का उपनयन ऐसे लग्न में निश्चित करना चाहिये जिसके छठे और आठवें स्थान में शुक्र, बृहस्पति एवं चन्द्रमा स्थित होकर लग्न के स्वामी न हो। बारहवें स्थान में चन्द्रमा और शुक्र न हो तथा लग्न से आठवें एवं पांचवें स्थान में पापग्रह यानी सूर्य, भौम, शनि, राहु एवं केतु न हो। इस प्रकार की ग्रह स्थिति बालक की उन्नति में बाधक होती है।

सामान्य प्रकार से लग्न शुद्धि की चर्चा करते हुये बतलाया गया है कि उपनयन में लग्न से छठें, आठवें या बारहवें स्थानों को छोड़कर अन्य स्थानों में शुभग्रह पड़े हो तो शुभफलदायक होते हैं एवं तीन, छ तथा ग्यारहवें स्थान में पापग्रह उत्तम होते है। तथा पूर्ण चन्द्रमा वृषराशि का या कर्क राशि का होकर उपनयन लगन में हो तो उत्तम होता है।

अधिपतियों के संबंध में यह श्लोक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है-

विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ कुजार्कौ राजन्यानामोषधीशो विशां च।

शूद्राणां ज्ञश्चान्त्यजानां शनिः स्याच्छाखेशाः स्युर्जीवशुक्रारसौम्या।।

अर्थात् ब्राह्मणों के स्वामी शुक्र और वृहस्पति है। क्षत्रियों के स्वामी मंगल और सूर्य है। वैश्यों के स्वामी चन्द्रमा है, शूद्रों के स्वामी बुध और अन्त्यजों के स्वामी शनि है। ऋग्वेद के स्वामी बृहस्पति, यजुर्वेद के स्वामी शुक्र, सामवेद के स्वामी मंगल, अथर्ववेद के स्वामी बुध होते है।

विशेष बतलाते हुये कहा गया है कि प्रथम गर्भ से उत्पन्न बालकों का उपनयन जन्म नक्षत्र, जन्म मास, जन्म लगन में हो तो वह बालक बड़ा विद्वान होता है। क्षत्रिय एवं वैश्य के प्रथम गर्भ को छोड़करे दूसरे गर्भ से उत्पन्न बालकों का उपनयन होने से वे भी अधिक विद्वान् होते हैं। बृहस्पति अपनी उच्च राशि, अपनी राशि, अपने मित्र की राशि, मकर , कुम्भ राशि में भी अपने नवांश और

वर्गोत्तम में वृहस्पति हो तो जन्म राशि से चार, आठ, बारहवीं राशि पर होते हुये भी उत्तम होता है। अपनी नीच राशि और शुभ राशि में हो तो गोचर से शुभ होने पर भी अशुभ फलदायक ही होते हैं।

कालातिपत्ति में लड़के के उपनयन में और लड़की के विवाह में यदि उक्त प्रकार से गुरु शुभ न होता हो तो अष्टक वर्ग से बृहस्पति की शुद्धि देखनी चाहिये। राजमार्तण्ड में लिखा गया है कि-

अष्टवर्गेण ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु।
सूक्ष्माष्टवर्गसंशुद्धिः स्थूला शुद्धिस्तु गोचरे।।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि गोचर से शुद्ध गुरु होने पर भी यदि अष्टक वर्ग से उत्तम गुरु नही है तो उपनयन एवं विवाह अशुभ ही होते है।

व्रतबन्ध में प्रायः इन तत्वों का निषेध देखने को मिलता है-

कृष्णे प्रदोषे अनध्याये शनौ निश्यपरान्हके।
प्राक् सन्ध्यागर्जिते नेष्टो व्रतबन्धो गलग्रहो।।

अर्थात् कृष्णपक्ष में यानी षष्ठी से अमावास्या तक, प्रदोष के दिन यानी द्वादशी तिथि को अर्धरात्रि के पहले यदि त्रयोदशी लग जाय, षष्ठी को डेढ़ प्रहर रात के पहले सप्तमी आ जाय और तृतीया को एक प्रहर के पहले चतुर्थी प्रारम्भ हो जाय तो ये तीनों प्रदोष कहे जाते है। प्रदोष के दिन उपनयन करना मना है। प्रदोष समय में वेदों और वेदांगों का अध्ययन-अध्यापन भी नही करना चाहिये। अनध्याय भी उपनयन में वर्जित है। अनध्याय का मतलब आषाढ़, ज्येष्ठ, पौष और माघ के शुक्लपक्ष में क्रम से दशमी, द्वितीया, एकादशी, द्वादशी अर्थात् आषाढ़ शुक्ल दशमी, ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया, पौष शुक्ल एकादशी और माघ शुक्ल द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या, प्रतिपदा, अष्टमी और संक्रान्ति के दिन ये सब व्रतबन्ध में अनध्याय है। इनमें उपनयन संस्कार नही करना चाहिये। व्रतबन्ध में शनिवार दिन भी वर्जित है। अपरान्ह काल यानी दिनमान के तृतीयांश में, रात्रि में, जिस दिन प्रातः काल मेध गर्जन हो उस दिन और गलग्रह तिथियों यानी त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पतिपदा, चतुर्थी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी तिथियों में उपनयन करना शुभ नही होता है।

उपनयन किस नवांश में किया जा रहा है इसका भी विचार इस प्रकार किया गया है-

क्रूरो जडो भवेत् पापः पटुः षट्कर्मकृद् बटुः।
यज्ञार्थभुक् तथा मूर्खो रव्याद्यंशे तनौ क्रमात्।।

अर्थात् उपनयन लग्न में यदि सूर्य का नवांश हो तो उपनीत बालक क्रूर स्वभाव का होता है। चन्द्रमा का नवमांश हो तो जड़ होता है। मंगल का नवांश हो तो पापकर्म करने वाला होता है। बुध का नवांश हो तो पटु होता है। बृहस्पति का नवांश हो तो षट्कर्मा होता है। शुक्र का नवांश हो तो यज्ञकर्ता और धनवान होता है। शनि का नवमांश हो तो बालक मूर्ख होता है।

उपनयन के समय किसी भी राशि में यदि चन्द्रमा शुभ राशि के तृतीय, षष्ठ, द्वितीय, सप्त, नवम या द्वादश नवांश में हो तो वह उपनीत बालक विद्या में रुचि रखने वाला होगा। पापग्रह की राशि प्रथम, अष्टम, पंचम, दशम एवं एकादश के नवांश में हो तो अतिदरिद्र होता है। अपने नवांश में हो तो दुखी होता है। किन्तु श्रवण नक्षत्र और पुनर्वसु नक्षत्र में चन्द्रमा हो और कर्क का नवांश हो तो धनवान् होता है। अर्थात् श्रवण नक्षत्र और पुनर्वसु के चतुर्थ चरण में चन्द्रमा रहे तो धनी होता है।

इसी प्रकार यह भी विचार किया गया है कि उपनयन काल में किस ग्रह के रहने से क्या फल प्राप्त होता है। जैसे-

राजसेवी वैश्यवृत्तिः शस्त्रवृत्तिश्च पाठकः।
प्राज्ञो अर्थवान् म्लेचछसेवी केन्द्रे सूर्यादिखेचरैः।।

अर्थात् उपनयन के समय में सूर्य केन्द्र में हो तो उपनीत बालक राजा का नौकर होता है। चन्द्रमा केन्द्र में हो तो वैश्यवृत्ति करने वाला होता है। मंगल केन्द्र में हो तो शस्त्रवृत्ति वाला होता है। बुध केन्द्र में हो तो अध्यापक होता है। गुरु केन्द्र में हो तो विद्वान् होता है। शुक्र केन्द्र में हो तो धनवान होता है। और शनि केन्द्र में हो तो नगरपालिका इत्यादि सेवा में होता है। इस प्रकार उपनयन में आचार्य ब्रह्मचारी को उपदेश देता है जैसे- वर्णारम विहित कर्म करो। दिन में कभी मत सोओ। अपनी बोली पर नियंत्रण रखो। अग्नि में हवनार्थ समिदाधान करो। भोजन के पूर्व एवं पश्चात् जल का आचमन करो। इस प्रकार उपदेश हो जाने पर मन्त्र दीक्षा का कार्यक्रम होता है।

दीक्षा- उपदेश देने के बाद होम की अग्नि के उत्तर में आचार्य के पैरों को पकड़कर बैठे हुये आचार्य को देखते हुये और उनसे देखे जाते हुये कुमार को सावित्री मन्त्र सिखाये। कुछ आचार्यों के विचार से दाहिनी ओर खड़े या बैठे हुये कुमार को आचार्य सावित्री मन्त्र सिखलाये। आचार्य सावित्री मन्त्र पहले एक एक पाद स्वयं कहकर फिर शिष्य से कहलवाये। फिर आधी आधी ऋचा, तीसरी बार सम्पूर्ण मन्त्र आचार्य के साथ शिष्य दोहरा दे। ब्राह्मण कुमार को उपनयन के बाद तत्क्षण आचार्य गायत्री छन्द में निबद्ध सिखलावे। क्योकि वेद का वचन है आग्नेयो वै ब्र्राह्मणः अर्थात् ब्राह्मण में अग्निदेव का अंश रहता है। क्षत्रिय कुमार को त्रिष्टुप् छन्द में निबद्ध सावित्री मन्त्र सिखलावे। वैश्य कुमार को जगती छन्द में निबद्ध सावित्री मन्त्र सिखलाये। सभी को गायत्री छन्द में सावित्री मन्त्र सिखलाया जा सकता है। सावित्री ग्रहण के पश्चात् ब्रह्मचारी को प्रतिदिन समिदाधान करना चाहिये।

उपनयन संसकार एवं दीक्षा के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे है जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- 6

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- उपनयन लग्न में यदि सूर्य का नवांश हो तो उपनीत बालक होता है-

क- क्रूर , ख- जड़, ग- पापकर्मकर्ता, घ- पटु।

प्रश्न 2- उपनयन लग्न में यदि चन्द्र का नवांश हो तो उपनीत बालक होता है-

क- क्रूर , ख- जड़, ग- पापकर्मकर्ता, घ- पटु।

प्रश्न 3- उपनयन लग्न में यदि मंगल का नवांश हो तो उपनीत बालक होता है-

क- क्रूर , ख- जड़, ग- पापकर्मकर्ता, घ- पटु।

प्रश्न 4- उपनयन लग्न में यदि बुध का नवांश हो तो उपनीत बालक होता है-

क- क्रूर , ख- जड़, ग- पापकर्मकर्ता, घ- पटु।

प्रश्न 5- उपनयन लग्न में यदि गुरु का नवांश हो तो उपनीत बालक होता है-

क- षट्कर्मा , ख- यज्ञकर्ता, ग- मूर्ख , घ- पटु।

प्रश्न 6- उपनयन लग्न में यदि शुक्र का नवांश हो तो उपनीत बालक होता है-

क- षट्कर्मा , ख- यज्ञकर्ता, ग- मूर्ख , घ- पटु।

प्रश्न 7- उपनयन लग्न में यदि शनि का नवांश हो तो उपनीत बालक होता है-

क- षट्कर्मा , ख- यज्ञकर्ता, ग- मूर्ख , घ- पटु।

प्रश्न 8-उपनयन के समय में सूर्य केन्द्र में हो तो उपनीत बालक होता है-

क- राज सेवी, ख- वैश्य वृत्ति, ग- शस्त्रवृत्ति, घ- अध्यापक।

प्रश्न 9-उपनयन के समय में चन्द्र केन्द्र में हो तो उपनीत बालक होता है-

क- राज सेवी, ख- वैश्य वृत्ति, ग- शस्त्रवृत्ति, घ- अध्यापक।

प्रश्न 10-उपनयन के समय में मंगल केन्द्र में हो तो उपनीत बालक होता है-

क- राज सेवी, ख- वैश्य वृत्ति, ग- शस्त्रवृत्ति, घ- अध्यापक।

प्रश्न 11-उपनयन के समय में बुध केन्द्र में हो तो उपनीत बालक होता है-

क- राज सेवी, ख- वैश्य वृत्ति, ग- शस्त्रवृत्ति, घ- अध्यापक।

4.5 सारांश-

इस ईकाई में आपने कर्णवेध, चूड़ाकरण एवं उपनयन तथा दीक्षा के मुहूर्त्तों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया। इस ज्ञान के बिना लोग इन संस्कारों का सम्पादन नही कर सकते । क्योंकि प्रत्येक कार्य का

आरम्भ करने वाला व्यक्ति यह भली भंति सोचता है कि कार्य निकर्वघ्नता पूर्वक सम्पन्न होना चाहिये। सम्पन्नता के साथ - साथ निश्चित उद्देश्य को भी प्राप्त करने में वह कार्य सफलता प्रदान करे। और वह तभी सम्भव हो सकता जब उचित मुहूर्त्त से संस्कार करायें जाये।

कर्णबेध संस्कार में कहा गया है कि युग्माब्द यानी सम वर्ष को छोड़कर विषम वर्षों में कर्णवेध संस्कार करा सकते है। जन्म तारा यानी जन्म नक्षत्र से पहली, दसवीं और उन्नीसवीं नक्षत्र को छोड़कर जन्म से छठवें, सातवें एवं आठवें महीने में अथवा जन्म दिन से बारहवें या सोलहवें दिन, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा सोम वारों में, विषम वर्षों में, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक यानी मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा एवं लघु संज्ञक यानी हस्त, अश्विनी, पुष्य इन दश नक्षत्रों में बालकों का कर्णवेध उत्तम होता है।

चूड़ाकरण संस्कार जन्म समय से अथवा गर्भाधान से तीसरे आदि विषम वर्ष में करना चाहिये। अष्ट अर्थात् अष्टमी, अर्क अर्थात् द्वादशी, रिक्ता यानी चतुर्थी, नवमी व चतुर्दशी, आद्य यानी प्रतिपदा, षष्ठी तिथियों और पर्वों को छोड़कर अन्य द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं त्रयोदशी तिथियों में चैत्रमास को छोड़कर, उदगयन समय यानी उत्तरायन यानी माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ मासों में, ज्ञ यानी बुध, इन्दु यानी सोम, शुक्र एवं इज्य यानी गुरु वारों में, और इन्ही की राशियों यानी वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु व मीन में और इन्ही के नवांश यानी नवें अंश में, जिस बालक का मुण्डन संस्कार करना हो उसकी जन्म राशि ओर जन्म लग्न से आठवीं राशि के लग्न को छोड़कर अन्य लग्नों में, लग्न से आंठवें स्थान में कोई शुभ या पापग्रह न हो, ज्येष्ठा से युक्त अनुराधा रहित मृदुसंज्ञक यानी मृगशिरा, रेवती, चित्रा नक्षत्रों में, चर संज्ञक यानी स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा, लघु संज्ञक यानी हस्त, अश्विनी, पुष्य इन बारह नक्षत्रों में, लग्न से तीन, छ, ग्यारह स्थानों में पापग्रह यानी सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु के रहने पर चूड़ाकर्म यानी मुण्डन संस्कार शुभ होता है।

उपनयन संसकार में क्षिप्र संज्ञक यानी हस्त, अश्विनी, पुष्य, ध्रुव संज्ञक यानी रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, आश्लेषा, चर संज्ञक यानी स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, मृदु संज्ञक यानी मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों पूर्वा एवं आर्द्रा इन बाईस नक्षत्रों में, रवि, बुध, गुरु, शुक्र तथा सोम इन पांच वारों में, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, एकादशी, द्वादशी व दशमी तिथियों में एवं कृष्णपक्ष के प्रथम त्रिभाग यानी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी तिथियों में उपनयन संस्कार उत्तम होता है। उपनयन दिन के अपरान्ह में नही करना चाहिये। मध्यान्ह में मध्यम श्रेणी का होता है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

राजसेवी - राजा की सेवा करने वाला, वैश्यवृत्ति- व्यापार से आजीविका चलाने वाला, शस्त्रवृत्ति- शस्त्र कार्य से आजीविका चलाने वाला, पाठक- पढ़ाने वाला, प्राज्ञ- ज्ञानवान, अर्थवान्- धनवान, म्लेचछसेवी- म्लेच्छों की सेवा करने वाला, खेचर- ग्रह, क्रूर- कठोर या उग्र, जड़- मूर्ख, पटु- कुशल, षट्कर्मकृद्- छः कर्म करने वाला, बटु- उपवीती बालक, विप्राधीश- विप्रों के स्वामी, भार्गव-शुक्र, इज्य- गुरू, कुज- मंगल, अर्क- सूर्य, राजन्य- क्षत्रिय, ओषधीश- औषधियों के स्वामी, विशां - वैश्य, ज्ञ- बुध, छाखेशाः- शाखाओं के स्वामी, जीव- गुरु, आर- मंगल, सौम्य- बुध, जन्मभाद्- जन्म नक्षत्र से, दुष्टगे- दुष्ट स्थान, शत्रुभे - शत्रु राशि, मौंजीबन्ध- उपनयन, प्रोक्त- कहा गया है, चैत्रे - चैत्र मास में मीनगते- मीन राशि में,जीव- गुरु, सिंहस्थ- सिंह राशि में स्थित, देवतागुरौ- देवताओं के गुरु वृहस्पति, मेखलाबन्धन- मेखला को बांधना, कवि- शुक्र, लग्नपा- लग्न के स्वामी, रिपु- शत्रु, मृत्यु- अष्टम, व्रते - उपनयन, अधमा- निकृष्ट, व्यये - बारहवें स्थान में, अब्ज- चन्द्रमा, तनु- लग्न, सुते- पंचम स्थान, खलाः- पापग्रह, क्षिप्र- क्षिप्र संज्ञक नक्षत्र, ध्रुव- ध्रुव संज्ञक नक्षत्र, अहि- आश्लेषा, चर- चर संज्ञक नक्षत्र,मूल- नक्षत्र का नाम,मृदु- मृदु संज्ञक नक्षत्र, त्रिपूर्वा - पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, अर्क- सूर्य, विद्- बुध, गुरु- वृहस्पति, सित- शुक्रवार, इन्दुदिने- सोमवार, व्रतं-उपनयन, सत्- शुभ, द्वि तिथि- द्वितीया तिथि, त्री तिथि- तृतीया, इषु- पंचमी तिथि, रवि तिथि- द्वादशी तिथि, त्रिलवक- त्रिनवांश, चूडा- चूड़ाकरण, प्रभवति- होता है, अष्ट- अष्टमी, रिक्ता- चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, आद्य- प्रतिपदा, उन- कम, आहे- दिन, विचैत्र-चैत्र मास को छोड़कर, उदगयनसमये- उत्तरायन, ज्ञ- बुध, इन्दु-चन्द्र, वार- दिन, अंश- नवमांश, निधन- अष्टम, शाक्र- ज्येष्ठा, उपेत- समेत, विमैत्र- अनुराधा, मृदु- मृदु संज्ञक नक्षत्र, लघु- लघु संज्ञक नक्षत्र, चर- चर संज्ञक नक्षत्र, भ-नक्षत्र, आय- एकादश स्थान, षट्- छठा स्थान, त्रिस्थ- तीसरा स्थान, क्रतु- यज्ञ, पाणिपीड- विवाह, मृति- मृत्यु, बन्ध- बन्धन, क्षुरकर्म - क्षौर कर्म, शववाह- शव का वहन करना या ढोना, तीर्थगम- तीर्थ में जाना, सिन्धुमज्जन- सिन्धुस्नान, गर्भिणीपति- गर्भवती स्त्री का स्वामी।।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 1

1-क, 2-ख, 3-क, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-ख।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 2

1-क, 2-ख, 3-क, 4-क, 5-ख, 6-ख, 7-ख, 8-क, 9-क, 10-ख।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 3

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-ग, 10-घ ।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 4

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-क, 7-ख, 8-क, 9-ग, 10-ग।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 5

1-क, 2-क, 3-ग, 4-क, 5-घ, 6-क, 7-ख, 8-ग, 9-घ, 10-क ।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 6

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-क, 9-ख, 10-ग, 11-घ ।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-मुहूर्त्त चिन्तामणिः।

2-भारतीय कुण्डली विज्ञान भग-1

3-शीघ्रबोध।

4-शान्ति- विधानम्।

5-आह्निक सूत्रावलिः।

6-उत्सर्ग मयूख।

7-विद्यापीठ पंचांग।

8- संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

4.9- सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री-

1- स्मृति कौस्तुभः।

2- श्री काशी विश्वनाथ पंचांग।

3- याज्ञवल्क्य स्मृतिः।

4.10 निबंधात्मक प्रश्न-

1-कर्णवेध संस्कार का परिचय बतलाइये।

2- चूडाकरण संस्कार का परिचय बतलाइये।

3- उपनयन संस्कार का परिचय दीजिये।

4- कर्णवेध संस्कार का मुहूर्त्त दीजिये।

5- चूड़ाकरण संस्कार का मुहूर्त्त दीजिये।

6- उपनयन संस्कार का मुहूर्त्त लिखिये।

7- कर्णवेध संस्कार का महत्त्व लिखिये।

8- चूड़ाकरण संस्कार का महत्त्व लिखिये।

9- उपनयन संस्कार का महत्त्व लिखिये।

10- उपनयन संस्कार हेतु लग्नों का विचार का वर्णन कीजिये।

खण्ड - 3

विविध मुहूर्त्त

इकाई – 1 वास्तु शान्ति, सूतिका स्नान, एवं अक्षराम्भ मुहूर्त्त

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 वास्तु शान्ति, सूतिका स्नान एवं अक्षराम्भ मुहूर्त

अभ्यास प्रश्न

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड के प्रथम इकाई **'वास्तु शान्ति, सूतिका स्नान एवं अक्षराम्भ मुहूर्त्त'** नामक शीर्षक इकाई से सम्बन्धित है । इससे पूर्व की इकाई में आपने चूड़ाकरण एवं व्रतबन्ध संस्कार का अध्ययन कर लिया है । यहॉ पर इस इकाई में आप 'वास्तु शान्ति, सूतिका स्नान एवं अक्षराम्भ मुहूर्त्त' का ज्ञान प्राप्त करेंगे ।

भारतीय सनातन परम्परा में हमारे प्राचीन आचार्यो ने मनुष्य जीवन को उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर करने हेतु निश्चित अवधि में उनके जन्म से लेकर समय – समय पर विभिन्न संस्कार करने के लिये कहा है । यदि आचार्योक्त उन संस्कारों को मनुष्य अपने जीवन में यदि करें तो निश्चय ही सर्वदा उसका कल्याण होगा । **'वास्तु शान्ति, सूतिका स्नान एवं अक्षराम्भ मुहूर्त्त'** उन मुहूर्त्तों में से है ।

इस इकाई में आप **'वास्तु शान्ति, सूतिका स्नान एवं अक्षराम्भ मुहूर्त्त'** से सम्बन्धित विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे ।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेंगे कि –

1. वास्तु शान्ति किसे कहते है तथा उसको करने का शुभ मुहूर्त्त कब होता है ।
2. सूतिका स्नान से क्या तात्पर्य है और वह कब शुभ होता है ।
3. अक्षराम्भ मुहूर्त्त क्या है । तथा उसे करने का क्या महत्व है ।
4. **'वास्तु शान्ति, सूतिका स्नान एवं अक्षराम्भ मुहूर्त्त'** का वर्तमान स्वरूप क्या है ।
5. उपर्युक्त संस्कार को करने की विधि क्या है ।

1.3 वास्तु शान्ति, सूतिका स्नान एवं अक्षराम्भ मुहूर्त्त

वास्तु शान्ति मुहूर्त्त -

गृहप्रवेश के पूर्व दिन पंचांग शुद्धि उपलब्ध होने पर अथवा तत्पूर्व ही शुभ दिन में वास्तु पूजा – बलिक्रियादि का आचरण करना चाहिये ।

तिथि – 1 कृष्णपक्ष, 2,3,5,7,10,11,12,13 शुक्लपक्ष ।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरू, शुक्रवार ।

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरात्रय, हस्त,चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती ।

लग्न – कोई भी राशि लग्न जब 1,2,4,5,7,9, 10,11 वें भावों में शुभग्रह और 3,6,11 वें पापग्रह हों तथा 8,12 वें सूर्य, मंगल, शनि राहु, केतु न हो।

सूतिका (प्रसुता) स्नान मुहूर्त्त – सूतिका स्नान जन्मदिन से एक सप्ताह के पश्चात ही अभिहित है।

तिथि - 1 (कृ.) 2,3,5,7,10,11,13 (शु.) 15।

वार – सूर्य, मंगल एवं गुरू।

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, उत्तरात्रय, हस्त, स्वाती, अनुराधा एवं रेवती।

लग्न - 2,3,4,6,7,9,12 लग्न राशि। लग्न सौम्य ग्रह से युत व दृष्ट हो तथा पंचम में ग्रह – राहित्य हो।

अक्षरारम्भ व विद्यारम्भ मुहूर्त्त – बालक पॉच वर्ष की अवस्था में सम्प्राप्त हो जाने पर अधोवर्णित विशुद्ध दिन को विघ्नविनायक, शारदा, लक्ष्मीनारायण, गुरू एवं कुलदेवता की पूजा के साथ उसे लिखने पढ़ने का श्रीगणेश करवाना चाहिये। अर्थात् अक्षराम्भ संस्कार करवाना चाहिये।

मास – कुम्भ संक्रान्ति वर्जित तथा उत्तरायण मास।

तिथि – शुक्लपक्ष की 2,3,5,7,10,11,12।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, अभिजित्, श्रवण एवं रेवती।

लग्न – 2,3,6,9,12 लग्नराशि। अष्टम भाव ग्रहरहित होना चाहिये।

वर्णमाला गणितादि में बालक परिपक्व हो जाने पर भविष्यत आजीविका प्रदात्री कोई विशेष या सर्वसामान्य विद्या का शुभारम्भ करना चाहिये। अप्रधान रूप से विद्यारम्भ मुहूर्त्त –

मास – फाल्गुन के अतिरिक्त उत्तरायणमास।

तिथि – 2,3,5,7,10,11,13 आदि शुक्लपक्ष की तिथियॉ।

वार – रविवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, आश्लेषा, तीनों पूर्वा, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा।

लग्न - 2,5,8 राशि लग्न जब केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह तथा 3,6,11 वें क्रूर ग्रह हों।

आचार्य रामदैवज्ञ ने मुहूर्त्तचिन्तामणि में प्रतिपादित किया है -

प्रसूता – स्नान का मुहूर्त्त –

पौष्णध्रुवेन्दुकरवातहयेषु सूती –
स्नानं समित्रभरवीज्यकुजेषु शस्तम्।
नार्द्रात्रयश्रुतिमघान्तकमिश्रमूल
त्वाष्ट्रे ज्ञसौरिवसुषड्विरिक्ततिथ्याम्।।

रेवती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा , हस्त, स्वाती, अश्विनी, अनुराधा ये नक्षत्र तथा रवि, गुरू और भौमवार प्रसूता के स्नान में शुभ है। आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, मघा, भरणी, विशाखा, कृत्तिका, मूल और चित्रा ये नक्षत्र बुध, शनिवार तथा 8/6/12/4/9/14 इन तिथियों में प्रसुति का स्नान शुभ नहीं है।

प्रसूतिका स्त्री के जलपूजन का मुहूर्त्त –

कवीज्यास्तचैत्राधिमासे न पौषे जलं पूजयेत्सूतिकामासपूर्तौ।
बुधेन्द्वीज्यवारे विरिक्ते तिथौ हि श्रुतीज्यादितीन्द्वर्कनैर्ऋत्यमैत्रैः।।

शुक्र और वृहस्पति के अस्त, चैत्रमास, अधिकमास, पौष इनमें जल – पूजा का त्याग करना चाहियें। बुध, सोम, वृहस्पतिवार, 4।9।14 तिथि तथा श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, मूल, अनुराधा नक्षत्रों में जल पूजा शुभ है।

अक्षराम्भ मुहूर्त्त –

गणेश विष्णु वाग्रमाः प्रपूज्य पंचमाब्दके।
तिथौ शिवार्कदिग्द्विषट्शरत्रिके रवावुदक्।।
लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितीशतक्षमित्रभे।
चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रहः सतां दिने।।

गणेश, विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी का पूजन करके पंचम वर्ष में 11।12।10।2।6।5।3 तिथि में, उत्तरायण सूर्य हो और हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्, श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा, अनुराधा इन नक्षत्रों में चर 1,4,7,10 लग्न रहित अन्य लग्नों तथा शुभग्रह के वारों में बालक को अक्षराम्भ करना शुभ है।

विद्यारम्भ मुहूर्त्त –

मृगात्कराच्छ्रुतेस्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये
गुरूद्वयेऽर्कजीववित्सितेऽह्नि षट्शरत्रिके।
शिवार्कदिग्द्विके तिथौ ध्रुवान्त्यमित्रभे परैः
शुभैरधीतिरूत्तमा त्रिकोणकेन्द्रगैः स्मृता।।

मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शततारा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा, पुष्य, आश्लेषा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, अनुराधा और रेवती इन नक्षत्रों में – रवि, बुध, गुरू, शुक्रवारों में 6,5,3,11,12,10,2 तिथियों में तथा शुभग्रह 9,5,1,4,7,10 वे स्थान में हो तब बालक को विद्यारम्भ करना शुभ है।

वास्तुपुरूष स्वरूपम् –

पुरा कृतयुगे ह्यासीन्महद्भुतं समुत्थिम्।
व्याप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं तत्तः।।
तद्दृष्टवा विस्मयं देवा गताः सेन्द्रा भयावृताः।
ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तमथासुरम्।।
विनिक्षिप्तमधोवक्त्रं स्थितास्तत्रैव ते सुराः।
तमेव वास्तुपुरूषं ब्रह्मा कल्पितवान् स्वयम्।।

सत्ययुग के आरम्भ में एक महान प्राणी उत्पन्न हुआ, जो अपने विशाल शरीर से समस्त भुवनों में व्याप्त था, इसको देखकर देवराज इन्द्र सहित सभी देवता भय एवं आश्चर्य चकित थे, तदनन्तर उन्होंने क्रुद्ध होकर उस असुर को पकड़कर उसका शिर नीचे करके भूमि में गाड़ दिया और स्वयं वहॉं खड़े रहे। इसी का नाम ब्रह्मा ने वास्तुपुरूष रखा।

मनुष्य जब अपना गृह निर्माण करता है, तो उसे गृहनिर्माण प्रक्रिया में वास्तुशान्ति का ध्यान रखना चाहिये अर्थात् जब वास्तुशान्ति करवाकर वह गृह में प्रवेश करता है, तो निश्चय ही गृह में बाहरी आवरण से उसकी रक्षा होती है।

अभ्यास प्रश्न –

1.वास्तु शान्ति किन वारों में अशुभ होता है

क. सोम ख. बुध ग. गुरू घ. शनि

2. सूतिका से तात्पर्य है।

क. सूत ख. प्रसुता स्त्री ग. सही घ. कोई नहीं

3. अक्षराम्भ किन वारों में प्रशस्त होता है।

क. शनि ख. मंगल ग. रवि घ. शुक्र

4. अर्क किसका पर्याय है।

क. मंगल ख. सूर्य ग. गुरू घ. कोई नहीं

5. त्रिकोण होता है।

क. 4,7 ख. 2,5 ग. 5,9 घ. 1,2

1.4 सारांश

इस इकाई में पाठकों के ज्ञानार्थ वास्तु शान्ति मुहूर्त्त, सूतिका स्नान एवं अक्षरारम्भ मुहूर्त्त की चर्चा की गयी है। वास्तु शान्ति का सम्बन्ध गृहनिर्माण से है तथा सूतिका स्नान का जिस स्त्री का प्रसव हुआ हो उससे है तथा अक्षराम्भ का सम्बन्ध शिशु को प्रथम बार अक्षर बोध कराने वाला संस्कार से है। इन तीनों की आवश्यकता मनुष्य को अपने जीवन में पड़ती है। वस्तुत: आचार्यों द्वारा संस्कारों का निर्माण ही मानवों के सर्वतोमुखी विकासार्थ किया गया है।

1.5 शब्दावली

वास्तु = गृह के रक्षा करने वाले देवता।

सूतिका = जिस स्त्री का पुत्र उत्पन्न हुआ हो, और उससे लगने वाला अशौच।

अक्षराम्भ संस्कार = शिशु को प्रथम बार अक्षर का ज्ञान कराने हेतु किया जाने वाला संस्कार।

षोडश संस्कार = मानव जीवन में जीवन से मृत्यु पर्यन्त किये गये विभिन्न (16 प्रकार के) संस्कार

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. ख
3. घ
4. ख
5. ग

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. संस्कारदीपक - महामहोपाध्याय श्रीनित्यानन्द पर्वतीय
2. पारस्करगृह्यसूत्र - आचार्य पारस्कर (गदाधर भाष्य)
3. हिन्दूसंस्कारविधिः - डा. राजबली पाण्डेय

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वास्तु शान्ति मुहूर्त्त संस्कार का परिचय प्रस्तुत करें।
2. सूतिका एवं अक्षराम्भ से आप क्या समझते है। विस्तार से वर्णन कीजिये।

इकाई – 2 वरवरण एवं विवाह मुहूर्त्त

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 वरवरण एवं विवाह मुहूर्त्त परिचय

अभ्यास प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड के द्वितीय इकाई '**वरवरण एवं विवाह मुहूर्त्त**' नामक शीर्षक इकाई से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने वास्तु शान्ति, सूतिका एवं अक्षाराम्भ मुहूर्त का अध्ययन कर लिया है। यहॉं पर इस इकाई में आप '**वरवरण एवं विवाह मुहूर्त्त**' का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

भारतीय सनातन परम्परा में हमारे प्राचीन आचार्यो ने मनुष्य जीवन को उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर करने हेतु निश्चित अवधि में उनके जन्म से लेकर समय – समय पर विभिन्न संस्कार करने के लिये कहा है। यदि आचार्योक्त उन संस्कारों को मनुष्य अपने जीवन में यदि करें तो निश्चय ही सर्वदा उसका कल्याण होगा । '**वरवरण एवं विवाह मुहूर्त्त**' उन मुहूर्त्तों में से है।

इस इकाई में आप '**वरवरण एवं विवाह मुहूर्त्त**' से सम्बन्धित विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेंगे कि –

1. वरवरण किसे कहते है तथा उसको करने का शुभ मुहूर्त्त कब होता है।
2. विवाह से क्या तात्पर्य है।
3. वरवरण एवं विवाह का महत्व क्या है।
4. '**वरवरण एवं विवाह मुहूर्त्त**' का वर्तमान स्वरूप क्या है।
5. उपर्युक्त संस्कार को करने की विधि क्या है।

2.3 वरवरण एवं विवाह मुहूर्त्त' परिचय

विवाह मुहूर्त्त -

भारतीय आश्रमिक समाज वयवस्था के अन्तर्गत गृहस्थाश्रम ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है। इसका कारण हैं कि स्वरूप सृष्टि का प्रादुर्भाव ही स्त्रीधारा और पुरूषधारा के पुनीत संगम से हुआ है। यह निर्विवाद सत्य हैं कि परमपिता परमात्मा ने स्वयं को ही, विश्व सृजन के उद्देश्य से नर और नारी स्वरूप दो लम्बरूप खण्डों में मूर्तिमान किया। वामांग को स्त्रीरूप एवं दक्षिणांग को पुरूष रूप में प्रचलित किया। शनै: शनै: इन धाराद्वय ने एक विशाल जन- समूह को खड़ा किया। इस प्रकार, आविर्भूत असंख्य नर नारियों ने संस्कृति के क्रमिक विकास के साथ अपने समकक्ष प्रतिद्वन्दी के प्रवरण की आवश्यकता का अनुभव किया। अन्ततोगत्वा, विवाह प्रथा का जन्म हुआ जो आने

वाली पीढियों के लिये अत्युपयोगी सिद्ध हुआ। विवाह ही गृहस्थाश्रम की आधारशिला है, और उसी माध्यम से मानव, देवर्षिपित्र्यादि ऋण त्रय से उऋण होकर पुरूषार्थ को प्राप्त करता है।

विवाह मास – मिथुनकुम्भमृगालि वृषाजगे मिथुनगेऽपि रवौ त्रिलवे शुचे।

अलीमृगाजगते करपीडनं भवति कार्तिक पौष मधुष्वपि।।

सूर्य जब मिथुन, कुम्भ, वृश्चिक, वृष, मेष राशि में हो तथा आषाढ़ मास के प्रथम तृतीयांश तक विवाह करना शुभ होता है। माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ व मार्गशीर्ष ये माह विवाह के लिए शुभ होता है।

विवाह नक्षत्र – रेवती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, मघा, मूला, अनुराधा, हस्त, स्वाती आदि नक्षत्रों में विवाह कार्य शुभ कहा गया है।

पक्ष व तिथि शुद्धि – शुक्ल पक्ष के प्रति आचार्यों का सभी शुभ कार्यों के सन्दर्भ में विशेष झुकाव है। कृष्ण पक्ष की भी अष्टमी तक मतान्तर से दशमी तक लिया जा सकता है। तिथियों के विषय में महत्व नहीं दिया जाता है तथापि जहॉं तक सम्भव हो रिक्ता तिथि को छोड़ना चाहिये। लेकिन प्रचलन ऐसा है कि चतुर्दशी, अमावस्या व शुक्ल प्रतिपदा को ही प्राय: छोड़ा जाता है।

वर वरण मुहूर्त – तीनों उत्तरा, तीनों पूर्वा, कृत्तिका, रोहिणी में शुभ वार व शुभ तिथि में उत्तम शकुनादि देखकर, चन्द्रबल वर व वरण कर्ता दोनों को शुभ होने पर वर का वरण करना चाहिये। इसे टीका, रोकना या ठाका आदि भी कहा जाता है। कन्या का पिता तिलक करके उक्त मुहूर्त में लड़के को वचन या वाग्दान देता है।

कन्या वरण मुहूर्त – तीनों पूर्वा, श्रवण, अनुराधा, उ.षा., कृत्तिका, धनिष्ठा, स्वाती नक्षत्रों में या विवाह के नक्षत्रों में पूर्ववत् शुभ तिथि, शुभ वार, व लग्न में पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर कन्या को उत्तम वस्त्र, खजूर, फल, मिष्ठान्न व आभूषणादि से वर की माता व बहनें वरण करें। वर के द्वारा कन्या को अंगूठी पहनाते समय भी उक्त मुहूर्त व विधि का अनुसरण करना चाहिये।

गृहस्थाश्रम को चारों आश्रमों का मूलाधार बताया गया है। लेकिन कहा गया है कि भली प्रकार से अपनी विद्या को समाप्त कर अर्थात् युवावस्था में ही विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये।

विवाह का समय –

विवाहो जन्मत: स्त्रीणां युग्मेऽब्दे पुत्रपौत्रद:।

अयुग्मे श्रीप्रद: पुंसां विपरीते तु मृत्युद:।।

जन्म से सम संख्यक वर्षों में कन्या का और विषम वर्षों में पुरूष का विवाह करना शुभप्रद है, इससे विपरीत होने पर अशुभ होता है।

विवाह के आठ भेद - ब्राह्म, प्राजापत्य,दैव, आर्ष, गान्धर्व, आसुर, राक्षस व पैशाच ये आठ प्रकार के विवाह होते है। इनमें पहले चार प्रकार को श्रेष्ठ माना गया है। गान्धर्व विवाह प्रेम विवाह हैं , जो मध्यम श्रेणी का माना गया है तथा शेष तीन प्रकार अधम या निकृष्ट है।

विवाह के मास – माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ व मार्गशीर्ष ये सभी मास विवाह के लिये शुभ माने गये है।

पक्ष व तिथि शुद्धि – शुक्ल पक्ष के प्रति आचार्यों का सभी शुभ कार्यों के सन्दर्भ में विशेष झुकाव होता है। कृष्ण पक्ष की भी अष्टमी तक मतान्तर से दशमी तक लिया जा सकता है। तिथयों के विषय में विशेष महत्व नहीं दिया जाता है। तथापि जहॉं तक सम्भव हो रिक्ता तिथि को छोड़ना चाहिये। लेकिन प्रचलन ऐसा है कि चतुर्दशी, अमावस्या व शुक्ल प्रतिपदा को ही प्राय: छोड़ा जाता है।

अभ्यास प्रश्न –

1.निम्नलिखित में विवाह का नक्षत्र नहीं है

क. रेवती ख. तीनों उत्तरा ग. रोहिणी घ. **अश्विनी**

2. वर वरण हेतु उपयुक्त नक्षत्र है ।

क. भरणी ख. मृगशिरा ग. **तीनों उत्तरा** घ. श्रवण

3. जन्म से सम संख्यक वर्षों में विवाह करना किनके लिये शुभ होता है ।

क. कन्या का ख. वर का ग. कन्या एवं वर दोनों का घ. कोई नहीं

4. कुज दोष से तात्पर्य है।

क. मंगल दोष ख. सूर्य दोष ग. गुरू दोष घ. कोई नहीं

5. तारा का गुण कितना होता है।

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

विवाह लग्न प्रशंसा –

भार्या त्रिवर्गकरणं शुभशीलयुक्ता
शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्या:।
तस्माद्विवाहसमय: परिचिन्त्यते हि
तन्निघ्नतामुपगता: सुतशीलधर्मा:।।

सुशील स्वभाव की स्त्री त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) को देने वाली होती है, परं च उसका शील और सच्चरित्र लग्न के वश से शुभ होता है, क्योंकि पुत्र, शील, और धर्म विवाहलग्न के अधीन है, अत:

विवाह समय का विचार किया जाता है।

वर के गुण –

कुलं च शीलं च सनाथतां च विद्यां च वित्तं च वपुर्वयश्च।
वरे गुणान्सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम् ।।

कन्या दान से पूर्व वर का कुल, स्वभाव, सनाथता, विद्वत्ता, धन, शरीर तथा आयु इन सात गुणों की परीक्षा कर लेनी चाहिये।

कन्या के गुण –

अनन्यपूर्विका कन्यामसपिण्डां यवीयसीम्।
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्।।

जिस कन्या का अन्य किसी ने दान अथवा उपभोग न किया हो, सापिण्डय न हो, वर से उम्र तथा शरीर में कम हो, निरोगिणी, सोदर बन्धुयुक्त एवं भिन्न गोत्र की कन्या देखकर विवाह निश्चित करना चाहिये।

विवाह के लिये मेलापक विचार –

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम्।
गणमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिकाः।।

वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, गणमैत्री, भकूट एवं नाडी ये आठ प्रकार के कूट क्रमशः उत्तरोत्तर एक – एक अंक की वृद्धि के साथ होते है। अर्थात् वर्ण में 1 गुण, वश्य में 2 गुण, तारा में 3 गुण आदि।

अनिष्ट मंगल का विचार -

लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाऽष्टमे कुजे।
पत्नी हन्ति स्वभर्तारं भर्तुर्भार्या न जीवति।।
एवं विधे कुजे संस्थे विवाहो न कदाचन।
कार्यो वा गुणबाहुल्ये कुजे वा तादृशे द्वयोः।।

1,4,7,8,12 स्थानों में यदि मंगल कन्या की जन्मकुण्डली में हो तो पति का और यदि वर की जन्मकुण्डली में हो तो स्त्री घातक होता है। इसीलिये इस प्रकार के योग वाली कन्या को मंगली और लड़के को मंगला कहते है। यदि वर या कन्या किसी एक की कुण्डली में यह योग हो तो हानिकारक है और यदि दोनों की कुण्डली में समान योग हो अथवा अधिक गुण मिलते हों तभी विवाह करना चाहिये।

मंगल का परिहार –

शनिर्भौमोऽथवा कश्चित् पापो वा तादृशो भवेत् ।
तेष्वेव भवनेष्वेव कुजदोष विनाशकृत् ।।

वर और कन्या किसी एक की कुण्डली में उपर्युक्त अनिष्टकर्त्ता मंगल हो और दूसरे को उन्हीं स्थानों में शनि अथवा कोई भी पापग्रह हो तो उक्त अनिष्ट का नाश होता है। इस प्रकार चन्द्र कुण्डली से भी विचार करना चाहिये। यदि वर – कन्या दोनों की कुण्डली में परस्पर दोषों का परिहार हो तभी विवाह सम्बन्ध श्रेष्ठ कहा गया है।

विशेष - लग्न में मेष का, द्वादश में धनु का, चतुर्थ में वृश्चिक का, सप्तम में मकर का तथा अष्टम स्थान में कर्क राशि का मंगल हो तो अनिष्टकारक नहीं होता है।

विवाह में ज्येष्ठमास का निषेध तथा परिहार –

ज्येष्ठद्वन्द्वं मध्यमं संप्रदिष्ट त्रिज्येष्ठं स्यान्नैव युक्तं कदापि।
केचित्सूर्यं वह्निगं प्रोज्झ्यमाहुर्नैवाऽन्योन्यं ज्येष्ठयो: स्याद्विवाह: ।।

दो ज्येष्ठ मध्यम अर्थात् दोनों (वर – कन्या) में से एक प्रथम गर्भोत्पन्न और ज्येष्ठ मास भी हो तो है। तीन ज्येष्ठ (ज्येष्ठ वर, ज्येष्ठ कन्या तथा ज्येष्ठ मास) विवाह में कदापि शुभ नहीं है। कुछ आचार्य का यह भी मानना है कि यदि कृत्तिका में सूर्य हो तो विवाह का त्याग करना चाहिये तथा आदि गर्भ अर्थात् प्रथम सन्तान का परस्पर विवाह सम्बन्ध अशुभ है।

2.4 सारांश

इस इकाई में पाठकों के ज्ञानार्थ वर वरण एवं विवाह मुहूर्त्त की चर्चा की गयी है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने वास्तु शान्ति मुहूर्त्त, सूतिका स्नान एवं अक्षरारम्भ मुहूर्त्त का अध्ययन कर लिया है। अब इस इकाई में आप वरवरण एवं विवाह को जानेंगे। वर वरण से तात्पर्य वर को कन्या के पिता के द्वारा विवाहार्थ वरण करने से है। इस संस्कार में वर को स्वशक्ति के अनुसार कन्या का पिता वर को वस्त्र, अलंकार, फल, मिष्ठान द्रव्यादि से सुशोभित कर विवाह के लिये वरण करता है। वर वरण के पश्चात् वैसे ही कन्या का वरण होता है पश्चात फिर उनका विवाह संस्कार किया जाता है।

2.5 शब्दावली

वरण = छेका, तिलक, टीका ।

विवाह = कन्या एवं वर को जीवन भर के लिये रिश्ते में बॉधने वाला बन्धन ।

त्रिज्येष्ठ = क्रम में ज्येष्ठ सन्तान, ज्येष्ठ मास, ज्येष्ठा नक्षत्र ।

गर्भोत्पन्न = गर्भ से उत्पन्न ।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. ग
3. क
4. क
5. क

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. संस्कारदीपक - महामहोपाध्याय श्रीनित्यानन्द पर्वतीय
2. पारस्करगृह्यसूत्र - आचार्य पारस्कर (गदाधर भाष्य)
3. हिन्दूसंस्कारविधिः - डा. राजबली पाण्डेय

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वरण से क्या तात्पर्य है। वर वरण को स्पष्ट कीजिये।
2. विवाह से आप क्या समझते है। विस्तार से वर्णन कीजिये।

इकाई – 3 गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त

अभ्यास प्रश्न

3.4 सारांश

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड की तृतीय इकाई **'गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त'** नामक शीर्षक इकाई से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने वरवरण एवं विवाह का अध्ययन कर लिया है। यहॉं पर इस इकाई में आप **'गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त'** का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

इस संसार में मानव को अपना जीवनयापन करने के लिये उनकी कुछ मूलभुत आवश्यकतायें होती है – जिनमें प्रमुख है – भोजन, वस्त्र एवं आवास। प्रस्तुत इकाई का सम्बन्ध आवास से है। मानव जहॉं अपने परिवार के साथ निवास करता है उसे गृह कहते है एवं उसके निर्माण की क्रिया को गृहनिर्माण एवं निर्माण के पश्चात् उसमें प्रथम बार प्रवेश करने की क्रिया गृहप्रवेश कहलाता है।

गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश करना कब शुभ होता है और कब अशुभ इसका ज्ञान आप प्रस्तुत इकाई में करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेंगे कि –

1. गृहारम्भ क्या है ।
2. गृहप्रवेश से क्या तात्पर्य है ।
3. गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश का महत्व क्या है।
4. 'गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश' का वर्तमान स्वरूप क्या है।
5. उपर्युक्त संस्कार को करने की विधि क्या है।

3.3 गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त परिचय

गृहारम्भ मुहूर्त्त –

मानवीय जीवन काल को ऋषि मुनियों ने चार आश्रमों में विभाजित किया है – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास इनमें गृहस्थाश्रम को सर्वोत्कृष्ट माना गया है। गृहस्थाश्रम की सुखसम्पन्नता के लिये स्वीय – निकेतन का होना परमाश्वयक हैं। क्योंकि स्वातिरिक्त अधिकार प्राप्त गृह में करिष्यमाण कर्म अपना यथेष्ट फल नहीं देते।

जैसा कि भविष्यपुराण में लिखा है –

गृहस्थस्य क्रिया: सर्वा न सिद्धयन्ति गृहं विना।
परगेहे कृता: सर्वा: श्रौत: स्मार्त्तक्रिया: शुभा: ।।
निष्फला: स्युर्य तस्तासां भूमीश: फलमश्नुते।

अत: स्वाधिकार प्राप्त निवास स्थान का निर्माणारम्भ मुहूर्त्त का यहॉं उल्लेख किया गया है।

गोचर शुद्धि – गृहारम्भ मुहूर्त्त निर्णय में सर्वप्रथम गृहस्वामी की जन्मराशि से गोचरस्थ सूर्य, चन्द्र, गुरू और शुक्र का प्रबल होना अनिवार्य है।

मास –

चैत्र – मेषार्क, वैशाख – सर्वदा, ज्येष्ठ वृषार्क, आषाढ़ – कर्कमास, श्रावण सर्वदा, भाद्रपद सिंहार्क, आश्विन तुला का सूर्य, कार्तिक वृश्चिक राशिस्थ सूर्य, मार्गशीर्ष सर्वदा, पौष सौर मकर परन्तु सम्पूर्ण मास पर्यन्त धन्वर्क न हो तो पौष अशुभ है।

गृहारम्भ के योग -

1. रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु , श्लेषा, तीनों उत्तरा, पूषा, श्रवण आदि नक्षत्र हो तथा गुरूवार दिन हो तो गृह आरम्भ कराने से गृह में धन – सम्पत्ति तथा संतति का पूर्णसुख प्राप्त होता है।
2. अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, उ. फा., हस्त, चित्रा, नक्षत्र यदि बुधवार को हो तो उस दिन बनाया हुआ गृह में सुख – पुत्रार्थ सिद्धिदायक होता है।
3. अश्विनी, आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, धनिष्ठा, शतभिषा, आदि नक्षत्र शुक्रवार युत हो तो उस दिन गृहारम्भ धन – धान्यदायक होता है।
4. भरणी, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, पू.भा., उ . भा. , तथा शनिवार के संगम में शुरू किया हुआ गृहारम्भ भूत – प्रेतों से अधिकृत रहता है।

   गुरू – शुक्रास्त, कृष्ण पक्ष, निषिद्ध मास, रिक्तादि वर्ज्यतिथियॉं, तारा अशुद्धि, भूशयन, अग्निबाण, अग्नि पंचक, भद्रा, पूर्वाभाद्रपद, नक्षत्र तथा वृश्चिक कुम्भ लग्नादि गृहारम्भ में गर्हित है। विवाहोक्त इक्कीस दोषों की भी विद्यमानता गृहारम्भ में वर्ज्य है।

शिलान्यास मुहूर्त्त - गृहारम्भ की शुभ वेला में खनित नींव को प्रस्तुत शिलान्यास मुहूर्त्त के दिन विधिवत् पत्थरों से पूरित कर देना चाहिये। तदर्थ ग्राह्य तिथ्यादि शुद्धि इस प्रकार है –

तिथि – 1 कृ., 2,3,5,7,10,11,12,13 शु.

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार एवं शनिवार

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, श्रवण एवं रेवती।

विशेष – सम्यक् समय में ब्रह्मा, वास्तुपुरूष, पंचलोकपाल, कूर्म, गणेश तथा स्थान – देवताओं का शिष्टाचार पूर्वक पूजन एवं स्वस्ति पुण्याहवाचनादि के साथ तथा स्वर्ण एवं गंगादि पुण्य स्थानों की रेणु सहित मुख्य शिला का उचित कोण में स्थापना करें। तदनन्तर, प्रदक्षिण क्रम से अन्य पत्थरों को

जमाना चाहिये।

जलाशय खनन दिशा एवं मुहूर्त –

ग्राम अथवा शहर से पूर्व और पश्चिम में खुदा हुआ जलाशय स्वादु और उच्च कोटि का जल प्रदान करता है – ऐसा कवि कालिदास का मत है। परन्तु गॉव के आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य कोण में जलाशय निर्माण सर्वथा अशुभ है। तथा च –

आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः।

नित्यं स करोति भयं दाहं वा मानसं प्रायः।

नैऋतकोणे बालक्षयं वनिताक्षयश्च वायव्ये॥

विभिन्न दिशाओं में स्थित जलाशय का फल –

दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
फल	ऐश्वर्य	पुत्र हानि	स्त्री भंग	निधन	संपत्ति	शत्रु भय	सौख्य	पुष्टि

जलाशय खनन मुहूर्त -

सामान्य रूप से कुंआ, तालाब, बावड़ी, आदि समस्त जलस्थानों का शुभारंभ निम्न मुहूर्त में शास्त्र सम्मत है।

मास – वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ (मिथुनार्क), माघ, फाल्गुन

तिथि – शुक्ल 2,3,5,7,10,11,12,13।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती।

लग्न – 2,4,7,9,10,11,12 आदि राशि लग्न

तथा शुभ ग्रहों के नवांश। लग्न में बुध, गुरू दसवें शुक्र, पापग्रह निर्बल तथा शुभ ग्रह सबल हों।

विशेष – गुरू, शुक्रास्त, गुर्वादित्य, दक्षिणायन, गुरू – शुक्र का शैशव एवं वार्द्धक्य, त्रयोदशात्मक पक्ष, भूशयन, क्षयाधिमास तिथि, भद्रा, कुयोगादि त्याज्य।

वास्तु शान्ति मुहूर्त -

गृहप्रवेश के पूर्व दिन पंचांग शुद्धि उपलब्ध होने पर अथवा तत्पूर्व ही शुभ दिन में वास्तु पूजा – बलिक्रियादि का आचरण करना चाहिये।

तिथि – 1 कृष्णपक्ष, 2,3,5,7,10,11,12,13 शुक्लपक्ष।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरू, शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरात्रय, हस्त,चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती।

लग्न – कोई भी राशि लग्न जब 1,2,4,5,7,9, 10,11 वें भावों में शुभग्रह और 3,6,11 वें पापग्रह हों तथा 8,12 वें सूर्य, मंगल, शनि राहु, केतु न हो।

नूतन गृहप्रवेश मुहूर्त्त –

मास – ज्येष्ठ, वैशाख, माघ, फाल्गुन - (उत्तम) , कार्तिक, मार्गशीर्ष – (मध्यम), परन्तु कुम्भ संक्रान्ति में माघ फाल्गुन भी हो तो भी गृहप्रवेश न करें। कदाचित् अत्यावश्यक होने पर मकर, मीन, मेष, वृष और मिथुन संक्रान्तियों में त्याज्य चान्द्र मास (चैत्र, पौष) भी गृहप्रवेशार्थ ग्राह्य है।

तिथि – 1 कृ., 2,3,5,7,10,11,13 शु.।

दिग्द्वार के अनुरूप गृहप्रवेशोपयोगी तिथियॉं -

द्वार दिशा	पूर्व	पश्चिम	उत्तर	दक्षिण
शुभ तिथियॉं	5,10,15	2,7,12	3,8,13	1,6,11

जीर्णादि गृह प्रवेश मुहूर्त्त -

पुरातन, दूसरे के द्वारा निर्मित, अग्नि बहु वृष्टि, बाढ़ादि देवी अथवा राजप्रकोप से विनष्ट, जीर्णोद्धृत, नवीनीकृत एवं उत्थापित गृह में प्रवेश करने के लिये प्रस्तुत मुहूर्त्त विचारणीय है।

मास – श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष तथा नूतन गृहप्रवेशोक्त मास।

वार – सोमवार, बुधवार गुरूवार, शुक्रवार एवं शनिवार

तिथि – 1 कृ. 2,3,5,6,7,8,10,11,12,13 शु.

नक्षत्र – रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, उत्तरात्रय, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती

विशेष – प्रस्तुत कर्म में दक्षिणायन सूर्य, गुरू, शुक्र का अस्त बाल्य वार्द्धक्य , सिंह मकरस्य गुरू एवं लुप्त संवत्सरादि दोषों का चिन्तन न करके उपरोक्त विशुद्ध काल तथा नूतन गृहप्रवेशोदित लग्न बल का ही विचार करें। तथापि भद्रा, व्यतीपात, वैधृति, मासान्त, त्रयोदश दिनात्मक पक्ष, क्षयद्धि तिथि एवं नाम राशि से निर्बल चन्द्र तो परिवर्ज्य ही हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. आश्रमों की संख्या कितनी है।

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

2. आश्रमों में श्रेष्ठ माना गया है ।

क. ब्रह्मचर्य ख. वानप्रस्थ ग. गृहस्थाश्रम घ. वानप्रस्थ

3. निम्नलिखित में वास्तु शान्ति के लिये शुभ वार है ।

क. मंगल ख. शनि ग. रविवार घ. शुक्र

4. जीर्ण से तात्पर्य है ।

क. पुराना ख. नवीन ग. अर्वाचीन घ. कोई नहीं

5. गृहप्रवेश कितने प्रकार का होता है ।

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

नवदुर्ग प्रवेश मुहूर्त –

मास – वैशाख, ज्येष्ठ, माघ एवं फाल्गुन।

तिथि – शुक्ल 2,3,5,7,10,11,13

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार, शनिवार एवं शुक्रवार

नक्षत्र – रो. पु. तीनो उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, रेवती।

लग्न – 2,5,8,11 आदि लग्न।

विशेष – गुरू – शुक्रास्त, भद्रा, निर्बल चन्द्र तथा अनिष्ट वर्ग परिवर्जनीय।

गृहप्रवेश विचार – गृहप्रवेश तीन प्रकार का होता है। अपूर्व, सपूर्व व द्वन्द प्रवेश, ये तीन भेद है। नूतन गृह में प्रवेश करना अपूर्व प्रवेश होता है। यात्रादि के पश्चात् गृह में प्रवेश करना सपूर्व कहलाता है। जीर्णोद्धार किये गये मकान में प्रवेश का नाम द्वन्द प्रवेश है। इनमें मुख्यत: अपूर्व प्रवेश का विचार यहॉं विशेष रूप से करते है।

माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ मास में प्रवेश उत्तम व कार्तिक, मार्गशीर्ष में मध्यम होता है।

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभन:।
प्रवेशो मध्यमो ज्ञेय: सौम्यकार्तिकमासयो: ।।

कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि तक एवं शुक्ल पक्ष में चन्द्रोदयानन्तर ही प्रवेश करना चाहिये। जीर्णोद्धार वाले गृहप्रवेश में दक्षिणायन मास शुभ है। सामान्यत: गुरू शुक्रास्त का विचार जीर्णोद्धार किये या पुराने या किराये के मकान को छोड़कर सर्वत्र करना चाहिये।

तीनों उत्तरा, अनुराधा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, अश्विनी, हस्त में प्रवेश शुभ है। तिथि व वार शुभ होने पर स्थिर लग्न में शुद्धि देखकर चन्द्रमा व तारा की अनुकूलता रहने पर गृहप्रवेश शुभ होता है।

प्रवेश के समय शुक्र पीछे व सूर्य वाम रहे तो शुभ होता है। शुक्र के विषय में यात्रा विचार के प्रसंग में बतायेंगे। वाम रवि का ज्ञान आप इस प्रकार कर सकते है –

प्रवेश लग्न से 5,6,7,8,9 भावों में सूर्य रहने से दक्षिणाभिमुख मकान में प्रवेश करते समय वाम सूर्य होता है । इसी प्रकार 8,9,10,11,12 भावों में प्रवेश समय सूर्य हो तो पूर्वाभिमुख मकान में 2,3,4,5,6 भावों में सूर्य हो तो पश्चिमाभिमुख मकान में एवं 11,12,1,2,3 स्थानों में सूर्य रहने से उत्तराभिमुख मकान में प्रवेश करने पर वाम सूर्य रहता है जैसा कि कहा है -

अष्टमात् पंचमात् वित्ताल्लाभात् पंचस्थिते रवौ ।

पूर्वद्वारादिके गेहे सूर्यो वामः प्रकीर्तितः ॥

देव प्रतिष्ठा मुहूर्त्त - उत्तरायण सूर्य में, शुक्र गुरू व चन्द्रमा के उदित रहने पर जलाशय, बाग – बागीचा या देवता क प्रतिष्ठा करनी चाहिये । प्रतिपदा रहित शुक्ल पक्ष सर्वत्र ग्राह्य है, लेकिन कृष्ण पक्ष में भी पंचमी तक प्रतिष्ठा हो सकती है । लेकिन अपने मास, तिथि आदि में दक्षिणायन में भी प्रतिष्ठा का विधान है । जैसे आश्विन मास नवरात्र में दुर्गा की, चतुर्थी में गणेश की, भाद्रपद में श्री कृष्ण की, चतुर्दशी तिथि में सर्वदा शिवजी की स्थापना सुखद है । इसी प्रकार उग्र प्रकृति देवता यथा भैरव, मातृका, वराह, नृसिंह, वामन, महिषासुरमर्दिनी आदि की प्रतिष्ठा दक्षिणायन में भी होती है ।

मातृभौरववाराहनारसिंहत्रिविक्रमाः ।

महिषासुरहन्त्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥ (वैखानस संहिता)

यद्यपि मलमास सर्वत्र प्रतिष्ठा में वर्जित है, लेकिन कुछ विद्वान पौष में भी सभी देवताओं की प्रतिष्ठा शुभ मानते है -

श्रावणे स्थापयेल्लिंगमाश्विने जगदम्बिकाम् ।

मार्गशीर्षे हरिश्चैव सर्वान्पौषेऽपि केचन ॥ (मुहूर्तगणपति)

आचार्य वृहस्पति पौष मास में सभी देवों की प्रतिष्ठा को राज्यप्रद मानते है –

सर्वेषां पौषमाघौ द्वौ विबुधस्थाने शुभौ । (वृहस्पति)

तिथियों के विषय में ध्यान रखना चाहिये कि रिक्ता व अमावस्या तथा शुक्ल प्रतिपदा को छोड़कर सभी तिथियों एवं देवताओं की अपनी तिथियॉं विशेष शुभ हैं ।

यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः । (वशिष्ठ संहिता)

मंगलवार को छोड़कर शेष वारों में यजमान को चन्द्र व सूर्य बल शुद्ध होने पर प्रतिष्ठा, स्थिर या द्विस्वभाव लग्न में स्थिर नवमांश में लग्न शुद्धि करके विहित प्रकार से विधानपूर्वक स्थापित करें । प्रतिष्ठा में अशुद्धि कष्टों को जन्म देती है – श्रियं लक्षाहीना तु न प्रतिष्ठा समो रिपु: । इस प्रकार मध्यान्ह तक हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, नक्षत्रों में बलवान् लग्न में, अष्टम राशि, लग्न को छोड़कर प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त कहना चाहिये ।

3.4 सारांश

इस इकाई में पाठकों के ज्ञानार्थ गृहारम्भ एवं गृहमुहूर्त्त प्रवेश मुहूर्त्त की चर्चा की गयी है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने वर वरण एवं विवाह का सम्यक् अध्ययन कर लिया है। यहॉं इस इकाई में अब आप गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश को समझेंगे। मानव के मुलभूत आवश्यकताओं में आवास एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है और आवासार्थ वह गृहनिर्माण करता है जहॉं वह अपने परिवार के साथ निवास करता है। गृहनिर्माण आरम्भ करने की क्रिया गृहारम्भ तथा गृहनिर्माण कर उसमें प्रवेश करने की विधि गृहप्रवेश कहलाती है।

इस इकाई में आप गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश से सम्बन्धित अनेक विषयों का अध्ययन करेंगे।

3.5 शब्दावली

वास्तु = गृह सम्बन्धी देवता।

गृहारम्भ = गृहनिर्माण हेतु कार्य आरम्भ करने वाली क्रिया।

गृहप्रवेश = नूतन गृहनिर्माण के पश्चात् उसमें प्रवेश करनें की क्रिया ।

पूर्वाभिमुख = पूर्व दिशा की ओर मुख।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.ख

2.ग

3. घ

4. क

5. क

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. संस्कारदीपक - महामहोपाध्याय श्रीनित्यानन्द पर्वतीय
2. पारस्करगृह्यसूत्र - आचार्य पारस्कर (गदाधर भाष्य)
3. हिन्दूसंस्कारविधिः - डा. राजबली पाण्डेय

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गृहारम्भ से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
2. गृहप्रवेश का विस्तार से वर्णन कीजिये।

इकाई – 4 यात्रा, दिक्शूल विचार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 यात्रा एवं दिक्शूल
अभ्यास प्रश्न
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड की चतुर्थ इकाई '**यात्रा एवं दिक्शूल**' नामक शीर्षक इकाई से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश का अध्ययन कर लिया है। यहॉ पर इस इकाई में आप '**यात्रा एवं दिक्शूल**' का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

मानव अपने कार्य सिद्ध करने के लिये विभिन्न स्थलों पर यात्रा करता है। उसे यात्रा कब करनी चाहिये तथा वह कब यात्रा करें कि उसका लक्षित कार्य पूर्ण हो जाये। इसके लिये उसे यात्रा एवं दिक्शूल का ज्ञान होना परमावश्यक है। यात्रा एवं दिक्शूल से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान आप विस्तारपूर्वक प्रस्तुत इकाई में करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेंगे कि –

1. यात्रा से आप क्या समझते है।
2. विभिन्न स्थलों पर यात्रा का शुभाशुभ समय क्या है।
3. यात्रा का महत्व क्या है।
4. यात्रा में दिक्शूल विचार क्यों आवश्यक है।
5. यात्रा प्रशस्त हो इसका मार्ग क्या है।

4.3 यात्रा एवं दिक्शूल परिचय

यात्रा मुहूर्त्त विचार - षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, शुक्ल प्रतिपदा तथा रिक्ता तिथियों को छोड़कर शेष तिथियॉ यात्रा में ग्राह्य है। अमृतसिद्धि या सर्वार्थसिद्धि योगों में तिथ्यादि विचार के बिना भी यात्रा की जा सकती है।

तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, शतभिषा, मूल, ज्येष्ठा, रोहिणी ये नक्षत्र यात्रा में मध्यम हैं। कृत्तिका, स्वाती, आर्द्रा, विशाखा, चित्रा, आश्लेषा, मघा, भरणी ये नक्षत्र यात्रा में अशुभ है । अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती ये नक्षत्र यात्रा में श्रेष्ठ है।

जन्म लग्न व राशि से अष्टम राशि लग्न में तथा राशीश के शत्रु ग्रह के लग्न में होने पर कदापि यात्रा न करें। कुम्भ लग्न व कुम्भ नवमांश सर्वथा यात्रा में त्याज्य है। मृत्युयोग, दग्धा तिथि, संक्रान्ति आदि अशुभ समय में यात्रा त्याज्य है।

आवश्यक होने पर कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तथा दिग्द्वार लग्नों में यात्रा करना श्रेष्ठ होता है। जब अपनी जन्मराशि शुभयुक्त हो अथवा सूर्य की राशि से द्वितीय राशि वेशि लग्न हो तो यात्रा जयप्रद है

जब केन्द्र त्रिकोण में शुभ व 3,6,10,11 में पापग्रह हों तब यात्रा करें। चन्द्रमा 1,6,8,12 में अशुभ होता है। इसी प्रकार दशम शनि, सप्तम शुक्र तथा लग्नेश 6,7,8,12 में अशुभ होता है।

चन्द्रमा विचार – यात्रा में चन्द्र बल शुद्धि अनिवार्य है। 1,4,8,12 राशियों में चन्द्रमा का गोचर यात्रा में अशुभ है। यथा – ऋते: चन्द्रबलं पुंसां यात्रा शस्ताऽप्यनर्थदा (यात्रा शिरोमणि)

यात्रा में चन्द्रमा का वास भी प्रयत्नपूर्वक देखना चाहिये। जिस दिशा की राशि में चन्द्रमा हो उसी दिशा में चन्द्रमा का वास होता है। जैसे 1,5,9 राशियों का चन्द्रमा पूर्व में 2,6,10 राशिगत चन्द्रमा दक्षिण में 3,7,11 राशि का चन्द्रमा पश्चिम में व 4,8,12 राशि का चन्द्रमा उत्तर में रहता है। चन्द्रमा को सदैव यात्रा में सामने या दाहिनें होना चाहिये। वाम व पृष्ठगत चन्द्रमा हानिप्रद है। यथा –

सम्मुखे सोर्थलाभाय दक्षिणे सुखसम्पदः।
पश्चिमे प्राणसन्देहो वामे चन्द्रे धनक्षयः॥

सम्मुख चन्द्रमा प्राय: सभी दोषों को शान्त करने में सक्षम होता है। माण्डव्य ने तो यहॉं तक कहा है कि –

करणभगणदोषं वारसंक्रान्तिदोषं कुलिकतिथिजदोषं यामयामार्धदोषम्।
शनिकुजरविदोषं राहुकेत्वादि दोषं हरति सकलदोषं चन्द्रमासम्मुखस्थः॥

घात चन्द्रमा – मेषादि द्वादश राशियों के लिये क्रमशः 1,5,9,2,6,10,3,7,4,8,11,12 भावों में चन्द्रमा घात चन्द्रमा कहलाता है। यात्रा, शास्त्रार्थ, मुकदमा दायर करना एवं वाद – विवाद आदि में घात चन्द्र का त्याग करना चाहिये।

योगिनी विचार – योगिनी का भी यात्रा में विचार मुख्य है। तिथि विशेष के आधार पर दिशाओं में योगिनियों का वास माना जाता है। योगिनी सदैव पीछे या बायें होनी चाहिये। योगिनी वास को सारिणी के माध्यम से समझा जा सकता है –

योगिनी वास चक्रम्

दिशा	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
तिथि	1,9	3,11	5,13	4,12	6,14	7,15	2,10	8,30

इन तिथियों में योगिनी का वास कही गई दिशाओं में होता है। युद्धादि की यात्रा में बायें योगिनी भी त्याज्य है। पीछे रहना सदैव शुभ है।

राहु विचार – राहु व योगिनी सदैव पीठ पीछे रहने पर यात्रा विशेष सफल होती है। सम्मुख राहु में विशेषतया गृहारम्भ व गृहप्रवेश नहीं करना चाहिये। राहु वास का चक्र यहॉं दिया जा रहा है –

राहु वास चक्र

सूर्य संक्रान्ति मास	वृश्चिक, धनु एवं मकर	मेष, कुम्भ व मीन	वृष, मिथुन एवं कर्क	सिंह, कन्या एवं तुला
राहु वास की दिशा	पूर्व दिशा	दक्षिण दिशा	पश्चिम दिशा	उत्तर दिशा

सर्वार्थ सिद्धि योग – विशेष वार व नक्षत्रों के योग से सर्वार्थ सिद्धि योग बनते हैं। इनमें वार गणना प्राचीन प्रचलनानुसार सूर्योदय से सूर्योदय तक मानते है। इन वार व नक्षत्रों के योग में सर्वार्थसिद्धि योग बनते है।

1. रविवार – मूल, तीनों उत्तरा, अश्विनी, हस्त, पुष्य
2. सोमवार - श्रवण, अनुराधा, रोहिणी, पुष्य व मृगशिरा
3. मंगलवार – उत्तरा भाद्रपद, कृत्तिका, अश्विनी व श्लेषा
4. बुधवार – हस्त, अनुराधा, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा
5. शुक्रवार – पुनर्वसु, अनुराधा, रेवती, अश्विनी, श्रवण
6. शनिवार – रोहिणी, श्रवण, स्वाती।

इन योगों में प्राय: सभी शुभ कार्य सफल होते है ।

अमृतसिद्धि योग - सर्वार्थसिद्धि योगों में से कुछ को बहुत शक्तिशाली देखकर उनका नाम अमृतसिद्धि योग रखा गया है। रविवार व हस्त नक्षत्र, सोमवार में मृगशिरा, मंगल में अश्विनी, बुधवार में अनुराधा, गुरूवार में पुष्य, शुक्रवार में रेवती, शनिवार में रोहिणी रहने पर अमृतसिद्धि योग बनते है।

भद्रा विचार – विष्टि करण का ही दूसरा नाम भद्रा है। भद्रा नाम की राक्षसी थी, जिसके काल में किये गये कार्य का नाश हो जाता है।

शुक्ल पक्ष में 8,15 तिथियों के पूर्वार्ध में तथा 4,11 के उत्तरार्ध में भद्रा रहती है। कृष्ण पक्ष में 3,10 के उत्तरार्ध में व 7,14 के पूर्वार्ध में भद्रा होती है।

अभ्यास प्रश्न -

1. रिक्ता संज्ञक तिथि है।

क. 3,8,13 ख. 1,11,6 ग. 9,4,14 घ. 5,10,15

2. सर्वार्थ सिद्ध योग बनते है ।

क. वारों एवं राशियों के संयोग से ख. वारों एवं नक्षत्रों के संयोग से ग. नक्षत्रों एवं करण के संयोग से घ.कोई नहीं

3. रविवार का दिक्शूल दोष निम्नलिखित में किससे दूर होता है ।

क. दूध से ख. दही से ग. घृत से घ. तिल से

4. शनि - सोम को किस दिशा में दिक्शूल होता है ।

क. दक्षिण ख. पश्चिम ग. पूर्व घ. उत्तर

5. विष्टि करण को हम किस नाम नाम से जानते है ।

क. जया ख. भद्रा ग. रिक्ता घ. कोई नहीं

भद्रा वास विचार – भद्रा का फल उसके भूमि लोक वास में ही होता है। जब भद्रा स्वर्ग या पाताल में हो तो शुभ मानी जाती है। अन्यथा वह सभी शुभ कार्यों में त्याज्य है।

जब मेष,वृष, मिथुन व वृश्चिक का चन्द्रमा हो तो भद्रा स्वर्ग लोक में रहती है। शुक्ल पक्ष में विष्टि की सर्पिणी संज्ञा व कृष्ण पक्ष में वृश्चिकी संज्ञा है । सॉप का अग्रभाग जहरीला होने से शुक्लपक्ष में प्रारम्भ की 5 घड़ियॉं तथा कृष्ण पक्ष में अन्तिम पॉच घडियॉं भद्रा का मुख होता है। क्योंकि बिच्छू के पिछले भाग में डंक होता है। पीयूष धारा में मुख या पुच्छ के निर्णय के विषय में अनेक मत बताये है । हमारे विचार से तो सामान्यत: भद्रा अशुभ ही होती है । तथा लोकवासानुसार यदि भूमि पर उसका वास आये तो सदैव त्याज्य है। अत: खण्ड के अनुसार मुँह या पूँछ का भेद समन्वयपरक विद्वानों ने नही माना है।

भूर्लोकस्था सदा त्याज्या स्वर्गपातालगा शुभा। (मुहूर्त्त गणपति)

सामान्यत: भद्रा की पूँछ का काल सदैव जयप्रद होता है, ऐसा कहा गया है। लेकिन इस विषय में विभिन्नता है। चतुर्दशी में पूर्व को, अष्टमी में अग्नि कोण की ओर, सप्तमी में दक्षिण की ओर, पूर्णिमा में नैऋत्य की ओर, चतुर्थी में पश्चिम की तरफ, दशमी में वायव्य की ओर, एकादशी में उत्तर व तृतीया में ईशान कोण की ओर भद्रा के मुख की दिशा में नहीं जाना चाहिये। पूँछ की दिशा में जाने से सदा सफलता मिलती है। भीषण कार्यों में भद्रा शुभ होती है, अर्थात् वध, बन्धनादि कार्यो में मारणादि तान्त्रिक क्रियाओं में यह सफलता देती है।

यात्रा में सौर समय –

यात्राजसिंहतुरगोपगते वरिष्ठा
मध्या शनैश्चर बुधोशनसां गृहेषु।
भानौ कुलीरझषवृश्चिकगेऽतिदीर्घा
शस्तस्तु देवलमतेऽध्वनि पृष्ठगोऽर्कः ।।

मेष, सिंह, धनु के सूर्य में यात्रा श्रेष्ठ होता है। मकर, कुम्भ , मिथुन , कन्या,वृष, तुला के सूर्य में मध्यम है। तथा कर्क, मीन, वृश्चिक के सूर्य हों तो दीर्घयात्रा होती है। यात्रा के समय सूर्य का पृष्ठ भाग में रहना उत्तम है।

विशेष – यात्रा के समय तात्कालिक लग्न, 12 या 2 में सूर्य हो तो पश्चिम दिशा की 4,3,5 में हो तो दक्षिण दिशा की, 7,6,8 में हो तो पूर्व दिशा की 10,9 अथवा 11 वें स्थान में सूर्य हो तो उत्तर दिशा की यात्रा श्रेष्ठ है।

सर्वकाल और सर्वदिग्गमन नक्षत्र –

पुष्ये मैत्रे करेऽश्विन्यां सर्वाशागमनं शुभम्।
सर्वकाले हिता यात्रा हस्ते पुष्ये मृगे श्रुतौ ।।

पुष्य, अनुराधा, हस्त और अश्विनी में सभी दिशा में, तथा हस्त, पुष्य, मृगशिरा, श्रवण इनमें सभी समय यात्रा शुभ मानी है।

दिक्शूल विचार –

शनौ चन्द्रे त्यजेत्पूर्वां दक्षिणां च दिशं गुरौ।
सूर्ये शुक्रे पश्चिमां च बुधे भौमे तथोत्तरम् ।।
आग्नेय्यां च गुरौ चन्द्रे नैर्ऋत्यांरविशुक्रयोः।
ऐशान्यां चन्द्रजे वायौ मंगले गमनं त्यजेत् ।।
न व्रजेच्छक्रभे प्राच्यां याम्ये चाजपदे त्वथ।
उदीच्यामयमर्क्षे च प्रतीच्यां धातृभे तथा ।।

शनि – सोम को पूर्व दिशा में, वृहस्पति को दक्षिण में, रवि – शुक्र को पश्चिम में, बुध मंगल को उत्तर दिशा में दिशा शूल होता है। तथा वृहस्पति सोम को अग्निकोण में, रवि – शुक्र को नैर्ऋत्य कोण में, बुध – शनि को ईशान कोण और मंगल को वायव्यकोण में दिक्शूल होता है। एवं ज्येष्ठा नक्षत्र में पूर्व, पूर्वाभाद्रपद में दक्षिण, रोहिणी में पश्चिम और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्तर दिशा में शूल है, अत: इनमें यात्रा करना शुभ नहीं है।

विशेष – 1।9 तिथि में पूर्व, 5।13 में दक्षिण, 6।14 में पश्चिम और 2।10 तिथि में उत्तर दिशा में शूल है। इन तिथियों में पूर्व आदि दिशाओं की यात्रा वर्जित है।

दिशाओं में तिथि – वार नक्षत्र शूल बोधक चक्र –

दिशा	**पूर्व**	**दक्षिण**	**पश्चिम**	**उत्तर**
तिथि	1।9	5।13	6।14	2।10
वार	शनि, सोम	गुरू	रवि, शुक्र	बुध, मंगल

नक्षत्र	ज्येष्ठा	पू0भा0	रोहिणी	उत्तराफाल्गुनी

दिक्शूल दोष का परिहार –

सूर्यवारे घृतं पीत्वा गच्छेत्सोमे पयस्तथा।
गुडमंगारके वारे बुधवारे तिलानपि।।
गुरूवारे दधि ज्ञेयं शुक्रवारे यवानपि।
माषान्भुक्त्वा शनौ गच्छेच्छूलदोषोपशान्तये।।
ताम्बूल चन्दनं मृच्च पुष्पं दधि घृतं तिलाः।
वारशूलहराण्यर्काद् दानाद्धारणतोऽशनात्।।

रविवार को घृत, सोम को दूध, मंगल को गुड़, बुध को तिल, वृहस्पति को दही, शुक्र को जौ और शनिवार को उड़द खाकर यात्रा करे तो शूल दोष शान्त हो जाता है। तथा रविवारादि वारों में क्रम से पान, चन्दन, मिट्टी, पुष्प, दही, घृत, तिल इनके दान देने से वा प्राशन करने से अथवा धारण करने पर भी शूल दोष नहीं लगता है।

4.4 सारांश

इस इकाई में पाठकों के ज्ञानार्थ यात्रा एवं दिक्शूल विचार की चर्चा की गयी है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपनें

गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश का अध्ययन कर लिया है। अब यहॉ आप यात्रा व दिक्शूल सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करेंगे। मानव अपने जीवन में कई बार यात्रा करता है। उसे कब किस दिशा में यात्रा करनी चाहिये, तथा कब यात्रा करने से लाभ होगा, हानि होगा आदि इत्यादि का विचार इस इकाई में हम करेंगे। दिक्शूल से तात्पर्य है – किसी दिशा विशेष में निश्चित तिथि में यात्रा करना।

4.5 शब्दावली

यात्रा = भ्रमण करना ।

दिक्शूल = दिशा विशेष में निश्चित तिथि में यात्रा सम्बन्धि शुभाशुभ विचार ।

परिहार = निवारण ।

सर्वकाल = सभी कालों में

सर्वदिग्गमन – सभी दिशाओं में गमन

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग

2.ख

3. ग

4.ग

5. ख

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. संस्कारदीपक - महामहोपाध्याय श्रीनित्यानन्द पर्वतीय
2. पारस्करगृह्यसूत्र - आचार्य पारस्कर (गदाधर भाष्य)
3. हिन्दूसंस्कारविधिः - डा. राजबली पाण्डेय

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यात्रा से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
2. यात्रा एवं दिक्शूल का विस्तार से वर्णन कीजिये।

इकाई – 5 चन्द्रवास, शिववास एवं अग्निवास

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 चन्द्रवास, शिववास एवं अग्निवास
अभ्यास प्रश्न
5.4 सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड के पंचम इकाई ''चन्द्रवास, शिववास एवं अग्निवास'' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। मनुष्य अपने जीवन में महत्वपूर्ण कार्य करने हेतु शुभ समय की आंकाक्षा रखता है। तद्दृष्ट्या कर्मकाण्ड सम्बन्धित चन्द्रवास , शिववास अग्निवास का विधान बताया गया है।

चन्द्रमा का किसी राशि में स्थित होना चन्द्रवास का बोध कराता है। भगवान शिव सम्बन्धित पूजन अर्चन के लिये कर्मकाण्ड में शिववास का ज्ञान कहा गया है तथा यज्ञादि कर्मों के साफल्यता हेतु अग्निवास का ज्ञान कहा गया है।

इस इकाई में आप चन्द्रवास, शिववास एवं अग्निवास का अध्ययन करेगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगें कि –

- ❖ चन्द्रवास क्या है।
- ❖ शिववास कहॉ - कहॉ होता है।
- ❖ कर्मकाण्डोक्त अग्निवास क्या है ।
- ❖ पूजन आदि कर्म में चन्द्रवास, शिववास एवं अग्निवास का क्या महत्व है।

5.3 चन्द्र वास, शिव वास एवं अग्नि वास

भारतीय सनातन परम्परा में ऋषियों की यह विशेषता रही है कि वह निरन्तर चिन्तन पथ पर अग्रसर होते हुये लोकोपकार की दृष्टि से नवीन - नवीन ज्ञान एवं विज्ञान से आम जनमानस को लाभान्वित करते रहे है। यह अत्यन्त गौरवपूर्ण विषय है कि ऋषियों ने भूसापेक्ष आकाशस्थ चन्द्रमा का वास स्थान ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से ज्ञात किया , उसी क्रम में भगवान शिव और अग्नि का वास स्थान सूत्रात्मक रूप में ज्ञात किया। यह अपने आप में अलौकिक है।

चन्द्रमा वास ज्ञान -

मेषे च सिंहे धनुरिन्द्रभागे।
वृषे च कन्या मकरे च याम्ये।।
युग्मे तुलायां च घटी प्रतीच्यां।
कर्काऽलि मीने दिशिचोत्तरस्यां।।

अर्थ – मेष , सिंह और धनु राशि का चन्द्रमा पूर्व दिशा में, वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में , मिथुन, तुला और कुम्भ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में तथा कर्क, वृश्चिक और

मीन राशि का चन्द्रमा उत्तर दिशा में रहता है।

चन्द्रमा का वास फल -

सम्मुखे त्वर्थलाभः स्याद्दक्षिणे सुखसम्पदः।
पृष्ठतो मरणं चैव वामे चन्द्रे धनक्षयः॥

यात्रा करते समय (गृह से प्रस्थान करते समय) सन्मुख चन्द्रमा हो तो अर्थ लाभ, दाहिने हो तो सुख सम्पदा, पीछे हो तो शोक सन्ताप, बाँये हो तो धन का नाश होता है। चन्द्र विचार, योगिनी विचार और दिक्शूल विचार प्रत्येक महत्वपूर्ण यात्रा में अनिवार्य माना जाता है।

विशेष - ज्योतिष शास्त्र के अनुसार चन्द्रमा सर्वाधिक तीव्र गति वाला ग्रह माना जाता है। वह ग्रहों में सूर्य के समान ही राजा माना जाता है। एक राशि का भोग करने में चन्द्रमा को सवा दो दिन से ढ़ाई दिन का समय लगता है। जन्मकाल में चन्द्रमा जिस राशि पर होता है, वही जातक का भी राशि माना जाता है। चन्द्रमा मन का प्रतीक है। चन्द्रवास जानकर यात्रादि कार्य में इनका प्रयोग करते है। मुख्य रूप से यह यात्रा में ही उपयोगी होता है।

शिव वास –

तिथिं द्विगुणीकृत्य बाणैः संयोजयेत्ततः।
सप्तभिश्च हरेद्शेषे शिववासं समुद्दिशेत्॥
एकेन वासः कैलाशे द्वितीय गौरीसन्निधौ।
तृतीये वृषभारूढः सभायां च चतुष्टये॥
पंचमे भोजने चैव क्रीडायां च रसात्मके।
श्मशाने सप्तशेषे चशिववासः उदीरितः॥
कैलाशे लभते सौख्यं गौर्यां च सुख सम्पदः।
वृषभेऽभीष्ट सिद्धिः स्यात् सभायां सन्ताप कारिणी॥
भोजने च भवेत् पीडा क्रीडायां कष्टमेव।
चाश्मशाने मरणं ज्ञेयं फलमेवं विचारयेत्॥

अर्थ – जिस तिथि में शिववास ज्ञात करना हो, उस तिथि का द्विगुणित कर उसमें 5 जोड़े तथा प्राप्त योग फल में सात संख्या से भाग दे। प्राप्त शेषानुसार शिववास समझना चाहिये। यदि 1 शेष हो तो शिव का वास स्थान कैलाश में, 2 शेष हो तो गौरी के सान्निध्य में, 3 शेष हो तो वृष (बैल) पर आरूढ़, 4 शेष हो तो सभा में, 5 शेष हो तो भोजन में, 6 शेष हो तो क्रीडा में तथा 7 शेष हो तो श्मशान में शिव का वास स्थान समझना चाहिये।

शिववास फल –

कैलाश में – सुख की प्राप्ति

गौरी के सान्निध्य में – सुख प्राप्ति
वृषारूढ़ होने पर – अभीष्ट सिद्धि
सभा में होने पर – सन्ताप कारिणी
भोजन में होने पर – पीडा
क्रीड़ा में होने पर – कष्ट
श्मशान में होने पर - मरण

उपर्युक्तानुसार शिव का वास तथा वास स्थान पर होने वाले फल समझना चाहिये । विशेषकर भगवान शिव से सम्बन्धित पूजन – अर्चन में शिव वास का महत्व है । रूद्राभिषेक, रूद्रयाग, महामृत्युंजय आदि कर्मकाण्ड सम्बन्धित कार्यों में शिव वास का ज्ञान आवश्यक है, तभी तत् सम्बन्धित पूजन का शुभ फल प्राप्त होता है।

अग्नि वास -

सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता शेषे गुणेऽभ्रे भुवि वह्निवासः।
सौख्याय होमो शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च ॥

अर्थ - जिस तिथि में अग्निवास ज्ञात करना हो, उस तिथि में एक जोड़कर उसमें रव्यादि से दिन गणना कर जोड़े और प्राप्त योगफल में चार से भाग देने पर तीन और शून्य शेष बचे तो अग्नि का वास पृथ्वी पर जानना चाहिए, उसमें हवन करें तो सौख्य होता है। एक और दो शेष बचे तो अग्नि का वास आकाश या पाताल में जानना चाहिये , उसमें यदि हवन करे तो प्राण और अर्थ (धन) का नाश होता है। तिथि की गणना प्राय: तिथिकार्य में शुक्ल पक्ष से होती है। जैसा कि लिखा है –
शुक्लादिगणना कार्या तिथीनां गणिते सदा ॥

उदाहरण –

जैसे कार्तिक शुक्ल पंचमी , वृहस्पतिवार का हवन करना अभीष्ट है। तिथि 5, वार 5, दोनों को योग करने पर 10 प्राप्त हुआ और योग में सूत्रानुसार 1 जोड़ा तो 11 हुआ । इसमें चार का भाग देने से लब्धि 3, इस कारण अग्नि का वास पृथ्वी पर हुआ, इसमें हवन करने से सौख्य और लाभ होगा । यह विचार हवनात्मक काम्य हवन के लिए है। जप, यज्ञादि हवन में इसका विचार नहीं होता है।

विशेष – कर्मकाण्ड प्रायोगिक होने के कारण उसमें दिये गये विधान भी प्रायोगिक होते है । चन्द्रवास, शिववास एवं अग्नि के वास स्थान का ज्ञान कर्मकाण्ड की अलौकिकता को प्रदर्शित करता है। सम्प्रति कर्मकाण्ड व्यवसायपरक हो चुका है, इसीलिये इसके मूल तत्वों को आम जनता और न ही इसके अध्येता समझ पा रहे है। आज बौद्धिक वर्गों में इसका उपहास होता रहता है। इसका एकमात्र करना अध्येताओं का मूल से कटना है। आज भी नियमबद्ध होकर कर्मकाण्ड किया जाये तो फल शत प्रतिशत प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं है ऐसा मेरा मत है।

अभ्यास प्रश्न –

1. वृष राशि का चन्द्रमा किस दिशा में होता है।
   क. पूर्व ख. दक्षिण ग. पश्चिम घ. उत्तर
2. यात्रा करते समय चन्द्रमा सम्मुख हो तो –
   क. धन लाभ होता है ख. धन का क्षय होता है ग. अचल धन की प्राप्ति होती है घ. कोई नहीं
3. शिव के वृषारूढ़ होने पर क्या फल मिलता है –
   क. लाभ ख. अभीष्ट सिद्धि ग. हानि घ. धन प्राप्ति
4. कैलाशे लभते सौख्यं गौर्यां च **....................।**
   क. सुख सम्पद: ख. रसात्मक: ग. सन्तापकारिणी घ. धनप्राप्ति
5. सर्वाधिक तीव्र गति वाला ग्रह है।
   क. सूर्य ख. चन्द्रमा ग. शुक्र घ. मंगल

5.4 सारांश

इस इकाई का अध्ययन कर आपने जाना कि मेष , सिंह और धनु राशि का चन्द्रमा पूर्व दिशा में, वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में , मिथुन, तुला और कुम्भ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में तथा कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का चन्द्रमा उत्तर दिशा में रहता है तथा जिस तिथि में शिववास ज्ञात करना हो, उस तिथि का द्विगुणित कर उसमें 5 जोड़े तथा प्राप्त योग फल में सात संख्या से भाग दे। प्राप्त शेषानुसार शिववास समझना चाहिये। जिस तिथि में अग्निवास ज्ञात करना हो, उस तिथि में एक जोड़कर उसमें रव्यादि से दिन गणना कर जोड़े और प्राप्त योगफल में चार से भाग देने पर तीन और शून्य शेष बचे तो अग्नि का वास पृथ्वी पर जानना चाहिए, उसमें हवन करें तो सौख्य होता है। एक और दो शेष बचे तो अग्नि का वास आकाश या पाताल में जानना चाहिये , उसमें यदि हवन करे तो प्राण और अर्थ (धन) का नाश होता है।

5.5 शब्दावली

लोकोपकार = जन कल्याण ।

नवीन = नया ।

जनमानस = मानवों के लिये ।

सन्मुख = सामने

सर्वदिग्गमन – सभी दिशाओं में गमन

वृषारूढ – वृष पर बैठे होना

अभीष्ट - चाह

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. ख
4. क
5. ख

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. वृहदवकहड़ाचक्रम् - महामहोपाध्याय श्रीनित्यानन्द पर्वतीय
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि - आचार्य पारस्कर (गदाधर भाष्य)
3. हिन्दूसंस्कारविधिः - डा. राजबली पाण्डेय

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चन्द्र वास क्या है ? स्पष्ट कीजिये।
2. अग्निवास एवं शिववास का विस्तार से वर्णन कीजिये।